१

संकलन और
रूपांतर
अमृतराय

हंस प्रकाशन
इलाहाबाद

प्रथम संस्करण २०००
जुलाई १९६२

प्रकाशक
हंस प्रकाशन
इलाहाबाद

मुद्रक
भार्गव प्रेस
इलाहाबाद

मूल्य बारह रुपया

भूमिका

सब जानते हैं, प्रेमचंद ने अपने साहित्यिक जीवन का आरंभ उर्दू से किया था। बरसों केवल उर्दू में लिखते रहने के बाद वह हिन्दी की तरफ़ आये। उपन्यास और कहानियाँ तो लिखीं ही, साहित्य, संस्कृति, समाज, राजनीति से संबंध रखनेवाले विविध प्रसंगों पर ढेरों लेख भी लिखे। इस प्रकार के लेखन का उनका क्रम आजीवन चला और मुंशीजी के पूर्ण साहित्यिक व्यक्तित्व और देन को समझने के लिए उसका महत्व मुंशीजी के कथा-साहित्य से अणुमात्र कम नहीं है।

इस खज़ाने की तरफ़ अब तक किसी का ध्यान नहीं गया था, और शायद इन पंक्तियों के लेखक का भी न जाता अगर मुंशीजी की प्रामाणिक जीवनी लिखने के तक़ाज़े ने उसे मजबूर न किया होता कि वह उन सब चीज़ों की छान-बीन करे जो-जो मुंशीजी ने जब-जब और जहाँ-जहाँ लिखीं। पुरातत्व-विभाग की इसी खुदाई में यह दफ़ीना हाथ लग गया !

यह लगभग सोलह सौ पृष्ठों की सामग्री है जो 'विविध प्रसंग' के तीन खण्डों में दी जा रही है।

पहले खण्ड में १६०३ से लेकर १६२० तक के लेख और समीक्षाएँ हैं, काल-अनुक्रम से। 'तुर्की में वैधानिक राज्य' शीर्षक लेख भूल से ग़लत जगह पर लग गया है।

दूसरे और तीसरे खण्ड में १६२१ से लेकर १६३६ तक के लेख, टिप्पणियाँ और समीक्षाएँ हैं जिनको 'राष्ट्रीय राजनीति' 'अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति' 'हिन्दू-मुसलमान' 'छूत-अछूत' 'किसान-मजूर' 'साहित्य-दर्शन' 'धर्म-समाज' 'महिला-जगत्' 'समीक्षाएँ' 'श्रद्धांजलियाँ' आदि शीर्षकों के अन्तर्गत विषय-क्रम से प्रस्तुत करना अधिक सार्थक जान पड़ा।

छोटी टिप्पणियों को भी हमने वही स्थान दिया है जो बड़े लेखों को, सिर्फ़ इसलिए नहीं कि मुंशीजी ने उन्हें लिखा है बल्कि इसलिए कि वह देखने में चाहे जितनी छोटी हों पर घाव गहरा करती हैं। अपने उस छोटे-से कलेवर में भी उनका वक्तव्य स्पष्ट है, महत्वपूर्ण है और उनकी उपेक्षा नहीं की जा सकती।

समीक्षाएँ कुछ छोड़ दी गयी हैं। जो दी जा रही हैं, उनमें दो प्रकार की समीक्षाएँ हैं। कुछ तो बहुत जानी-मानी पुस्तकों की समीक्षाएँ हैं। उनके संबंध में कुछ कहने की ज़रूरत नहीं है। कुछ अज्ञात-सी पुस्तकों की समीक्षाएँ हैं। उनको देना इसलिए ज़रूरी समझा गया कि उन पुस्तकों को निमित्त बनाकर मुंशीजी ने अपनी कोई बात कहनी चाही है।

'विविध प्रसंग' के पहले खण्ड में अधिकांश लेख उर्दू के प्रसिद्ध पत्र 'ज़माना' से लिये गये हैं जिससे मुंशीजी का आजीवन बहुत आत्मीय संबंध रहा। 'ज़माना' की पूरी फ़ाइल किसी एक जगह नहीं मिल सकी—'ज़माना' के अपने घर में भी नहीं। इस कमी को लखनऊ विश्वविद्यालय और अलीगढ़ विश्वविद्यालय के संग्रहों से काफ़ी हद तक पूरा कर लिया गया है, तो भी कुछ अंक छूट गये जो शायद आगे कभी मिलें। इस खोज में मुझे उर्दू के प्रसिद्ध आलोचक प्रोफ़ेसर एहतिशाम हुसैन, जो सम्प्रति प्रयाग विश्वविद्यालय में उर्दू विभाग के अध्यक्ष हैं, और डाक्टर क़मर रईस से, जिन्होंने प्रेमचंद के उपन्यासों पर काम करके डाक्टरेट ली है और जो इन दिनों दिल्ली विश्वविद्यालय में उर्दू के अध्यापक हैं, बहुत मदद मिली है और मैं हृदय से उनका आभारी हूँ।

इस अवधि में मुंशीजी ने 'ज़माना' के अलावा और भी अनेक उर्दू पत्रों में, जैसे मौलाना मुहम्मद अली के 'हमदर्द', और 'इम्तियाज़ अली ताज' के 'कहकशां' 'ज़माना' आफ़िस से ही निकलनेवाले साप्ताहिक 'आज़ाद' और लखनऊ के मासिक पत्र 'सुबहे उम्मीद' में काफ़ी नियमित रूप से लिखा। दुर्भाग्यवश अब तक उनकी और दूसरे अनेक उर्दू पत्रों की फ़ाइलें नहीं मिल सकी हैं जिनको देखना बिल्कुल ज़रूरी है क्योंकि उनमें कहानियों के साथ-साथ यदा-कदा कुछ लेख होने की भी पूरी संभावना है। बहरहाल, उर्दू पत्रों की तलाश और छानबीन का यह काम लंबा है और काफ़ी दिनों तक जारी रखना होगा।

'रफ़्तारे ज़माना' के नाम से एक स्थायी स्तंभ मुंशीजी ने 'ज़माना' में बहुत अर्से तक लिखा, लेकिन बदकिस्मती से उस पर मुंशीजी का नाम नहीं जाता था और कब से कब तक यह स्तंभ उनके हाथ में रहा, इसका भी कहीं कोई संकेत नहीं मिलता। १९३७ में जब 'ज़माना' का प्रेमचंद-स्मृति अंक निकला था, तभी ज़माना-संपादक मुंशी दयानरायन निगम के लिए यह बतलाना असंभव हो गया था कि प्रेमचंद के लिखे हुए 'रफ़्तारे ज़माना' के कालम कौन-से हैं, अब तो इसकी पड़ताल का कोई सवाल ही नहीं उठता। असहयोग के दिनों में, नौकरी छोड़ने के ठीक पहले, मुंशीजी ने तालीमी नान-कोआपरेशन पर एक लेख लिखा था पर वह अब तक कहीं मिला नहीं।

उर्दू के इन सब लेखों को ज्यों का त्यों छाप देना हिन्दी पाठकों के लिए बहुत कठिनाई उपस्थित करता इसलिए उनका हिन्दी रूपान्तर जरूरी हो गया।

हाँ, रूपान्तर करते समय इस बात का विशेष ध्यान रखा गया है कि मुंशीजी की भाषा और शैली की पूरी तरह रक्षा हो और केवल ऐसे ही शब्द और वाक्यांश बदले जायं जिनको बदले बिना काम न चलता हो।

'विविध प्रसंग' के दूसरे और तीसरे खण्डों में मूल हिन्दी सामग्री है। कुछ फुटकर लेख और टिप्पणियाँ और समीक्षाएं माधुरी, चाँद, मर्यादा, स्वदेश आदि पत्रों से ली गयी हैं (जिसका संकेत भी लेख के अंत में दे दिया गया है) लेकिन अधिकांश सामग्री 'हंस' और 'जागरण' से संकलित है। मासिक पत्र होने के नाते, 'हंस' से ली गयी सामग्री के अंत में केवल महीना और सन मिलेगा, 'जागरण' साप्ताहिक था, उसमें तारीख भी मौजूद है।

'हंस' और 'जागरण' की इस सामग्री के लिए मैं पंडित विनोद शंकर व्यास का अनन्य आभारी हूँ जिन्होंने अपनी [illegible] फाइलें मुझे सौंपकर इस कार्य को संभव बनाया। जहाँ तक मैं जानता हूँ 'हंस' और 'जागरण' की पूरी फाइल, विशेषतः 'जागरण' की, और कहीं भी उपलब्ध नहीं है। उनके सौहार्द और सहयोग से ही प्रेमचंद का यह तेजस्वी पत्रकार रूप हिन्दी संसार के सामने प्रस्तुत करना संभव हो रहा है।

इस लंबे शोध-कार्य में, जिसका [illegible] से हुआ, भाई महादेव साहा की निरंतर प्रेरणा का मैं कितना ऋणी हूँ जिसकी स्वीकृति शब्दों से नहीं, मौन से ही की जा सकती है।

भाई श्रीनाथ पाण्डेय ने कुछ लेख कलकत्ते से ढूँढ़कर भेजे। मैं उनका आभारी हूँ।

दूसरे भी कई मित्रों का मुक्त सहयोग मुझे इस कार्य में मिला है। उन सबके प्रति मैं अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ।

अमृत राय

क्रम

ओलिवर क्रामवेल

यह दुनिया एक थिएटर है जहाँ ऐक्ट करनेवाले तो बहुत कम और तमाशाइयों की भीड़ बहुत ज्यादा है। मगर इस थिएटर की दिलचस्पियाँ, उसके आकर्षण उन्हीं थोड़े से ऐक्टरों के जादूभरे कारनामों और जादूभरी बातों पर निर्भर हैं। यह चन्द ऐक्टर अपने जादूभरे भाषणों और मोहिनी अदाओं से हमारे दिलों पर कब्ज़ा किये हुए हैं और हम खुशियों की एक अजीब कैफ़ियत में उनकी कोशिशों की दाद देते हैं। बेशक इंग्लिस्तान के मशहूर कवि और दार्शनिक कार्लाइल का यह कहना सही है कि दुनिया का सच्चा परिचय केवल उन बड़े लोगों के कारनामे हैं जो समय-समय पर दुनिया में पैदा हुए। हमारे मनोरंजन की वस्तुएँ और वह तमाम चीज़ें जो हमारी प्रशंसा और सम्मान की अधिकारी हैं उन्ही बड़े आदमियों की मेहनतों और सोच-विचार का नतीजा हैं। जिस दुनिया में हम रहते हैं वह उन्हीं सजग लोगों के सुन्दर प्रयत्नों का फल है। हमारी आत्माएँ, जिनसे हमारा जीवन है, उन्हीं के इशारों पर चलती हैं। हमारे विचार, हमारा सांस्कृतिक रूप, हमारे तौर-तरीके उसी साँचे में ढलते हैं जो यह आदमी हमारी नजरों के सामने पेश करता है। जब हमारी अन्दरूनी आँखें अंधी हो जाती हैं, हमारे खयालात गन्दे हो जाते हैं, हमारे बुरे काम बढ़ जाते हैं, हमारी खुशहाली हमारा साथ छोड़ देती है, हमारा धर्म पुराना हो जाता है और समय की दीर्घता उसमें बहुत से परिवर्तन करके उसे बनावटी लोकाचार का संग्रह बना देती है, हमारे ज्ञान की परिधि संकीर्ण हो जाती है और हम अज्ञान के अथाह समुद्र में डुबकियाँ खाने लगते हैं तो हम अनायास चाहते हैं कि कोई गौतम बुद्ध, कोई शंकराचार्य, कोई अरस्तू, कोई मुहम्मद, कोई न्यूटन पैदा हो, अपनी अलौकिक योग्यता से हमारी सोसायटी को लाभ पहुँचाये, जितने अनिष्टकारी तत्व एकत्र हो गये हों उनको दूर कर दे, नये विचारों की सरिता बहा कर हमारी प्यास को बुझाये और हमारे विवेक के बुझे हुए दीपक को प्रज्वलित करे। जब हमारी प्रार्थनाएँ लक्ष्य-भ्रष्ट तीर हो जाती हैं और कोई ऐसा आदमी सामने आता है तो हम उसका अनुसरण करते हैं और जैसे एक होशियार जादूगर अपने जादू के जोर से कठपुतलियों को नचाता है, जिस कल चाहता है बिठाता है, उसी तरह यह हीरो हमको

अद्भुत चमत्कार दिखाकर हमारी आत्मा को अपने वस में कर लेता है; उसके चरित्र में भगवान जाने ऐसी कौन सी शक्ति होती है जो हमारे दिलों पर उसके बड़प्पन का सिक्का बिठाती है; उसकी बातों में भगवान जाने क्या असर होता है जो हम पर जादू का काम करता है। वह बड़ा जबर्दस्त मेस्मराइज़र होता है और उसकी महज़ आँखें ही नहीं बल्कि हर बात और हर काम हम पर मेस्मरेजिम का असर डालते हैं। मनुष्य को परमात्मा ने बहुत-से अच्छे गुण दिये लेकिन ऐसे लोग थोड़े ही हैं जिन्हें उसने आविष्कारक शक्तियाँ दी। अगर साधारण जनों को अनुसरण की शक्ति के बदले आविष्कार की शक्ति मिली होती तो आज दुनिया का कुछ और ही ढंग होता। हरेक आदमी अपने जोम मे खुद ही बहलोल बना बैठा होता। यह इस अनुसरण-शक्ति का ही परिणाम है कि हम एक बड़े हीरो के पीछे चलते हैं और उसकी विस्तृत अलौकिक शक्तियों से लाभ उठाते हैं। मगर यह समझना गलतफ़हमी से खाली न होगा कि भगवान ने हमारी घुट्टी में हीरो-वर्शिप का माद्दा डाला तो हममें यह क़ाबलियत भी पैदा कर दी कि हम एक सच्चे हीरो को रंगे हुए सियारों से अलग करके पहचान सकें। बहुत बार ऐसा हुआ कि मामूली रग और पुट्ठे के लोग सांसारिक इच्छाओं और वासनाओं के वश में आकर हीरो बन बैठे, जनता ने उन पर विश्वास किया, उन्हें अपना नेता बनाया और उनके इशारों पर चले मगर जब विद्वानों ने उन बने हुए हीरोओं की बातों और कामों को अक्ल की कसौटी पर कसा तो उनकी सारी कलई खुल गयी। अगर ऐसा हीरो उस वक्त तक ज़िन्दा रहा तो जीते जी और मरा तो मरने के बाद लानतों का शिकार बनाया गया। यह नकली हीरो दुनिया में इतने ज्यादा हुए और इतनी बार उनके भाँडे फूटे कि हमको एक सच्चे हीरो का अनुसरण करते हुए भटक जाने का खतरा लगा रहता है और यही कारण है कि कभी-कभी सच्चे हीरो अवतरित हुए, हमारी बुरी दशा को सुधारने के लिए इतनी मायापच्ची करते रहे, हमारी भलाई के लिए गला फाड़-फाड़ चिल्लाये, हमको भटका हुआ पाकर सीधा रास्ता दिखाने की कोशिश की मगर हमारे कान पर जूँ तक न रेंगी। हम उनको भी नकली हीरो समझा किये। निरन्तर असफलताओं ने उनके दिल तोड़ दिये और वह अपने दृढ़ संकल्पों और बुलन्द अरमानों को लिये हुए इस दुनिया से सिधार गये। मगर उनका सच्चा हाल उनकी मौत के बाद सर्वसाधारण को पता चला तो हमने अफ़सोस के साथ हाथ मले और जिनसे जीवनकाल में दूर-दूर रहते थे उनके मरने के बाद उनकी समाधि की पूजा की और उनके स्मारक बनाये ताकि उनका नाम कायम रहे। जूलियस सीज़र जब तक ज़िन्दा रहा

लोग उस पर यह लाछन लगाते रहे कि वह अपने अधिकारों का अनुचित उपयोग कर रहा है और रोम के प्रजातन्त्र को धूल में मिलाकर खुद बादशाही किया चाहता है। आखिर बेरहमों ने उसको कत्ल किया मगर उसके मरने के बाद जब उसकी बातें और उसके काम जांचे गये तो उनमें सच्चाई और नेकी कूट-कूटकर भरी पायी गयी और लोग उसे हीरो मानने लगे।

क्रामवेल, जिसके हालात हम आगे चलकर संक्षेप में बतलायेंगे, जब तक ज़िन्दा रहा गलतफ़हमियों की बौछारें सहता रहा। मरने के बाद उसके दुश्मनों ने उसकी मट्टी पलीद करने में कोई कसर नही छोड़ी। आखिरकार उन्नीसवी सदी मे कार्लाइल ने उसका उचित सम्मान किया, उसके विचारों और कार्यों और सिद्धान्तों को दुनिया के सामने निष्पक्ष भाव से प्रस्तुत किया और उसकी मेहनतों का नतीजा यह हुआ कि आज क्रामवेल का नाम इज्ज़त से लिया जाता है और अब इतनी ही बात पक्की नही है कि वह सच्चा हीरो था बल्कि सच्चे हीरोओं में उसको एक विशिष्ट स्थान दिया गया है। बाज़ारों मे कभी-कभी खोटे सिक्के भी चालू सिक्कों के पर्दे में छिपे रहते हैं मगर उनकी असलियत परख ली जाती है और वह बड़ी बेदर्दी से फेंक दिये जाते हैं। काश भगवान हमें कोई ऐसी तेज़ कूवत देता कि हम इस सूरत मे भी खोटे-खरे को परख लिया करते। क्या खूब कहा है ज़ौक ने—

गौहर को जौहरी और सर्राफ ज़र को परखे
ऐसा कोई न देखा वह जो बशर को परखे ॥

क्रामवेल की पैदाइश, बचपन और शिक्षा

ओलिवर क्रामवेल २५ अप्रैल सन् १५९९ ई० को हंटिंगडन में पैदा हुआ। उसके बाप का नाम राबर्ट क्रामवेल था और उसकी माँ का नाम एलिज़ाबेथ स्टुअर्ड। क्रामवेल और स्टुअर्ड दोनों खान्दान मठों के टूटने के बाद उन्नति की सीढ़ी पर चढे थे और प्राचीनता व कुलीनता की दृष्टि से इंगलिस्तान के ऊंचे से ऊंचे खान्दानों की बराबरी कर सकते थे।

क्रामवेल का चचा सर ओलिवर क्रामवेल जो इस नवजात क्रामवेल का धर्मपिता भी था, हंचिनब्रुक का प्रतिष्ठित ज़मीन्दार था और अमीरों की तरह बड़े ठाठ-बाट से रहता था। वह अपने पास-पड़ोस में ही प्रतिष्ठित नही गिना जाता था बल्कि शाही दरबारों में भी उसकी बड़ी आवभगत थी। महारानी एलिज़ाबेथ ने कई बार इस क़स्बे को अपनी चरण-धूलि से पवित्र किया था और उसकी मृत्यु के बाद जेम्स भी यदा-कदा यह सम्मान उस क़स्बे को देता रहा।

जिस वक्त क्रामवेल पाँच बरस का था जेम्स बड़ी शान-शौकत से वहाँ पहुँचा था और कई दिन तक महफ़िलें खूब गर्म रहीं, शीशा-ओ-शराब का दौर चला।

क्रामवेल का बाप औसत दर्जे का आदमी था। उसके अधिकार में हंटिंगडन की छोटी-सी काश्तकारी थी जिससे हज़ार पौंड सालाना का फ़ायदा हो रहता था। क्रामवेल की माँ के कब्ज़े में ढाई सौ पौंड सालाना के मुनाफ़े की ज़मीन थी जो वह अपने मैके से दहेज के रूप में लायी थी। गो मौजूदा ज़माने की माली हैसियत के लिहाज से इस आमदनी का शुमार औसत आमदनियों के आखिरी दर्जे में होगा, मगर उस ज़माने में रोज की जरूरतें इतनी ज्यादा न थी और यह आमदनी एक शरीफ़ खान्दान के गुज़र-बसर के लिये काफ़ी थी।

राबर्ट क्रामवेल एक सुलझा हुआ, गंभीर और समझदार आदमी था। उसकी सहज प्रवृत्ति एकान्तवास की ओर थी और इस आदत ने उसे सर्वसाधारण की दृष्टि में घमण्डी बना दिया था। उसे बहुत से इल्मों में काफ़ी दखल था और गो आज के ज़माने में इल्मी काबलियत कोई असाधारण बात नहीं मगर उस ज़माने में यह बेशक असाधारण बात थी। अमीरों और ऊँचे घरवालों की रुचि ज्ञानार्जन की ओर न थी बल्कि अकसर अमीर लोग इसको नीची दृष्टि से देखते थे। अगर उन्हें बाइबिल पढ़ना आ गया तो बस पंडित हो गये, फिर उन्हें कुछ और जानने की जरूरत नहीं। हाँ, सैनिक-शिक्षा उनको खूब दी जाती थी और जानवरों का शिकार करना उनका प्यारा शगल था।

एलिजाबेथ स्टुअर्ड, क्रामवेल की माँ, सर टामस स्टुअर्ड की बहन थी। चूँकि सर टामस के कोई सन्तान न थी उसने ओलिवर को गोद लेकर उसे अपना उत्तराधिकारी घोषित कर दिया था। एलिजाबेथ की शादी विलियम लिन से हुई थी मगर वह कुछ ही दिनों बाद परलोक सिधारा। तब इस विधवा ने राबर्ट क्रामवेल से शादी की और भगवान ने उनको दस सन्तानें दीं मगर कई लड़के, एक के बाद एक, अपने माँ-बाप को दाग देकर स्वर्ग सिधारे। बेटों में सिर्फ क्रामवेल जो पाँचवाँ लड़का था जीता-जागता बचा था। क्रामवेल की माँ बहुत नेक, गम्भीर, सच्चरित्र और सादगी पसन्द करनेवाली स्त्री थी। यह अन्तिम गुण उस ज़माने की औरतों में विरलों ही में पाया जाता था। टीमटाम का चारों तरफ़ ज़ोर था और बनावट, आडम्बर, एक सर्वव्यापी बीमारी थी।

राबर्ट और एलिज़ाबेथ दोनों हंटिंगडन के देहाती मकान में बहुत इत्मीनान से ज़िन्दगी बसर करते थे और अपनी समझदारी, किफ़ायतशारी और सादगी से एक लम्बे-चौड़े खान्दान की, जिसमें दस बच्चे थे, बखूबी परवरिश करते थे। यह उनके प्रबन्ध-कौशल की खूबी थी कि उन्हें गरीबी या मुहताजी की तकलीफ़ें न उठानी

पड़ती थीं। यह नेक बीवी अपने प्यारे शौहर की मौत के बाद सैंतीस बरस तक जिन्दा रही और अपनी लड़कियों की शादियाँ अच्छे खान्दानों में कीं। बहुत कम माँएँ ऐसे बच्चे जनती हैं जो अपने मजबूत इरादों से उनकी बेइन्तहा तकलीफ़ें हरते हैं। जब उसकी ज़िन्दगी के दिन पूरे होने को आये तो उसने क्रामवेल से दर्ख्वास्त की कि मुझे मेरे खान्दानी कब्रिस्तान में दफ़न कीजो, मगर क्रामवेल को यह कब गवारा हो सकता था कि उसे एक गुमनाम जगह पर दफन करे। चुनांचे बादशाहों की सी आन-बान से उसकी अंतिम क्रिया की गयी और वह वेस्टमिंस्टर में ही दफन हुई। जब शाही ताकत एक बार फिर नये सिर से लौटी तो दुश्मनों और जासूसों से यह भी न देखा गया कि उसको जमीन के एक कोने में खामोश पड़ा रहने दें। बेचारी की हड्डियाँ खुदवाकर बड़ी ज़िल्लत के साथ एक गड्ढे में फेंक दी गयीं।

ऐसे माँ-बाप का होनहार बच्चा ओलिवर क्रामवेल था। उसके बचपन के हालात बहुत कम मालूम हैं। हाँ, उस जमाने की कुछ जनश्रुतियाँ अलबत्ता प्रसिद्ध हो गयी हैं। यह एक आम कायदा है कि प्रसिद्ध व्यक्तियों के बारे में कुछ जन-श्रुतियाँ प्रसिद्ध हो जाया करती हैं। इसका कारण या तो यह है कि बचपन ही से आगामी महानता के लक्षण दिखायी पड़ने लगते हैं या नासमझ जनता उनकी चमत्कारिक उपलब्धियों को देखकर भौचक रह जाती है और उनके बारे मे कुछ जनश्रुतियाँ गढ़कर अपनी तसकीन कर लिया करती है। हम बड़े लोगों के जीवन-चरितों में चमत्कारिक बातों के देखने के इतने आदी हो गये हैं कि हमारी आँखें शुरू ही से उनकी तलाश करने लगती हैं। यह शायद इन्सान की नेचर में शामिल है कि वह हर एक महान् कार्य को असाधारण बातों से जोड़ लेता है और यह एक हद तक सही भी है क्योंकि कोई महान् कार्य असाधारण गुणों के बिना नहीं किया जा सकता।

कहते हैं कि एक बार ओलिवर क्रामवेल को सपने मे यह पुकार सुनायी पड़ी कि तू इंग्लिस्तान का सबसे बड़ा आदमी होगा। जब उसने अपने बाप से यह क़िस्सा कहा तो उसने उसका खूब कान गरम किया।

दूसरी जनश्रुति यों है कि जब शहज़ादा चार्ल्स अपने शानदार बाप जेम्स के साथ नार्थब्रुक को आया था तो वहाँ उसकी और क्रामवेल की किसी बात पर अनबन हो गयी। नौबत हाथापाई तक पहुँची और आखिरकार क्रामवेल मीर रहा। एक और किंवदन्ती यों प्रसिद्ध है कि वह आसपास के अंगूरिस्तानों पर बड़ी आज़ादी से हमले किया करता था और बाग़बानों ने उसकी लूटपाट से तंग आकर उसे सेबों का शैतान कहकर पुकारना शुरू किया था।

क्रामवेल की आरम्भिक शिक्षा हंटिंगडन के फ्री स्कूल में हुई। उस वक्त इस स्कूल में हेडमास्टर टामस बेयर्ड था और अपने इस नये छात्र की नैसर्गिक विशेषताओं को देखकर वह उसका दोस्त हो गया। बेयर्ड अपने देहान्त के समय तक इस स्कूल के प्रधान के पद पर रहा और हंटिंगडन में लेक्चर देता रहा। क्रामवेल भी उसको उचित मान देने में अपनी तरफ से कुछ उठा न रखता था। फ्री स्कूल का कोर्स खत्म करने के बाद क्रामवेल हंटिंगडन के ग्रामर स्कूल में भेजा गया था और यहाँ उसने अपने विद्यार्थीकाल का बड़ा हिस्सा खत्म किया। सत्रहवें बरस में उसने यहाँ अपनी शिक्षा पूरी की और केम्ब्रिज यूनिवर्सिटी में दाखिल हुआ। इसका कोई विश्वसनीय साक्ष्य नहीं कि वह कितने दिनों यहाँ पढ़ता रहा मगर यह मालूम है कि उसने कोई बड़ी सनद नहीं हासिल की। उसके भाषणों और पत्रों से अलबत्ता पता चलता है कि उसको अंग्रेजी और लैटिन भाषाओं पर अधिकार था और कुछ इतिहासकार कहते हैं कि वह यूनान और रोम का इतिहास बहुत अच्छी तरह जानता था। क्रामवेल के कालेज के जमाने की जिन्दगी के हालात भी सन्देहपूर्ण हैं। इतिहासकारों का कथन भी एक दूसरे से भिन्न है। कुछ कहते हैं कि वह बड़ा स्वच्छन्द और हठीला छात्र था और अपना समय खेल-तमाशे में काटता था। दूसरे कहते हैं कि वह बड़ा परिश्रमी छात्र था। क्रामवेल का मन चाहे शिक्षा की ओर प्रवृत्त रहा हो या न रहा हो मगर इसमें कोई सन्देह नहीं कि वह नेचर के पन्नों का अध्ययन बहुत जी लगाकर करता था; बजाय इसके कि शेक्सपियर के काल्पनिक चित्रों का अध्ययन करे, वह प्रकृति के जीते-जागते चित्रों का अध्ययन करता था। जमाने की तबदीली को बड़े गौर से देखता था और मानव हृदय के आकस्मिक उलट-फेर को खूब जानता था। उसके जमाने में ऐसी ऐसी घटनाएँ हो गयीं जो किसी उन्नत विचारों के दृढ़व्रती हृदय पर प्रभाव डाले बिना नहीं रह सकती थीं। सोलहवीं सदी के साथ शानदार ट्यूडर वंश का अन्त हुआ और स्टुअर्ट वंश के अत्याचारी बादशाह उनके उत्तराधिकारी हुए। जब वह छः बरस का था गन पाउडर प्लाट ने तमाम देश में हलचल मचा दी। ग्यारह ही बरस का था कि फ्रांस के बादशाह हेनरी चतुर्थ को अपनी रिआया के हाथों कत्ल होते देखा। धार्मिक लड़ाइयाँ भी बड़ी सरगर्मी से लड़ी जा रही थीं। प्यूरिटन दल के लोगों ने, जिनका पार्लमेण्ट में इस वक्त बड़ा जोर था, जेम्स को धार्मिक मामलों में यहाँ तक तंग किया कि आखिरकार उसको हैम्पडेन कोर्ट में एक अधिवेशन बुलाना पड़ा। जेम्स धार्मिक बातों को काफ़ी समझता था और शिक्षा भी ऊँचे दर्जे की पायी थी, उसने इस अधिवेशन में प्यूरिटन दल की सबल युक्तियों के ऐसे मुँहतोड़ जवाब दिये। मगर नतीजा इतना हुआ कि बाइबिल का तर्जुमा इबरानी से अंग्रेज़ी ज़बान में किया जाने लगा।

उन्नीसवें साल में था जब सर वाल्टर रैले तेरह बरस लंदन टावर (जेलखाना) में क़ैद रहने के बाद फाँसी पर चढाया गया और उसी ज़माने में तीसवर्षीय युद्ध का आरम्भ आस्ट्रिया में हुआ जिसने तमाम योरप मे तहलका मचा दिया।

क्रामवेल केम्ब्रिज में मुशकिल से एक बरस रहा होगा कि अनाथ हो गया। अब मजबूर होकर शिक्षा को अन्तिम नमस्कार करना पड़ा क्योंकि उसकी मौरूसी जायदाद का इन्तज़ाम करनेवाला कोई न था। अतः वह हंटिंगडन को वापस आया और बडी मेहनत से अपनी जायदाद का इन्तज़ाम करना शुरू किया।

क्रामवेल की शादी

ठीक जवानी के उठान के वक्त पिता की छाया सर से उठ जाना अक्सर घर की बर्बादी का कारण होता है और सम्पन्न वर्ग के स्वच्छन्द युवकों के लिए तो माँ-बाप की मृत्यु दुराचार और इंद्रियभोग की भूमिका है। क्रामवेल भी इसी वर्ग का नवयुवक था और चूँकि उसको अपने सच्चरित्र होने पर पूरा विश्वास न था इसलिए उसे हरदम यह डर लगा रहता था कि कहीं बुरी वासनाएँ उसको सीधे रास्ते से विमुख न कर दें। उसे मालूम हो गया कि इन खतरों की बुनियाद आज़ादी है। लिहाज़ा उसने अपनी आज़ादी ही पर हाथ साफ़ करने का पक्का इरादा किया। इंग्लिस्तान मे अमूमन् मर्दो की शादियाँ पच्चीसवें बरस के बाद हुआ करती थी मगर क्रामवेल ने अपने इक्कीसवें ही साल मे यह तौक अपने गले में ला डाला। २२ अगस्त १६२० को उसकी शादी एलिज़ाबेथ बोर्चियर से हुई। यह स्त्री बहुत समझदार, दृढचित्त, आडम्बरहीन और स्नेही थी। अपने जीते जी उसने क्रामवेल के साथ मुहब्बत कायम रखी, यहाँ तक कि शादी होने के पच्चीस बरस बाद जब कि अक्सर पति-पत्नी मे एक तरह की उदासीनता आ जाया करती है, जो खत क्रामवेल ने अपनी बीवी को लिखा है वह प्रेम की उमंग में लिपटे हुए शब्दो से ऐसा भरा हुआ है कि जैसे किसी युवक पति के कलम से निकला है।

क्रामवेल अपनी बीवी को लेकर हंटिंगडन को आया और ज़ोर-शोर से अपनी खेती-बाडी में लग गया। ऐसा बहुत कम संयोग हुआ है कि एक साधारण, शान्तिप्रेमी किसान के रोज़ाना हालात विस्तार के साथ लिखे हुए मिल सकते हो या उनमें किस्सों की सी दिलचस्पी और अजब-अनोखी बातें पायी जाती हो। क्रामवेल की जिन्दगी यहाँ कुछ ऐसी सादगी और खमोशी से बसर होती थी कि उसके बहुत कम हालात मालूम होते हैं। यह अलबत्ता मालूम है कि वह अपने खान्दान के साथ सच्चा और नि.स्वार्थ प्रेम रखता था। उसके खान्दान का हरएक मेम्बर उसकी आँखों का तारा था और इसके बदले में क्रामवेल भी तमाम कुनबे के

स्नेह और आदर के मजे लेता था। इस आपसी मेल-मुहब्बत और बेलौस रहन-सहन ने बेशक उसके जीवन को स्पृहणीय बना दिया है। वह जनसाधारण से बड़ी बेतकल्लुफी और सादगी से मिलता था और आसपास के तमाम लोग उसका आदर करते थे। हंटिंगडन में वह ग्यारह बरस रहा। इस बीच वह सिर्फ़ एक बार, सन् १६२८ में, अपने कस्बे से निर्वाचित होकर पार्लमेंएट में शरीक हुआ था। जब वह निश्चित अवधि यानी एक साल के बाद लौटा तो फिर वही साधुओं जैसा जीवन व्यतीत करने लगा। १६३२ में उसने हंटिंगडन को बय कर दिया और सेण्ट आयुलेस मे आकर रहने लगा। यहाँ भी उसने काश्तकारी का नक्शा जमाया मगर शायद उसकी तबीयत यहाँ से उचाट हो गयी क्योंकि उसने चार ही बरस बाद इस खेती को भी बेच दिया और अपने मामा के घर को, जो इलाई नाम के कस्बे मे था, अपना निवास बनाया। इस कस्बे मे वह अमन-चैन से सन् १६४२ तक रहा। खेती करवाता था और उसकी आमदनी से अपने बड़े कुनबे की परवरिश करता था। और फिर क्रामवेल की उदारता सिर्फ अपने खान्दान तक ही सीमित न थी, अकसर वह मुसीबत के मारे गरीबों की तकलीफ और मुसीबत मे शरीक होता था। जो कुछ वह अपनी रोजमर्रा की जरूरतो से बचा सकता था, मुसीबत के मारे हुओं के साथ हमदर्दी करने मे खर्च करता था। भगवान् ने उसको सहानुभूतिशील और मैत्रीपूर्ण हृदय दिया था। कहते हैं कि वह दिन भर मे दो बार अपने खेतों के तमाम मजदूरों को अपने चारों ओर जमा करके बाइबिल से दुआ पढ़ता था और गो इस मजहबपरस्ती से उसको माली नुकसान पहुँचता था मगर वह अपने मजहब और उसके प्रचार के लिए जान-माल को कुछ न समझता था। क्रामवेल प्यूरिटन धर्म का पक्का अनुयायी था। दुनिया में जितनी चीजें है सभी में अच्छी और बुरी दोनों बातें पायी जाती है। प्यूरिटन भी इस नियम के अपवाद न थे। उनके धर्म मे सदाचार, आस्तिकता, इंद्रियदमन, स्वतंत्रता-प्रेम, सहानुभूति और कर्तव्यपालन की शिक्षा, सब कुछ था। लेकिन इसके साथ-ही-साथ धार्मिक कट्टरता और विध्वंसकारी धार्मिक आवेश अकसर उनकी और सब खूबियों को दबा लेते थे। प्यूरिटनों को अगर लड़ाई के मैदान मे देखिए तो दृढ़ता, साहस और वीरता की जिन्दा तसवीर पाइएगा और अगर हुकूमत के दरबार मे देखिए तो समझदारी, दूरंदेशी और सचाई का आला नमूना पाइएगा। मगर लड़ाई के मैदान मे उनका हद से बढ़ा हुआ धार्मिक कट्टरपन हजारों घरों को बेचिराग कर देता है और हुकूमत के दरबार में उनका हद से बढ़ा हुआ स्वतंत्रता प्रेम पार्लमेंएट की सत्ता और प्राचीन अधिकारों पर घातक हमला करता है।

प्यूरिटन धर्म स्पष्ट रूप मे सभी दिखावे और आडम्बर की चीजों से घृणा

करता था। उसका मन्दिर, उसका कलीसा, जो कुछ था, बाइबिल थी। यह कहा जा चुका है कि जेम्स के राज्यकाल में इस देव-ग्रन्थ का अनुवाद इबरानी से अंग्रेजी भाषा में किया गया। इसके अनुवादक बहुत बुद्धिमान, परमात्मा से डरने वाले और विद्वान लोग थे। कई महीने तक निरन्तर परिश्रम करने के बाद यह अनुवाद पूरा हुआ। एक ऐसे समय में जबकि व्यापार को दिन दूनी रात चौगुनी तरक्की ने सबका ध्यान रुपया हासिल करने की तरफ खींच लिया था और ईसाई धर्म समय के फेर में पड़कर बनावटी और नुमाइशी रस्मों का ढेर हो गया था, इस किताब का छपना सर्वसाधारण के लिए अमृत का काम कर गया, उनकी धार्मिक प्राणरक्षा का कारण हो गया। यह तो जाहिर ही है कि इबरानी जबान पर इतना अधिकार होना कि इंजील समझने की योग्यता हो जाय जनसाधारण के वश की चीज नहीं थी और इसलिए कुल आबादी का बहुत बड़ा हिस्सा भगवान की उपासना करने से मजबूर था। बेशक विकलिफ़ का तर्जुमा मौजूद था मगर अंग्रेजी ज़बान की तब्दीलियों ने उसे साधारण लोगों की समझ के योग्य न रखा था। जिस उत्साह से इस धार्मिक पुस्तक का स्वागत किया गया वह इस बात का गवाह है कि लोग उसकी आस लगाये थे और उसका इन्तज़ार कर रहे थे। यह पुस्तक बहुत जल्द लोकप्रिय हो गयी और अंग्रेजी विचारों को जितना इस पुस्तक ने सुधारा उतना शायद किसी दूसरी पुस्तक ने न किया हो। इस वक़्त न कहीं शेर-ओ-शायरी का चर्चा था और न कवियों और गद्यकारों का ज़ोर था। अगर सुन्दर गद्य था तो यही बाइबिल और कविता थी तो यही बाइबिल। बेशक शेक्सपियर की अनमोल कृतियाँ मौजूद थीं मगर उस वक्त जनसाधारण में प्रचलित न थी, सिर्फ थिएटरों और तमाशागाहों में उनका नाम सुना जाता था या फैशनेबुल शरीफों के हलके में। जनसाधारण व्यवहारतः लिखने-पढ़ने से वंचित थे। क्रामवेल इस किताब का बहुत बड़ा प्रेमी था। उसने अपने मन वचन और कर्म को इसी किताब के साँचे में ढाला था। उसकी ज़बान भी बिल्कुल बाइबिल से मिलती है। प्यूरिटन धर्म के लोग बाइबिल पर अंधी श्रद्धा रखते थे। उस वक्त तक उन बड़े लोगों का अस्तित्व न था जिन्होंने इंजील को बुद्धि और विवेक की कसौटी पर कसा। हरेक प्यूरिटन का पूर्ण विश्वास था कि मरने के बाद उन्हें भगवान की अदालत में जाना पड़ेगा और वहाँ अपने कर्मानुसार पुरस्कार या दण्ड भुगतना पड़ेगा। जब वह कहता था कि हे भगवान मेरी मदद कर तब वह अपने भगवान के काल्पनिक चित्र को साक्षात् अपनी आँखों के सामने खड़ा पाता था। जब उसको कामयाबी हासिल होती थी तो वह समझता था कि भगवान उसकी मदद कर रहा है। जब वह मुसीबत में फँसता तो समझता था कि शैतान उस पर

हावी हो गया है। जितने अच्छे काम वह करता था उन सबकी प्रेरणा का स्रोत भगवान था, जितने बुरे काम होते थे उन सबका प्रेरक शैतान था। यह उनका विश्वास था और इस विश्वास से जितनी भलाई या बुराई हो सकती थी उन सबों का कर्ता क्रामवेल था क्योंकि वह महज़ प्यूरिटन न था बल्कि प्यूरिटनों का प्यूरिटन था।

एलिजाबेथ से क्रामवेल के नौ बच्चे पैदा हुए। उनमें से एक तो बचपन ही में जाता रहा, चार लड़के और चार लड़कियाँ जवानी की उम्र तक पहुँचे।

क्रामवेल की जिन्दगी का सबसे बड़ा और याद रखने के काबिल काम सन् १६४० की सिविल वार में शरीक होना था और सिर्फ़ शरीक होना ही नहीं बल्कि उसके नतीजों के हासिल करने में मन-प्राण से डूब जाना था। यह स्पष्ट है कि उसने जनता का अनुसरण किया और बादशाह की शक्ति के विरोध पर कमर बांधी मगर इसका कारण यह नहीं कि उसे निजी तौर पर शाही हुकूमत से कोई शिकायत या नफ़रत थी या वह इतना दृढ़व्रती और ऊँचे विचारों का राजनीतिक विचारक था कि प्रजातंत्र की बुनियाद डाला चाहता था। इसके विपरीत वह शाही हुकूमत का समर्थक था और जब संयोग और घटनाओं ने राज्य की बागडोर उसके हाथों मे दे दी तो जिस हुकूमत पर उसने जोर दिया वह व्यवहारत. शाही हुकूमत थी। हाँ, उस नाम को छोड़ दिया गया था। कुछ आलोचकों ने लिखा है कि लड़ाई के शुरू में वह प्रजातांत्रिक राज्य के लिए सशस्त्र हुआ था मगर जब उसने स्थिति को पलटते देखा तो सिर्फ़ अपना ख़याल करके शाही हुकूमत क़ायम करनी चाही। इसका सही अन्दाजा करना कि यह कथन कहाँ तक सच है प्रायः असम्भव है मगर यह सूरज की तरह रौशन है कि वह परले सिरे का पवित्र सदाचारी आदमी था और उसने जनता की भलाई को अपनी व्यक्तिसत्ता की वेदी पर हरगिज न चढ़ाया होगा।

उसने शाही हुकूमत का विरोध क्यों किया, इसके कारण स्पष्ट हैं। उस जमाने में रिआया पर बेजा जुल्मों की भरमार थी। बादशाह चारों तरफ़ जुल्म ढा रहा था। लिहाजा हर खास व आम, छोटा और बड़ा, बुरा और भला गवर्नमेन्ट की सख्तियों और जुल्म से दुहाई मचा रहा था। सिर्फ़ वही लोग बरी थे जिन पर बादशाह की विशेष कृपादृष्टि थी। क्रामवेल का देशप्रेम और हमदर्दी इन अत्याचारों को न देख सकती थी—कौम के हर हमदर्द की तबीयत का वही तकाजा होना चाहिए जो क्रामवेल का था। जब वह गौर करता था कि इस अव्यवस्था का असल कारण क्या है तो उसको स्वभावतः यह जवाब मिलता था कि चार्ल्स की सल्तनत, और उसका इलाज उसकी समझ में यह था कि या तो

अत्याचार एक सिरे से दूर कर दिये जायें या चार्ल्स की सल्तनत जड़ से उखाड़ फेंकी जाय। पहली सूरत जरूर ज्यादा अच्छी थी मगर चार्ल्स गजब की मनमानी करने वाला आदमी था, मुमकिन न था कि उसके पत्थर-से दिल पर किसी के समझाने-बुझाने का कुछ भी असर पड़ता। लिहाजा मजबूर होकर दूसरा रास्ता अख्तियार करना पड़ा। जिस तरह ब्रूटस ने कहा था कि मुझे क़ैसर से जरूर मुहब्बत थी मगर रोम की मुहब्बत उससे कई गुना ज्यादा थी, उसी तरह क्रामवेल के बारे में भी कहा जा सकता है कि उसको शाही हुकूमत जरूर पसंद थी मगर जनता की तकलीफ़ उसके दिल पर एक भारी पत्थर थी।

कार्लाइल का कहना है कि यह सिविल वार असलियत में नेकी और बदी की लड़ाई थी। उस जमाने में ईसाई धर्म विकृत होकर नास्तिकता की सीमा तक पहुँच गया था। पक्के धर्मपरायण बहुत कम रह गये थे। प्यूरिटन दल अलबत्ता अपने विश्वास पर डटा हुआ था और चूँकि प्यूरिटनियों के नजदीक जितने बुरे काम होते थे उन सबका प्रेरक शैतान हुआ करता था इसलिए उनको इंग्लिस्तान की रद्दी हालत देखकर स्वभावतः यह ख़याल हो गया कि यहाँ शैतानियत का जोर है और वह शैतान को पछाड़ने के लिए दिलोजान से लड़े। दुनिया का इतिहास ऐसी शानदार लड़ाइयों से भरा पड़ा है। फ्रेंच रिवोल्यूशन एक मामूली मिसाल है।

जेम्स के बाद चार्ल्स मार्च सन् १६२५ ई० में राजगद्दी पर आया और मई में उसकी शादी हेनरी चतुर्थ की लड़की यानी लुई तेरहवें की बहन हेन-रियेटा से हुई। जनता ने उसके शुभ आगमन का नारा बड़े उत्साह और जोश से लगाया और कई दिन तक खुशियाँ मनायी गयी क्योंकि लोग जेम्स की हुकूमत से तंग आ गये थे और उनको उम्मीद थी कि यह नया बादशाह जरूर उनकी गर्दन का बोझ हल्का करेगा। अगर उनको सचमुच ऐसी उम्मीद थी तो वह पूरी न हुई क्योंकि यह बादशाह दैवी अधिकार (डिवाइन राइट) और बिना कान-पूँछ हिलाये आज्ञापालन करवाने के मामले में अपने बाप से भी आगे बढ़ा हुआ था।

अपने जीते जी वह बराबर प्रयत्नशील रहा कि सारी हुकूमत बेरोकटोक उसी के हाथों में रहे। उसकी बीवी, जो उसकी सलाहकार थी, उसकी आँखों के सामने फ्रांस के बादशाह के ऐश्वर्य और प्रभुत्व का नक्शा खींचती थी और चार्ल्स को भी बादशाहत का वही ढंग अपनाने पर जोर देती थी।

चार्ल्स का दूसरा सलाहकार विलियर्स ड्यूक आफ बकिंघम था। इस आदमी से चार्ल्स को बचपन से ही प्यार था, चुनांचे इस वक्त वह उसका जिगरी दोस्त

भी था और सलाहकार भी, मगर चार्ल्स और बकिंघम दोनों जिद्दी थे, घमण्डी थे। प्रबन्ध कौशल मे दोनों कमजोर थे। भगवान् ने एक को भी नजर की गहराई, दूरंदेशी और निश्चय की स्थिरता नही दी थी, जो एक देश की व्यवस्था करने वाले मे विशेष रूप से पायी जाती है। एक को भी वह आँखों की तेजी न हासिल थी जो जनता के विचारो की गति को ठीक-ठीक देख सकती, परख सकती। जेम्स ने बहुत से अत्याचार किये मगर उसके राज्यकाल में रिम्राया के दिलो मे विद्रोही भाव पक्के नही होने पाये चूँकि जब वह चारों तरफ़ से घिर जाता था तो हमेशा बीच का रास्ता अख्तियार करके अपना काम निकाल लिया करता था। मगर चार्ल्स की गिरफ़्तारी ऊँट की गिरफ्त से भी बढ़ी हुई थी, वह जिस बात पर अड जाता था उसे छोड़ना सीखा ही न था।

चार्ल्स ने गद्दी पर बैठने के थोडे ही दिनों बाद रुपये की जरूरत से मजबूर होकर पार्लमेण्ट बुलायी और अपना मन्तव्य प्रकट किया। पार्लमेण्ट ने उस वक्त तक आर्थिक सहायता देने से इन्कार किया जब तक राज्य की तमाम गड़बड़ियाँ दूर न कर दी जायँ। अगर 'दैवी अधिकार' और 'मौन आज्ञापालन' चार्ल्स का नियम था तो 'सुधार नही तो आर्थिक सहायता नही' रिम्राया का। आखिर इस हस्तक्षेप से, जिसे वह अनुचित समझता था, रुष्ट होकर चार्ल्स ने पार्लमेण्ट को बर्खास्त कर दिया और लगभग एक साल तक पार्लमेण्ट की सहायता के बिना बादशाही की। मगर आर्थिक सहायता के बिना राजकाज कैसे संभव होता। विवश होकर सन् १६२६ में दूसरी पार्लमेण्ट एकत्र हुई। इन दोनों पार्लमेण्टों में ऐसे ऐसे अक्लमन्द और हौसले वाले हमदर्द मौजूद थे जिनका नाम आज तक जगमगाते हुए तारो की तरह रौशन है। कौम के हमदर्दों का एक झुरमुट था जिसमें इलियट, पिम, सेल्डेन, कुक, हैम्पडेन, स्टुअर्ड जैसे मशहूर लोग मौजूद थे और जैसा हिम्मतवर झुरमुट दुबारा इंग्लिस्तान में न दिखायी दिया। इस पार्लमेण्ट ने जमा होते ही राज्य-व्यवस्था पर हमले करने शुरू किये। जनता के सामने बकिंघम की भर्त्सना की और जब तक कि उनके कष्टों की सुनवायी नही होती, आर्थिक सहायता देने से इन्कार किया। आखिर चार्ल्स ने गुस्से में आकर इस पार्लमेण्ट को भी बर्खास्त किया। लगभग दो साल तक चार्ल्स ने कोई पार्लमेण्ट नही बुलायी। आर्थिक जरूरतो को अनुचित और अन्यायपूर्ण साधनों से पूरा करता रहा। जबर्दस्ती क़र्ज़ लिये जाते थे जिनके अदा करने का वादा किया जाता था मगर झूठा वादा कौन पूरा करता है। अदालतों में जितने मुजरिम आते थे उनको शारीरिक कैद के बदले जुर्माने की सजा दी जाती थी। टैक्स बहुत सी चीज़ों पर बढा दिया था। लगभग तमाम रोजमर्रा जरूरतों का ठेका दे रखा था और

ये ठीकेदार उन चीजों को अनाप-शनाप दामों पर देते थे। कोई पक्का और टिकाऊ ढंग था तो वह पार्लमेण्ट की मंजूरी थी लेकिन चार्ल्स पार्लमेण्ट बुलाने से पहलू बचाता रहता था, अगर जब-तब उसे आकस्मिक कठिनाइयों और परेशानियों का सामना न करना पड़ता। उसका कहना था कि पार्लमेण्ट का काम सिर्फ यह है कि अपने सामर्थ्य भर बादशाह की जान-माल से मदद करे, मगर व्यवस्था के मामलों में हस्तक्षेप न करे। मुश्किल से दो साल बीतने पाये थे कि एक जबर्दस्त मुश्किल आड़े आयी।

फ़ास के प्रोटेस्टैण्ट सम्प्रदाय के अनुयायी, जो ह्यूगिनो कहलाते थे, बिस्के की खाड़ी पर ला रोशेल मे शरण लिये हुए थे। रिशलू ने, जो बकिंघम की तरह फ़ास के बादशाह की नाक का बाल बना हुआ था, एक जबर्दस्त फ़ौज से उनको घेर लिया। इंग्लिस्तान ने हस्तक्षेप किया मगर किसी ने उस पर ध्यान न दिया। आख़िर उसने घिरे हुए लोगों का साथ दिया और बकिंघम एक बड़ी फ़ौज लेकर ला रोशेल की तरफ़ चला मगर वहाँ जबर्दस्त हार खानी पड़ी। जब बकिंघम इस तरह शिकस्त खाकर अपने देश को लौटा तो यहाँ उसकी बड़ी ज़िल्लत हुई। रिआया ने शोर मचाना शुरू किया कि उनके तमाम कष्टों का कारण बकिंघम है और उसकी गर्दन उड़ा देनी चाहिए। आख़िर १७ मार्च १६२८ को चार्ल्स की तीसरी पार्लमेण्ट जमा हुई। इसी पार्लमेण्ट में हमारा क्रामवेल भी हंटिंगडन का मेम्बर होकर आया था। पहला काम जो इस पार्लमेण्ट ने किया वह यह था कि कई अधिवेशनों में धार्मिक, व्यावसायिक, अदालती मामलों पर विचार किया और बहुत बहस-मुबाहसे और जबानी लड़ाई-झगड़े के बाद एक अधिकार-पत्र (Petition of Rights) तैयार किया गया और उसकी मंजूरी के लिए चार्ल्स पर जोर डाला गया। यह अहदनामा, अनुबंध, अंग्रेजी आज़ादी की छत का दूसरा खंभा है। इसमें चार शर्तें दर्ज थीं—

१) कोई आदमी पार्लमेण्ट की मर्ज़ी के बिना किसी क़िस्म की आर्थिक सहायता देने पर मजबूर न किया जाय।

२) कोई आदमी अदालत के सामने पेश न किया जाय जब तक कि उसकी गिरफ्तारी की काफी वजह जनता के सामने प्रचारित न कर दी जाय।

३) रिआया की मर्ज़ी के खिलाफ फ़ौजों की तादाद न बढ़ायी जाय।

४) शान्तिकाल में किसी की सज़ा जंगी क़ानून से न की जाय।

यह देखना आसान है कि इस अधिकार-पत्र ने पार्लमेण्ट के अधिकार बहुत विस्तृत कर दिये। व्यवहारतः व्यवस्था का बड़ा अंश इसकी तरफ़ आ रहा। बादशाह की शक्ति बहुत सीमित हो गयी। चार्ल्स बहुत ही हठी स्वभाव का

आदमी था मगर इस वक्त उसको मजबूरन नर्म होना पड़ा। चुनांचे उसने इस ग्रहदनामे को मंजूर किया और तब पार्लमेंएट ने उसको चार लाख पौंड दिये।

वेंएटवर्थ और लार्ड जिन्होंने शुरू में बड़ी सरगर्मी दिखाई थी अब पार्लमेंएट की ऊँची उड़ानों से इतना डरे कि बादशाह की तरफ जा मिले और इलियट पार्लमेंएट का सम्मानित नेता घोषित किया गया। क्रामवेल यद्यपि इन मामलों में शरीक था मगर प्रकट रूप से कोई काम न करता था।

इस पार्लमेंएट ने चार्ल्स को ऐसा सबक़ दिया कि उसको फिर पार्लमेंएट बुलाने की हिम्मत न पड़ी और ग्यारह बरस तक वह पार्लमेंएट के बिना हुकूमत करता रहा। जब रुपये की जरूरत महसूस होती कोई अनुचित साधन व्यवहार में लाता। इसमें कोई शक नहीं कि ऐसा करने से वह अधिकार-पत्र की शर्तों का उल्लंघन करता था मगर यह तो उसके बायें हाथ का खेल था। वह बड़ा चालाक और धोखेबाज आदमी था। वादे करना जानता था मगर उनको पूरा करना सीखा ही न था। उसने या चार्ल्स के किसी यार-दोस्त ने प्रस्ताव किया कि 'शिप मनी' यानी जहाजी टैक्स, जो पुराने जमाने में समुद्र किनारे के रहनेवालों से लड़ाई के वक्त वसूल किया जाता था, फिर से जारी किया जाय। यह रुपया समुद्री शक्ति के बढ़ाने और तटों की रक्षा में खर्च किया जाता था। गो उस वक्त न कोई समुद्री लड़ाई थी और न जमीनी मगर चार्ल्स ने यह टैक्स लगा ही दिया और इस तरह अपनी फिजूलखर्चियों के भट्टे के लिए ईंधन जमा करता रहा। चूंकि यह टैक्स सरासर नाजायज था, बहुतेरों ने इसको देने से इन्कार किया और क्रामवेल भी इसी जमात में था। वेंएटवर्थ और लार्ड जो चार्ल्स के तरफदार हो गये थे बड़े समझदार और अच्छी राय देनेवाले लोग थे। कहते थे कि बेड़ा हरगिज पार न लगेगा अगर वह किफायतशारी से काम न लेगा। लिहाजा किफ़ायत और सुलह ग्यारह बरस तक बादशाह का नियम रहा मगर परिस्थितियाँ कुछ ऐसी हुईं कि उसे ख्वामख्वाह पार्लमेंएट बुलानी पड़ी। सन् १६३८ में स्काटलैंएड वालों ने गवर्नमेंएट की सख्तियों और बेजा खर्चों से तंग आकर बगावत का झगड़ा बुलन्द किया। लिहाजा इस बगावत को दबाने के लिए रुपये की जरूरत हुई और पार्लमेंएट की रजामन्दी के बिना कोई ढंग की मदद मिलना मुमकिन न था। चुनांचे वेंएटवर्थ, जो अब अर्ल आफ़ स्टैफ़र्ड मशहूर था, आयर्लैंएड से बुलाया गया और चार्ल्स की चौथी पार्लमेंएट जमा हुई। सन् १६४० की १३ अप्रैल को बाक़ायदा तौर पर उसके अधिवेशन शुरू हुए। क्रामवेल भी केम्ब्रिज का मेम्बर होकर आया था। नतीजा यह हुआ कि पार्लमेंएट ने आर्थिक सहायता देने से क़तई इन्कार किया और चार्ल्स ने उसे सिर्फ़ तेइस दिन के बाद बर्खास्त कर दिया।

शायद बादशाह की किस्मत में लिखा हुआ था कि वह एक पार्लमेण्ट बुलाये जो आखीर में उसी की जान को फाँसी हो जाय। स्काटलैंड ने दुबारा हमला किया और पार्लमेण्ट पाँचवीं बार जमा हुई। क्रामवेल भी इसके मेम्बरो में था। यह पार्लमेण्ट तेरह बरस तक जारी रही जब कि क्रामवेल ही के हाथों उसका खात्मा हुआ।

यह पार्लमेण्ट शुरू ही से सुधार करने पर तुली हुई थी। लिहाजा हर एक मेम्बर ने अपने-अपने सूबे की तकलीफ़ों की एक फेहरिस्त तैयार की और वह फेहरिस्तें पार्लमेण्ट में पढ़ी गयी। उनका असर यह हुआ कि पार्लमेण्ट ने पचास क़ाबिल आदमियों को तैनात किया कि वह हरेक सूबे मे जाकर असलियत का पता लगायें और जो कुछ अपने निरीक्षण से प्राप्त करें वह पार्लमेण्ट के सामने पेश करें ताकि उन्ही के अनुसार सुधार-सशोधन किये जायँ। इस प्रस्ताव ने सरकारी कर्मचारियों को हद से ज्यादा भयभीत कर दिया क्योंकि सारे देश में उनकी ज्यादतियों से दुहाई मच रही थी।

लांग पार्लमेण्ट

हम यह बयान कर चुके हैं कि स्काटलैंड ने बगावत की और उस बग़ावत को दबाने के लिए रुपये की जरूरत महसूस हुई और चार्ल्स को मजबूरन पाँचवीं पार्लमेण्ट बुलानी पड़ी। यह पार्लमेण्ट तमाम अंग्रेजी पार्लमेण्टों से ज्यादा मशहूर है और चूंकि वह तेरह बरस तक जारी रही उसे लाग पार्लमेण्ट का नाम मिला। उसने बड़े-बड़े काम किये और बादशाही का पन्ना पलटकर पार्लमेण्ट की हुकूमत की बुनियाद डाली। यह आज जो हम अंग्रेजी राज्य-व्यवस्था देखते है वह क़रीब क़रीब उसी नमूने पर बनायी गयी है जो उक्त पार्लमेण्ट ने कायम किया, गो कुछ हेर-फेर कर दिया गया। इस पार्लमेण्ट में वह मेम्बर जमा हुए जो हुकूमत का सुधार करने पर दिलोजान से तुले हुए थे। क्रामवेल भी इसी जमात मे था। हरेक-मेम्बर अपने साथ एक ऐसा खरीता लाया जिसमें उसके सूबे के आदमियो की तकलीफ़ दर्ज थी और यह खरीते आम तौर पर पढे गये। वह तमाम जुल्म जो शाही मुलाज़िमों के हाथ रिआया को उठाने पड़ते थे, वह तमाम क़र्ज़े जो रिआया से जबरन वसूल किये गये थे, वह तमाम टैक्स जो रिआया पर लगाये गये थे, वह तमाम यातनाएँ जो शाही अदालतों की बदौलत रिआया को सहनी पड़ी थी और हज़ारों तरह-तरह की शिकायतें उन खरीतों मे दर्ज थीं और उनके प्रचार ने रिआया के दिलों में एक बग़ावत का जोश पैदा कर दिया। पार्लमेण्ट ने इतने ही पर बस न किया, पचास लायक आदमियों की एक कमेटी तैयार की गयी

जिसको यह काम सिपुर्द किया गया कि वह एक के वाद दूसरे सूबे का दौरा करके पता लगाये कि रिश्राया के खयालात क्या है और गवर्नमेंएट के अत्याचारों से किस हद तक रिश्राया को तकलीफ़ पहुँची है।

यह तो जाहिर ही है कि चार्ल्स ने जो कुछ ज्यादतियाँ की थीं वह सरासर अपनी ही मर्जी से नही की थी। कुछ तो मलका हेनरियेटा की सलाह और इशारे से हुई थी और कुछ स्वार्थी, खुशामदी दरबारियों की मदद से। लिहाजा जनता इन लोगों के खून की प्यासी हो रही थी। पार्लमेएट मौका ढूंढ़ रही थी कि कब कौम के इन बुरा चाहनेवालों को शिकंजे में धर कसे। चूँकि अर्ल आफ़ स्टैफ़र्ड चार्ल्स का खास दोस्त और सलाहकार था, पहले उसी की गर्दन उड़ाने का निश्चय किया गया।

(अपूर्ण)

आवाजे खल्क, बनारस मे क्रमशः प्रकाशित
१ मई १६०३ से २४ सितंबर १६०३ तक

देशी चीज़ों का प्रचार कैसे बढ़ सकता है

आजकल जब इस सवाल पर बहस छिड़ती है कि हिन्दुस्तानी उद्योग-धन्धों को तरक्क़ी क्यों नही होती तो आम तौर पर यह कहा जाता है कि अभी जनता मे देश-प्रेम और क़ौमी हमदर्दी का खयाल ऐसा नहीं फैला है, कि वह निजी फ़ायदे को नज़रअन्दाज़ करके अपने देश की चीज़ों को, बावजूद उनकी खामियों और बुराइयों के, दूसरे देशों की चीजों से बढ़कर जगह दें। इसमें शक नही कि यह दलील एक हद तक ठीक है और वास्तविकता पर आधारित है। मगर हम यह हरगिज नहीं कह सकते कि हमारी व्यापारिक मन्दी केवल इसी कारण से है। इसके कुछ और कारण भी हैं जो नीचे की पंक्तियों से प्रकट होंगे।

व्यापार के रास्ते में पहली बाधा यह है कि अभी तक हमारे देशवालों को हिन्दुस्तानी उद्योग-धन्धों और कारखानों की ज़रा भी जानकारी नही है। जिन लोगों को अखबार पढने की आदत है वह अलबत्ता कुछ कारखानों से परिचित है। आम तौर पर यह हमको नही मालूम कि हिन्दुस्तान में कौन-सी चीज कहाँ बनती है। इस अज्ञान को दूर करने का सिर्फ यही इलाज है कि विज्ञापनों से अधिक से अधिक फ़ायदा उठाया जाय और विभिन्न देशी भाषाओं मे आसानी से समझ में आने वाले विज्ञापन प्रकाशित किये जायँ। उनको आम रास्तों पर ज्यादा से ज्यादा चिपकाया जाय। हर शहर के प्रतिष्ठित लोगो की सूची बनाई जाय और समय-समय पर विज्ञापन उनके पास भेजे जायँ। कारखानों और उनकी जगहों के नाम खूब रौशन कर दिये जायँ। जिन कारखानों ने इस तरकीब से फ़ायदा उठाया है उनको आज अच्छी तरक़्क़ी हासिल है। सियालकोट, कानपुर वगैरह शहरों मे खास-खास चीजों के कारखाने खूब रौनक पर हैं। देशी दवाइयों के इश्तिहार खूब छपते हैं और आम सड़कों पर भी खूब ज्यादा दिखायी पड़ते हैं। इसी वजह से हमारी देशी दवाएँ अंग्रेजी दवाओं के मुकाबले में बहुत ज्यादा गिरी हुई हालत में नहीं है। कई आयुर्वेदिक दवाखानों की खासी आमदनी है। अभी बहुत दिन नही बीते कि बनारस में नई चाल के रेशमी कपड़े बनने शुरू हुए और आज काशी सिल्क को लोकप्रियता प्राप्त है। ऐसा कौन-सा सजधज का शौकीन आदमी होगा जिसके सन्दूक मे दो-एक जोडे काशी सिल्क के न होंगे। इस तात्कालिक उन्नति और लोकप्रियता का यही कारण है कि हर प्रकार के नमूनों के टुकड़े आस-पास

चारों तरफ़ काफी बडी संख्या में रवाना किये गये। कुछ पढ़े-लिखे लोग हर ढंग के कपडे ले-लेकर दूर-दूर के शहरों मे गये और उनकी अच्छाइयाँ और खूबियाँ जनता के दिलों पर अच्छी तरह जमा दीं।

एक बार हमने एक बजाज से पूछा कि तुम कानानोर से देशी कपड़े क्यों नही मँगाते। उसने जवाब दिया कि उन कपडों की बिक्री मे नफ़ा बहुत कम होता है। नफ़े की यह कमी पूँजी के सिद्धान्तों से सम्बन्ध रखती है जिनपर हम इस वक्त बहस नही करना चाहते। कैसा अच्छा होता कि हर शहर के कुछ जिन्दादिल, पुरजोश, पढ़े-लिखे लोग कमर कस कर थोड़ी-सी पूँजी जुटा लेते और इस पूँजी से देशी कपडे मंगाकर मोल के दामों पर बेचते। यह जरूरी नही है कि यह लोग एक बाकायदा दूकान खोलें और दूकान का किराया और दूकानदार की तनख्वाह बढ़ाकर कपडे को और भी मँहगा कर दें बल्कि एक उत्साही सज्जन देशप्रेम से काम लेकर आनरेरी मैनेजर हो जायँ और शाम-सवेरे घंटा-दो-घंटा समय इस काम के लिए दें। जब जनता की ओर से उनके प्रयत्नों के लिए प्रशंसा मिलने लगे, देशी कपड़ो की माँग ज्यादा हो जाय तो पूँजी भी बढ़ाई जा सकती है, दूकान और दूकानदारी का खर्चा भी उठाया जा सकता है।

जो लोग अपनी पूँजी से व्यापारिक सिद्धांतों पर देशी कपड़ों की दूकानें खोलें, उनको चाहिए कि ग्राहकों की आव-भगत, खातिर-तवाजो अच्छी तरह करें। देशी चलन के पाबन्द लोगो के लिए दो-एक बीड़ा पान, दो-चार इलायचियाँ, जरा-सी तम्बाकू और अंग्रेजी चलनवालों के लिए एक-आध सिगरेट या एक प्याली चाय काफी होगी। इस थोडे से खर्च में यकीन है कि ग्राहकों की संख्या बहुत जल्द बढ़ जायगी क्योंकि लोगों को इस दूकान से एक खास प्रेम हो जायगा। दूकानदार भी पढ़ा-लिखा होना चाहिए जो खरीदारो से सभ्यतापूर्वक बातचीत कर सके। ऐसे दूकानदारो को ग्राहकों के साथ उस बेगरजी और रूखेपन से नही पेश आना चाहिए जिससे आमतौर पर मामूली सौदागर पेश आया करते है। अगर इन दूकानों पर दो-एक अंग्रेजी और उर्दू अखबार भी रखने का बन्दोबस्त कर दिया जाय तो यह एक और दिलचस्पी बहुत से खरीदारो को खींच लायेगी। पढ़े-लिखे लोग यहाँ आकर बैठेंगे तो मौके और वक्त का तकाजा यही होगा कि व्यापार की उन्नति के बारे मे बातचीत हो। और इस बातचीत से लोगों के दिलों में जोश पैदा होगा और यह जोश देशी व्यापार को उन्नति देने वाला होगा।

यहाँ-वहाँ देशी चीजों का जिस जोश और हमदर्दी से स्वागत किया गया है, यह उम्मीद दिलाता है कि अब हिन्दुस्तान का व्यापारिक जागरण बहुत दूर नहीं। लाहौर के आर्य समाज मेम्बरों को सर से पैर तक हिन्दोस्तान की बनी

चीजों से सजे हुए देखना सचमुच बहुत दिलचस्प और याद रखने के क़ाबिल दृश्य था। हम अपने समाजी भाइयों के देश-प्रेम और क़ौमी जोश के हमेशा से प्रशंसक रहे हैं और हमको उम्मीद है कि हमारी व्यापारिक उन्नति मे यह लोग उसी सम्मान और धन्यवाद के अधिकारी होंगे जिसके कि वह राष्ट्रीय और सांस्कृतिक सुधारों मे हैं। बम्बई और कलकत्ता जैसे शहरों मे स्वदेशी आन्दोलन बड़े जोरों के साथ किया जा रहा है मगर हमको उससे कई गुना ज्यादा खुशी इस बात पर होती है कि हमारे सोये हुए सूबे में भी इस तरह की कमजोर आवाजें कभी-कभी सुनायी दे जाती है। हमको यकीन है कि इस साल बनारस मे कांग्रेस के अधिवेशन का होना बनारस व लखनऊ व कानपुर के व्यापार के लिए बहुत अच्छा साबित होगा। मगर केवल पढ़े-लिखे लोगों के संरक्षण और सहानुभूति से हमारे व्यापार को भी यथेच्छ उन्नति नही हो सकती जब तक कि आबादी का वह बड़ा हिस्सा भी जो मुल्की और क़ौमी मामलों की तरफ से बेखबर है, इस अच्छे काम में हाथ न बटाये। पढ़े-लिखे लोगों के नाम उंगलियों पर गिने जा सकते हैं। उनकी रुचि और उनकी काल्पनिक आवश्यकताओ ने कुछ ऐसा रंग पकड़ लिया है, कि अभी उनको पूरा करने के लिए हमारे व्यापार को एक लम्बी अवधि दरकार है।

हमारी आबादी का बहुत बड़ा हिस्सा देहातो मे आबाद है, जिसमें बिना किसी अतिरंजना के निन्यानवे फीसदी तो ऐसे है जो अलिफ के नाम बे भी नहीं जानते और जिनको शहर मे आने का बहुत कम इत्तफ़ाक होता है। लिहाजा शहरों में स्वदेशी दूकानों का खुलना, चाहे वह कैसे ही अच्छे उसूलों पर क्यों न हो, व्यापार को बहुत लाभ नही पहुँचा सकता। ऐसी दशा मे उचित है कि हमारे व्यापारी भी वही ढंग अख्तियार करे जो अरसे से विलायतियों ने अख्तियार किया है।

पाठक जानते है कि देहाती किसानों की ज्यादातर जरूरतें क़र्ज़ लेकर पूरी हुआ करती हैं। मगर आज आप किसी किसान को पचास रुपये की चीज उधार दे दीजिए तो वह बिना यह सोचे कि मुझमें इस चीज के खरीदने की योग्यता है या नही, फ़ौरन मोल ले लेता है और फिर किसी न किसी तरह रो-धोकर उसकी क़ीमत अदा करता है। विलायतियों ने देहातियों के इस स्वभाव को बखूबी समझ लिया है। चुनाचे वह जत्थे के जत्थे आते हैं, शहरों में विदेशी और रद्दी माल सस्ते दामो पर खरीदते हैं और तब गाँव में जाकर किसी एक मोतबर आदमी की जमानत पर किसानों के हाथ सौदा बेचते है। किसान अपनी माली हालत से बिलकुल बेखबर होता है। उसमें दूरदर्शिता नही होती। झुंड के झुंड कपड़े खरी-

दने को टूट पड़ते हैं। आजकल अगर आप किसी गाँव में निकल जाइए तो बजाय इसके कि लोग गजी-गाढ़े पहने हुए नजर आएँ कोई तो इटली की बनी हुई बनियाइन पहने हुए दिखायी देता है, कोई अमरीका की बनी हुई चादर। वही चीज़ जो बाजार में मारी-मारी फिरती है, देहात में जाकर हाथों हाथ बिक जाती है और यह इसी वजह से कि किसानों को खरीदते वक्त दाम नहीं देना पड़ता। इन विलायतियो ने कितने ही जुलाहो को तबाह कर डाला और जुलाहो की तबाही से पूर्वी सूत की माँग जाती रही। इस तरह देशी रुई को मजबूरन इंगलिस्तान की खुशामद करना पड़ी।

हमारे देशी व्यापारियों को वह दिक्कतें हरगिज नहीं पेश आ सकती जो विलायतियों को पेश आती हैं। उनको सैंकड़ों कोस की मंजिल तय करना पड़ती है, गाँव मे प्रभाव रखने वाले लोगों का सहारा ढूँढना पड़ता है और कभी-कभी क़ीमत की वसूली से हाथ धोना पड़ता है। देशी व्यापारियों को इन कठिनाइयों के बदले में सिर्फ़ इतना करना है कि गाँव में मोतबर एजेण्टों को रवाना करें, उनको उधार माल बेचने की इजाजत दें और जहाँ तक हो कम मुनाफ़ा लें। देहाती आम तौर पर ईमानदार होते हैं, सौदा ले लिया तो उसकी क़ीमत अदा करने में गड़बड़ी नही करते। अगर खुदा न ख्वास्ता उनका ईमान जरा डगमगाया भी तो वह डरपोक ऐसे होते हैं कि दो-चार धमकियों में सीधे रास्ते पर आ जाते हैं। हमने देखा है कि विलायतियों को दाम वसूल करने में बहुत कम दिक्कत होती है। बेचारा किसान सूद पर कर्ज लाता है और निश्चित समय पर चीज़ की क़ीमत अदा करता है। जब विलायतियों को वसूली में कोई दिक्कत नहीं होती तो कोई वजह नही कि हमारे देशी एजेण्टो को इस काम में कोई दिक्कत हो। बस जाड़े में चीज दे आये, उसकी क़ीमत फ़सल तैयार होने पर वसूल कर ली। और गर्मी में जो माल बेचा, उसकी कीमत ऊख पेरने के वक्त वसूल कर ली, न कोई ठकठक न कोई बखेड़ा। व्यापार का यह ढंग उससे कही ज्यादा लाभदायक और देशभक्तिपूर्ण है जिसको हुण्डी कहते है। बनारस, मिर्जापुर, इलाहाबाद वग़ैरह शहरो मे हुण्डी का आम रिवाज है। इसका तरीक़ा यह है कि हर एक गाँव में महाजन की तरफ से कुछ लोग नौकर होते हैं। उनका काम यह है कि देहातियो को रुपया क़र्ज दें और उनमे एक निश्चित अवधि के भीतर एक का सवाया वसूल कर लें। व्यापार के इस ढंग से चाहे महाजन को फ़ायदा हो, मुल्क या क़ौम को सरासर नुक़सान होता है। क्योंकि बेचारे किसान को दोनो तरफ से नुक़सान उठाना पड़ता है। उधर तो मुग़ल सौदागरों को एक का ड्योढ़ दिया और इधर अपने महाजनो को एक का सवाया देना पड़ा। बेचारे की छोटी-सी आमदनी महाजनो ही घर को हो गयी।

—ज़माना, जून १९०५

स्वदेशी आन्दोलन

हिन्दुस्तान के लगभग सभी प्रतिष्ठित पत्रों और पत्रिकाओं ने इस देशभक्ति-पूर्ण आन्दोलन का समर्थन किया है, और जो पहले थोड़ा हिचकिचा रहे थे उनका भी अब विश्वास पक्का होता जाता है। मगर अभी अक्सर भलाई चाहनेवालों की ज़बान से सुनने मे आता है कि वह उन मुश्किलों का सामना करने के क़ाबिल नहीं है जो आन्दोलन के रास्ते में निश्चय ही आयेंगी। मिसाल के लिए कपड़ा जितना हिन्दुस्तान में बनता है, उसका चौगुना विलायत से आता है, तब जाकर इस देश की जरूरतें पूरी होती है। क्योंकर सम्भव है कि यह देश बिना वर्षों के निरन्तर अभ्यास और जिगरतोड़ कोशिश के परदेसी कपड़ा बिलकुल रोक दे। मिलें जितनी दरकार होंगी उसका तख़मीना एक साहब ने चालीस करोड़ रुपया बतलाया है। हम समझते हैं यह अत्युक्ति है क्योंकि एक दूसरे पर्चे में यह तख़मीना तीस ही करोड़ किया गया है। कौन कह सकता है कि यह देश इतनी पूंजी लगाने के लिए तयार है। अगर यह मान लिया जाय कि पूंजी मिल जायगी तो फिर सवाल होता है, क्या किया जायगा। रुई जितनी यहाँ पैदा होती है, उसमें से दो हिस्से तो जापान ले लेता है और एक हिस्सा हिन्दुस्तान के हाथ लगता है। विलायत यहाँ की रुई बहुत कम खरीदता है। अगर मान लीजिए सब रुई जो इस वक्त पैदा होती है, यही रोक ली जाय तो भी हमारी जरूरतें ज्यादा से ज्यादा आधी पूरी होंगी। यानी एक सौ पाँच करोड़ गज़ कपड़ो के लिए हम फिर भी विलायत के मुहताज रहेंगे। यह आशा करना कि दो-चार बरस में किसान रुई की खेती को बढाकर यह मुश्किल भी आसान कर देंगे, एक हद तक सपना मालूम होता है। फिर, यहाँ की रुई से महीन कपड़ा नही बुना जा सकता और हिन्दुस्तान में शरीफ़ लोग ज्यादातर महीन कपड़े इस्तेमाल करते है। उनके पहनावे के ढंग में यकायक क्रान्ति पैदा कर देना भी कठिन है। यह चन्द बातें ऐसी है जो अभी कुछ अर्से तक हमारे संकल्पों में विघ्न डालेंगी। मगर तसवीर का दूसरा पहलू ज्यादा रौशन है। पश्चिमी हिन्दुस्तान में ज्यादातर कपड़ा देशी इस्तेमाल किया जाता है, विलायती कपड़े का खर्च बंगाल और हमारे सूबे में सबसे ज्यादा है। हम महीन कपड़ों के बहुत ज्यादा शौकीन नहीं हैं। हाँ, बंगालवाले, क्या मर्द क्या औरत, ऐसे कपडों पर जान देते हैं। उनमें भी खास तौर पर वही सज्जन जो पढ़े-लिखे है। मगर जब यह समुदाय

अपने जोश मे हर तरह का बलिदान करने के लिए तैयार है, तो क्या वह महीन को जगह मोटे कपडे न पहनेगा। क़ायदे की बात है," कि शहर के छोटे लोग बड़े लोगों के कपड़ों और रहन-सहन की नकल करते हैं। जब बंगाल के बड़े लोग अपना ढंग बदल देंगे तो मुमकिन नही, कि दूसरे लोग भी वैसा ही न करें। हमारे सूबे मे तंजेब और मलमल का इस्तेमाल कुछ दिनों से उठता जाता है और उसके कद्रदाँ या तो कुछ पुराने जमाने के शौक़ीन-मिजाज बूढे हैं या बाजारी बेफ़िक़रे। हाँ शरीफ़ों की औरतें अभी तक उन पर जान देती हैं, मगर उम्मीद है कि वह अपने मर्दों के मुकाबिले मे बहुत पिछड़ी न रहेंगी। विशेषतः जब मर्दों की तरफ़ से इसका तक़ाजा होगा। इस तरह महीन कपड़े का खर्च कम हो जायगा और जब मोटा कपड़ा इस्तेमाल मे आयेगा तो साल मे बजाय चार जोड़ों के दो ही जोडों से काम चलेगा। अगर शहरो मे विदेशी चीजों का रिवाज कम होने लगे तो देहातों में आप से आप कम हो जायगा। हम अपने सूबे के तजुर्बे से कह सकते हैं कि यहाँ देहाती ज्यादातर जुलाहो का बुना हुआ गाढा इस्तेमाल करते है और जाडे में गाढ़े की दोहरी चादरें। उनको परदेसी कपड़ों की जरूरत ही नही महसूस होती। गो इसमें कोई शक नही कि कुछ दिनों से काबुलियों और मुगलों ने वहाँ जा-जा कर विदेशी चीजों का रिवाज बढाना शुरू कर दिया है। यह मौका है कि पढे-लिखे लोग, जिनमे से अधिकतर देहाती होते है, जब अपने मकान को जायें तो अपने पड़ोसियों को भला-बुरा सुझाकर सीधे रास्ते पर ले आएँ और जब जरूरत देखें रुई की खेती को बढाने के लिए कहें।

रुई के बाद चीनी या शक्कर दूसरी जिन्स है जो हम पाँच करोड़ रुपये सालाना की बाहर से मँगाते है। यह खेद की बात है। हमारे देश के कारखाने टूटते जाते है मगर इसका जवाबदेह सिर्फ तालीमयाफ्ता फिरका है। देहाती बेचारे तो विलायती शक्कर को हाथ भी नही लगाते, और बहुतों ने तो बाजार की मिठाई खाना छोड़ दिया। और शक्कर ऐसी जिन्स है, जिसकी पैदावार को आसानी से बढाया जा सकता है। जरा भी माँग ज्यादा हो जाय तो देखिए ऊख की खेती ज्यादा होने लगती है। किसान मुँह खोले बैठे है। यही तो एक जिन्स है, जिससे वह अपनी जमीन का लगान अदा करते हैं। कपड़े के रोकने मे चाहे कितनी ही दिक्कतें हों मगर शक्कर का बन्द होना तो जरा भी कठिन नहीं। हम उन लोगों पर हँसा करते थे जो हम लोगों को विलायती शक्कर खाते देखकर मुँह बनाते थे। हमारी नजरो में वह लोग असभ्य मालूम होते थे। अब हमको तजुर्बा होता है कि वह ठीक रास्ते पर थे और हम गलती पर। विदेशी चीजों का रिवाज सभ्य लोगों का डाला हुआ है और अगर स्वदेशी आन्दोलन को सफलता होगी तो उन्ही के किये होगी।

—आवाजे़ खल्क़, १६ नवम्बर १९०५

तुर्की में वैधानिक राज्य

उन्नीसवीं सदी में एक बार आज़ादी की हवा चली तो उसने इटली, फ्रांस, स्विटज़रलैंड, संयुक्तराष्ट्र अमरीका आदि देशों को आज़ाद कर दिया। इस हवा का असर योरप ही तक सीमित रहा मगर बीसवीं सदी के आरम्भ में जो हवा चली है वह अपेक्षाकृत बहुत ज्यादा स्वास्थ्यप्रद और शक्तिशाली है। इस थोड़ी-सी अवधि में उसने फ़ारस को आज़ाद कर दिया है और अब खबरें आ रही हैं कि तुर्की की बूढ़ी-पुरानी हड्डियों में भी उसने रूह फूँक दी।

तुर्की की सल्तनत योरप मे स्थित होने के बावजूद एशियाई सल्तनत है और योरप के इतिहासकार और विचारक उसे बहुत दिन से निरंकुश शासन का केन्द्र समझते आये हैं। कोई उसे योरप का बुड्ढा आदमी कहकर पुकारता था, कोई दूसरा ही खिताब देता था। मगर सुल्तान अब्दुल हमीद की इस उदार व्यवस्था ने सब की आँखें खोल दी हैं। योरप वालों के नजदीक यह पक्की बात थी कि आजादी का पौधा सिर्फ योरप की सरज़मीन में ही फूल-फल सकता है। एशिया की ज़मीन और आबहवा उसके लिए ठीक नहीं है। लार्ड मॉरले जैसा विद्वान् भी खुलेग्राम यह खयाल जाहिर करने से न चूका। मगर तुर्की और फारस दोनों ही ने इस पक्की बात की जड़ खोद कर फेंक दी और साबित कर दिया कि जिस आज़ादी और आईन (विधान) के लिए योरप मे बादशाहों के सर कटे हैं और रिआया के खून की नदियाँ बही हैं, वह आजादी और आईन एशिया में बिला शोर-शर के मिल जाते हैं। जनता के विचार और राय को जो महत्व इस अवसर पर इन दोनो देशों मे दिया गया है वह योरप की दुनिया में कहीं दिखायी नहीं देता। इसमे कोई शक नहीं कि तुर्की के सुल्तान ने यह विधान बिना काफी प्रयोग और परीक्षा के नहीं दे दिया। मिस्र और हिन्दोस्तान की तरह वहाँ भी कुछ दिनों से नौजवान देश-भक्तों की एक संस्था पैदा हो गयी थी जो लिखकर, बोलकर वैधानिक राज्य की ज़रूरत रिआया को समझाती रहती थी और वह सख्तियाँ जो आजादी के पहले झेलनी पड़ती है, वहाँ भी खूब की गयी। अखबारों की ज़बानें बन्द की गयीं, नौजवान देशभक्तों को फ़सादी और बाग़ी खयाल किया गया और कितनों ही को देशनिकाला भी हुआ। पुलिस ने मनमाना राज किया और कमिश्नर पुलिस ने खूब दिल खोलकर नवाबी की। उपद्रव हुए। यह सब कुछ होना ज़रूरी था, और

हुआ। उसका होना इसकी दलील थी कि रिआया अपने इरादों में मजबूत है, और वह जिस चीज़ को माँग कर रही है उसको लिये बगैर न मानेगी। सुल्तान अब्दुल हमीद इस तमाम कशमकश को एक सच्चे और दूरदर्शी राजनीतिज्ञ की दृष्टि से न कि एक निरंकुश शासक की दृष्टि से देखते रहे और जब उन्हें विश्वास हो गया कि रिआया अपने इरादे मे मजबूत है तो उन्होंने और ज्यादा इम्तहान लेना मुनासिब न समझा। एक पूरी कौम के विचारों की गति को समझना बहुत मुशकिल काम है और इन दमनकारी दुष्प्रवृत्तियों के लिए सुल्तान पर कोई अभि-योग नही लगाया जा सकता क्योंकि यही वह तरीका है जिससे रिआया के जीवट और मजबूत इरादे की जाँच हो सकती है। वह दिन मुबारक था जब कि पूरब के एक बादशाह ने, जिसे मजहब के खयाल से अल्लाह का अक्स समझा जाता है, और जो बारह सदियो से किसी कैद और क़ायदे का पाबन्द न था, कुरान शरीफ पर हाथ रख-कर कसम खायी कि मै रिआया की राय और मशविरे पर अमल करूँगा और तय-शुदा कानून से कभी अलग न होऊँगा। वह दिन मुबारक था और शायद दुनिया के इतिहास मे उससे ज्यादा भाग्यशाली और शुभ दिन दूसरा न होगा। आज तुर्की का हर आदमी सुल्तान के नाम पर गर्व कर रहा है और हर तरफ से सदाएँ आ रही है कि खुदा सुल्तान अब्दुल हमीद को हमेशा हमेशा अमन-चैन से रक्खे। वह देशभक्त जो देशनिकाले की मुसीबतें झेल रहे थे, खुश-खुश अपने प्यारे वतन को वापस आ रहे है। वह अखबार जिनकी जबानें बन्द थी और वह भाषण देनेवाले जिनके होंठों पर जबरन खामोशी की मुहर लगा दी गयी थी आज हर जगह हर तरफ पुकार पुकार कर आजादी का स्वागत कर रहे हैं और खुशियाँ मना रहे हैं। आजादी का झंडा बुलंद है और वह सब दमनकारी कानून जो कुछ दिन पहले जारी किये गये थे, रद किये जा रहे है। पुलिस अपने करतूत का फल भोग रही है और कमिशनर पुलिस अपने दिनो को रो रहे है। ऐ तुर्की के रहनेवालो, ऐ हमारे एशियाई भाइयो, तुम खुशकिस्मत हो, तुम दिलेर हो, तुम्हें यह आईन और यह आजादी मुबारक हो!

देखिए हमारे मुसलमान देशभाई लायल्टी का राग कब तक अलापते हैं, कब तक नौकरियों-चाकरियों के लिए सिजदे में सर झुकाये और दुआ का हाथ उठाये रहते हैं। क्या ताज्जुब है खिलाफत के मुकाम की पुरजोर हवा का असर उनके दिलो पर भी हो। अगर दिल में मर्दाना भाव बाक़ी है तो जरूर ऐसा होगा। सुल्तान ने लायल्टी के जल्सों पर यह आईन नही अता किया, उसका राज़ ही कुछ और है। हमने लायल्टी की क्या मिट्टी पलीद की है! आँखें खोलकर देखो कि यह लोग जो एक महीना पहले तक डिसलायल और फसाद करनेवाले और बागी और गर्दन उड़ा देने के क़ाबिल थे, वह आज देशभक्त है और क़ौम के रहनुमा है और आजादी की इमारत के मेमार हैं।

—ज़माना, अगस्त १९०८

कृष्ण कुंवर

हमारे पास 'हिन्दुस्तान के मशहूर लिखनेवाले, हकीम बरहम साहब का उपन्यास 'कृष्ण कुंवर' रिव्यू के लिये आया है। इसके पहले कि हम उस पर कुछ लिखने का साहस करें अच्छा होगा कि हम उपन्यास के सिद्धान्त और अंगों को पाठकों के सामने प्रस्तुत करें। उपन्यास अंग्रेजी साहित्य-आलोचकों की राय में शब्दचित्रों का एक संग्रह होता है। कहानी और उपन्यास में केवल यह अंतर होता है कि कहानीकार केवल घटनाओं का चित्रण करता है और उपन्यासकार घटनाओं को रंगीन शब्दों में पेश करके कोशिश करता है कि उनकी बोलती हुई तसवीर आँखों के सामने खींच दे। उपन्यास का क्षेत्र सम्प्रति बहुत विस्तृत हो गया है। कहीं तो उसमें जिन्दगी के किसी अहम मसले पर बहस की जाती है, जिसकी मुहम्मद अली साहब ने बडी कामयाबी के साथ कोशिश की है, कहीं उसमें मानव स्वभाव की व्याख्या की जाती है, हृदय के भावों, आशाओं और निराशाओं के नक्शे उतारे जाते हैं, कहीं नैतिक बुराइयों को दूर करने की कोशिश की जाती है। उपन्यासकार कभी मित्र का काम करता है और कभी उपदेशक का, कभी दार्शनिक बनता है कभी आयुर्वेद का पंडित। इस तरह उपन्यास खुद एक विधा हो गई है और साहित्य की अन्य विधाओं की भाँति उसके भी विविध प्रकार हैं—जैसे सामाजिक उपन्यास, जासूसी उपन्यास, आचार और नैतिकता के उपन्यास, ऐतिहासिक उपन्यास आदि। फिलहाल हमको दूसरी किस्मों से कोई बहस नहीं। हमारे पास रिव्यू के लिए जो उपन्यास आया है वह ऐतिहासिक है क्योंकि उसमें इतिहास से सहायता ली गई है और हम नीचे की पंक्तियों में देखेंगे कि ऐतिहासिक उपन्यास के रूप में वह कितने महत्व का अधिकारी है। ऐतिहासिक उपन्यास की परिभाषा इस तरह की जा सकती है कि वह बीती हुई घटनाओं और जिस युग में वे घटनाएँ हुईं उनका एक रंगीन फोटो है। लेखक महोदय ने केवल ऐतिहासिक घटनाओं का एक बहुत धुंधला खाका खींचा है जिसको देखकर न घटनाओं ही का चित्र आँखों के सामने आता है और न उस युग के सामाजिक जीवन का। इसमें कोई संदेह नहीं कि कहीं-कहीं रंग भी चढ़ाया है मगर बहुत फीका। ऐतिहासिक निष्कर्ष सामान्य रूप से यह निकलता है कि उस युग में आपसी फूट और भेद-भाव का बाजार गर्म था। बस। इतनी बात तो हर व्यक्ति

मामूली इतिहास के अध्ययन से भी जान सकता है।

मगर यह हमारी हठधर्मी है अगर हम हकीम साहब को इस बात के लिए दोष दें कि उन्होंने इस उपन्यास को ऐतिहासिक उपन्यास की हैसियत से किसी ऊँचे स्थान पर पहुँचाने में सफलता नहीं पाई। उन्होंने इस बात की कोशिश ही नहीं की। वह भूमिका में खुद कहते हैं, 'इस उपन्यास के प्रकाशन में मेरा असल उद्देश्य यह है कि फखुरउलमुल्क आलीजनाब नवाब मीरखाँ साहब बहादुर, रियासत टोंक, पर जो अभियोग इतिहासकारों ने लगाया है वह उठ जाये और मालूम हो जाये कि कृष्ण कुँवर की हत्या में दरअसल किसका क़सूर था।' इस प्रकार इस उपन्यास का उद्देश्य सामान्य न होकर विशेष है और इस ऐतिहासिक अभियोग का खण्डन करने के लिए उचित था कि हकीम साहब इतिहास के पन्नों की ओर ध्यान देते और कुल घटनाओं की जाँच-पड़ताल निष्पक्षता से करके एक जोरदार गवेषणापूर्ण लेख लिखते। तब शायद इस अभियोग का खण्डन हो सकता। मगर कहानी से किसी ऐसी ऐतिहासिक घटना का खण्डन करना, जिसको बहुत से प्रामाणिक और विश्वसनीय इतिहासकारों ने सच्चा साबित कर दिया हो, एक व्यर्थ की कोशिश है। बल्कि यों कहिए कि ऐतिहासिक घटनाएँ कहानी में मिलाने से उनका महत्व और भी कम हो जाता है क्योंकि जनसाधारण स्वाभाविक रूप से कहानी को यथार्थ से दूर समझते हैं। अगर हम यह भी मान लें कि इस तरह के उपन्यास उर्दू भाषा में नहीं लिखे गये हैं तो भी हकीम साहब का उद्देश्य पूरा नहीं होता क्योंकि इस किताब के पढ़ने से पाठकों को मीरखाँ साहब से किसी तरह की हमदर्दी नहीं पैदा होती। इस बात को स्पष्ट करने के लिए आवश्यक है कि थोड़े से शब्दों में प्लाट बयान किया जाय।

उपन्यास की नायिका महाराणा उदयपुर, मेवाड़, की इकलौती लड़की थी। उसकी मंगनी जोधपुर के राजा भीमसिंह से हुई थी मगर शादी से पहले राजा की मृत्यु हो गई। उसका भाई मानसिंह उसकी जगह गद्दी पर बैठा। संयोगवश, स्वर्गीय राजा की एक रानी गर्भवती थी और सवाई सिंह ने, जो जोधपुर का जागीरदार होने के अलावा भीमसिंह के ज़माने में मंत्री भी रह चुका है, जोधपुर के तमाम रईसों को चम्पावत नामक स्थान पर जमा करके इस बात को जाहिर किया। इस पर मानसिंह ने स्वीकार किया कि अगर रानी के कोई लड़का हुआ तो वह मेरा उत्तराधिकारी होगा। नियत समय पर रानी के एक लड़का पैदा हुआ जिसका नाम धोकलसिंह रखा गया। चूँकि रानी को अपने लड़के की जीवन-रक्षा के संबंध में आशंका थी उसने उसको चोरी-चोरी सवाई सिंह के पास भेज दिया जिसने दो बरस तक गुप्त रूप से उसका लालन-पालन किया।

उस वक्त उसने फिर जोधपुर के रईसों को जमा किया और मानसिंह ने दुबारा वादा किया कि मैं अपने निश्चय पर दृढ रहूँगा। मगर जब धोंकलसिंह बालिग हुआ तो राजा अपने कौल से फिर गया और छान-बीन करनी शुरू की कि धोंकलसिंह स्वर्गीय भीमसिंह का बेटा है या नही। रानी के मातृप्रेम पर भय की जीत हुई। उसने धोकलसिंह की माँ होने से साफ इन्कार किया। सवाईसिंह, जिसकी हजारो उम्मीदें धोंकलसिंह के गद्दी पर बैठने से जुडी हुई थी, घटनाओं के इस तरह पलट जाने से बहुत गुस्सा हुआ। उसने खुल्लमखुल्ला मानसिंह के खिलाफ बगावत का झण्डा बुलंद किया और यह सोचने लगा कि किस तरह राजा को जड़ से उखाड़ दूँ। उसको बहुत जल्द एक तरकीब सूझ गई।

चूँकि कृष्णा कुँवर की मंगनी स्वर्गीय राजा भीमसिंह से हुई थी अब उसके जाति-अभिमान का तकाज़ा था कि उसका उत्तराधिकारी मंगेतर को ब्याह लाये। वंश की प्रतिष्ठा यह कब सह सकती थी कि जोधपुर की मंगेतर को कोई और ब्याह ले जाये। अतः मानसिंह महाराजा मेवाड़ से बातचीत कर रहा था। सवाईसिंह ने मानसिंह को चोट पहुँचाने के लिए इस नाजुक मामले को पसंद किया।

जयपुर का राजा जगतसिंह एक विलासी विषयी व्यक्ति था। सवाईसिंह ने उसके सामने कृष्णा कुँवर के दाहक रूप की खूब तारीफें की और धोकलसिंह की खूब वकालत की। आखिर राजा बिना उसे देखे ही इस मेवाड़ की देवी का प्रेमी बन गया। इस तरह सवाईसिंह ने दो राज्यो मे फूट का बीज बो दिया।

चूंकि राजा जगतसिंह अकेले राजा मानसिंह का मुकाबला न कर सकता था उसने बहुत रुपया खर्च करके नवाब मीरखाँ साहब (जिनको इल्जाम से बरी करने के लिए यह किताब लिखी गई है) और मरहठे सदाशिव राव और कुछ दूसरे राजाओं को अपना साथ देने पर राजी कर लिया। इधर सवाईसिंह ने अपनी व्यवहार-चातुरी से मानसिंह के दोस्तो और मददगारो को तोड़कर उन्हे अपना तरफदार बना लिया। चुनांचे जब लड़ाई शुरू हुई तो मानसिंह के साथ चलने वाले सिर्फ चार सरदार रह गये। तो भी उसने रणक्षेत्र से मुँह मोड़ना मर्दानगी के खिलाफ समझकर खूब बहादुरी दिखलाई। जब उसकी तमाम फौज वही ढेर हो गई तो उसने लाचार होकर अपने वफ़ादार सरदारो की सलाह से भागकर जोधपुर के किले में शरण ली। जयसिंह इस विजय से फूल उठा। एक दूत अपना संदेश लेकर राजा मेवाड़ के पास भेजा और खुद जोधपुर के किले पर घेरा डालने की तैयारियाँ करने लगा।

इसी बीच नवाब मीरखाँ साहब के जासूसों ने खबर पहुँचाई कि जयपुर का

खजाना अब बिल्कुल खाली है। इतना सुनना था कि नवाब साहब ने फौरन जयपुर पर धावा कर दिया। जगतसिंह तो कोसों की दूरी पर पड़ा हुआ घेरे की तैयारियाँ कर रहा था, बस खाँ साहब ने खाली मैदान पाकर खूब बढ़ बढ़कर हाथ मारे। शाही खजाने का भी वारा-न्यारा किया और रिआया को सताने से जो कुछ हाथ लगा वह ले-देकर अपना रास्ता लिया।

अब लेखक महोदय से हमारा यह प्रश्न है कि यह हरकत नवाब साहब की वफादारी का दर्शन है या बेवफाई का ? पहले तो जयपुर का खजाना भरा देखकर उसकी तरफ ढले। जब देखा कि अब उससे और कुछ हाथ लगता नजर नहीं आता तो पुराने सम्बन्ध बिल्कुल भूल गये और आस्तीन का साँप होकर बेचारे जगतसिंह ही को काट खाया। यह कहाँ की पालिसी है। अगर इस तबाही और बर्बादी से उनका मतलब जोधपुर की भलाई करना था तो इस लड़ाई की क्या जरूरत थी ? लड़ाई-झगड़े के बगैर भी फ़ैसला हो सकता था। लड़ाई के वक्त जगतसिंह को सलाम करके मानसिंह से आ मिलते। जगतसिंह इस तरह निहत्था होकर मुकाबले की हिम्मत न करता, न लड़ाई होती न झगड़ा। इसमें कोई शक नहीं कि इस तरह काम करने से नवाब साहब पर दगाबाजी का अभियोग लगता मगर अब तो एक छोड़ तीन-तीन अभियोग लगते हैं। दगाबाजी, बर्बादी और मक्कारी। क्योंकि लेखक महोदय एक ऐतिहासिक घटना को भुठलाने बैठे थे इसलिए मुनासिब होता कि वह नवाब साहब के इस व्यवहार का स्पष्टीकरण करते। इतिहास न झूठा होता न सही, उनका मतलब तो हासिल हो जाता। मगर सारी किताब में इस घटना पर रोशनी डालने की कहीं कोशिश नहीं की गई। संक्षेप में, यह कार्यपद्धति चाहे व्यवहार-चातुरी पर आधारित हो चाहे वीरता या प्रयोजन पर मगर इसमें कोई संदेह नहीं कि मीर साहब के सिर पर यह अभियोग अनन्त काल तक रहेगा। हम यह नहीं कहते कि इतिहास के पन्नों में ऐसे उदाहरण नहीं हैं। यूरोप वालों और अन्य सभ्य राष्ट्रों के इतिहास इन घटनाओं से भरे पड़े हैं। मगर जहाँ ऐसे उदाहरण होते हैं, हमेशा अपमान की दृष्टि से देखे जाते हैं और कोई व्यर्थ में पब्लिक के सामने रूखे-फीके पचड़े गाकर कौवों को हंस बनाने की कोशिश नहीं करता।

जयपुर का सत्यानाश करने के बाद नवाब साहब जोधपुर की ओर झुके। राजा बेचारा हार खाकर मुँह खोले बैठा था। मीर साहब की दोस्ती को एक अप्रत्याशित वरदान समझा। बड़ी अच्छी तरह पेश आया, यहाँ तक कि मीर साहब ने पगड़ियों की भी अदला-बदली की, जो एकता का सबसे पक्का प्रमाण समझा जाता है। अब क्या था, मानसिंह ने अपना सारा खजाना नवाब साहब

के सामने खोल दिया और नवाब साहब ने बजाय इसके कि रुपया अपने काम में लाते उसी वक्त फ़ौज में बांट दिया और जोधपुर के नमक ने यहाँ तक जोर बाँधा कि सवाईसिह को उसकी बगावत का मज़ा चखाने के लिए तैयार हो गये। उसे अपने साथियों समेत एक दावत में बुलाया और गोलियाँ चलवा दीं। जिस आदमी ने ऐसी अनोखी हरकतें की हों उसकी वकालत करना हमारे लेखक महोदय ही का काम है। माना कि सवाईसिह ने बगावत की मगर वह आश्चर्य-जनक दृढ़ता के साथ अपने इरादों पर डटा रहा। अगर उसकी बग़ावत की सज़ा यह समझी गई कि उसको दग़ाबाज़ियो का शिकार बनाया जाये तो हम नहीं कह सकते कि मीर साहब को उनकी हरकतों के लिए क्या सजा मिलनी चाहिए।

हम नीचे नवाब मीर खाँ साहब की जबान से टपके हुए कुछ जुमले लिखते है जिनसे उनके स्वभाव और विचारों का साफ पता चलता है।

१—जगतसिह ने जब बातचीत के दौरान में कहा कि मैने यह लड़ाई धोंकलसिह के वास्ते मोल ली है तो खाँ साहब ने फ़रमाया 'अजी राजा साहब, आप मुझसे ऐसी बातें करते है और मुझे बनाते है। किसी गैर आदमी के लिए कोई इतनी हमदर्दी खर्च करने वाला नहीं है।' गोया ज़रूरतमन्दों की मदद करना आदमी के फ़र्ज मे दाखिल नहीं।

२—आगे चलकर मानसिह से सवाईसिह का जिक्र करते हुए फ़रमाते है 'खुदावन्दतआला ने उसको उसके बुरे कामों की सजा दी। वह अपने अंजाम को पहुँचा। ऐसे नमकहरामों के साथ दगा-फरेब जो कुछ किया जाये उसका कुछ गुनाह नहीं और लड़ाई तो धोखेधड़ी का नाम है।' क्या ऊँची कसौटी है लड़ाई की ! सवाईसिह जो अपने पुराने राजा के बेटे के लिए अपनी जान न्यौछावर कर रहा है नमकहराम है और नवाब साहब, जो रुपये के लिए ऐसी गंदी हरकतें करते है कि ज़बान खामोश हो जाती है, नमकहलाल है और बहादुर है और अपनी जाति का गौरव हैं !

अब हम क़िस्से का आखिरी और दर्दनाक वाकया बयान करते है। राजा उदयपुर यानी कृष्ण कुंवर का बाप जगतसिह और मानसिह दोनों से डरता है। उसका खजाना खाली है। चारो तरफ मुसीबतों से घिरा हुआ है। कभी तो जय-पुर की तरफ ढलता है कभी जोधपुर की तरफ़। इसी बीच नवाब साहब सवाईसिह को जहन्नुम रसीद करने के बाद जोधपुर के वकील बनकर उदयपुर तशरीफ़ ले जाते हैं और राजा साहब से मुलाक़ात करके उनको एक ऐसी हमदर्दी से भरी हुई सलाह देते है जिसका नतीजा यह होता है कि कृष्ण कुंवर के गले

पर छुरी फिर जाती है। हकीम साहब फरमाते हैं कि कृष्ण कुंवर की हत्या राजा उदयपुर ने अपनी मर्जी से की, इसका इल्ज़ाम नवाब साहब पर नहीं है। मगर क्या वजह है कि नवाब से मुलाकात होने के बाद ही राजा साहब ने ऐसा भयानक निश्चय किया। दोनों प्रतिद्वन्द्वियों को रक्तपात के लिए तत्पर देखकर क्यों न लड़की का खातमा कर दिया जाय जिसमें हजारों खुदा के बन्दों की जानें बच जातीं। निश्चय ही नवाब साहब ने इस बात पर ज़ोर दिया होगा और यही नहीं राजा साहब को मजबूर किया होगा क्योंकि उनको ऐसी हरकत पर मजबूर करने से नवाब साहब को अपनी हिफ़ाज़त का यकीन था। वह खूब जानते थे कि गो इस वक़्त मानसिंह दबकर मेरी खुशामद कर रहा है मगर ज्योंही मौका पायेगा जरूर बुरी तरह पेश आयेगा और यक़ीनी बात थी कि जब कृष्ण कुंवर की शादी मानसिंह से होती तो दोनो राज्यों में जरूर मेल हो जाता और मानसिंह यह नई कुमक पाकर नवाब साहब को जरूर पुरानी बदमाशियों का मज़ा चखाता। उसी तरह यह आसानी से समझ मे आ जानेवाली बात है कि उदयपुर और जयपुर में संबध स्थापित होना खां साहब के वास्ते भी कुछ कम खतरनाक नहीं था क्योंकि उस सूरत में जगतसिंह उदयपुर की मदद पाकर चाबुक लिये हुए नवाब साहब के सर पर आ पहुँचता। अत. इन काल्पनिक विपत्तियों की काट उन्होंने यही सोची कि किसी तरह इस लड़की को मरवा डालूं। हकीम साहब किताब के खात्मे पर एक नोट में लिखते हैं, 'मीरखां ने एक मुनासिब राय दी थी कि आप महाराजा मानसिंह के साथ शादी कर दें। वह इसका अधिकारी भी है और लड़की पर जान भी देता है।' यह सलाह बेशक अच्छी थी मगर उपन्यास मे इसका कहीं जिक्र नहीं आया। नोट उपन्यास का कोई हिस्सा नहीं है। मुनासिब होता कि हकीम साहब किसी अध्याय में राजा उदयपुर और खां साहब की मुलाक़ात करवाते और इस मुलाकात मे खां साहब के मुँह से यह शब्द निकलवाते। उस सूरत मे ऐतिहासिक घटना को पलटना तो खैर कठिन है लेकिन हां इतना हो जाता कि पढ़ने वालों के दिलो में खां साहब से कुछ हमदर्दी हो जाती और शायद उनके निरपराध होने का विश्वास भी हो जाता। मगर सारे उपन्यास मे इसको स्पष्ट रूप से तो क्या इशारे से भी नही लिखा गया बल्कि एक व्यक्ति जवानदास की जबानी, जो कृष्ण कुवर के पास मौत का पैगाम लेकर आया है, यह शब्द कहलाये हैं, 'बात यह है कि मीरखाँ जोधपुर से आये हुए है। उन्होंने दरबार से कहा कि तुम अपनी लड़की पद्मिनी की शादी मानसिंह के साथ कर दो। श्री दरबार ने कहा, जयपुर वाला बिगड़ा हुआ है, मैं उसका मुकाबला नहीं कर सकता........इस पर मीरखाँ ने कहा, अगर तुमको यह डर है तो इस सब फ़िसाद की जड़ उस लड़की को ही मार डालो

ताकि हजारों खुदा के बन्दों की जानें बर्बाद न हों, एक ही जान पर खात्मा हो जाये।' इस अंतिम शब्दों से मीरखां का साहस या उनकी वीरता हरगिज प्रकट नहीं होती बल्कि पहले के कायरतापूर्ण कृत्यों का मिलान जब इनसे कीजिए तो मक्कारी की बू पाई जाती है। खूब, आदम के बेटों की आपसी मारकाट को रोकने का खयाल इसी आदमी को पैदा हुआ जो कुछ दिन पहले जयपुर को लूटने से न हिचका और जिसने हजारों बेगुनाह खुदा के बन्दों के खून से अपने हाथ रंगे! और जरा लेखक की गलती तो देखिए कि वह जो इल्ज़ाम खाँ साहब के सिर से उठाने बैठे थे वह और भी उन पर थोप दिया यानी खाँ साहब ने राजा उदयपुर के सामने दो रास्ते पेश किये—या तो कृष्ण कुंवर की शादी मानसिंह से कर दे या उसको मार डाले। पहली सूरत में यह बाधा थी कि जगतसिंह बिगड़ा हुआ है, दूसरी सूरत खतरों से खाली थी और नवाब साहब ने राजा साहब को यही तरीका अख्तियार करने की राय दी। खूब वकालत की! मीरखाँ साहब इस खता को कभी माफ न करेंगे। उनकी रूह को इस इल्जाम के लद जाने से सदमा पहुँचेगा!

अगर हम मान लें कि मीरखाँ साहब ने राजा उदयपुर को जो सलाह दी वह बिल्कुल उपकार-भावना पर आधारित थी तो हमें मानना होगा कि उनके स्वभाव में एक बड़ी क्रांति हुई है। एक सजग उपन्यासकार इस मानसिक परिवर्तन को इस खूबी से दिखाता कि एक नैतिक निष्कर्ष निकलने के अलावा उसमें मनोवैज्ञानिक उपन्यास का मजा आता। हकीम साहब आगे चलकर इसी नोट में फिर लिखते हैं, यह महाराणा की कमज़ोरी थी कि अपने खानदान की प्रतिष्ठा को उन्होंने कायम न रखा और लड़ाई के डर से अपनी कुंवारी लड़की को सख्त बेरहमी से मार डाला। मीरखाँ को वह जवाब दे सकते थे और अगर वह न मानते तो महाराणा उनको तलवार के जोर से मनवाकर छोड़ते........जब कृष्ण-कुंवर कत्ल हो चुकी तो खुद मीरखाँ साहब ने महाराणा को कायल किया कि तुम इस रजपूती पर मरते हो!

सच पूछिये तो सारे किस्से का निचोड़ इसी नोट में मौजूद है बल्कि इसके लिखने से उपन्यास की कोई जरूरत ही नहीं बाकी रह जाती। हम मानते हैं कि महाराणा अपनी लड़की को क़त्ल करने पर राजी हुए। वह इसके सिवाय और क्या कर सकते थे? उनकी हालत ऐसी कमजोर हो रही थी कि खानदान की प्रतिष्ठा को कायम रखने का सवाल तो दूर रहा खुद अपने राज्य का अस्तित्व बनाये रखने की चिन्ता में गोते खा रहे थे। इस बेचारगी में मीर साहब की बात न मानते तो क्या करते? अगर उनमें इतनी ही ताकत होती कि मीर साहब

को तलवार के ज़ोर से मनवाकर छोड़ते तो अपनी लड़की को कत्ल ही क्यों करते ? जगतसिंह से लड़ न जाते ? और लड़ जाना आसान भी होता क्योंकि मानसिंह भी साथ देता और शायद मीरखाँ साहब भी हाथ बटाते । इन तीनो राज्यो के मुकाबले मे जगतसिंह अकेले क्या बना लेता । यह बात शायद महाराणा उदयपुर के ध्यान में आयी ही नहीं । बस यही खयाल होता है कि मीरखाँ साहब को मानसिंह और राणा साहब के बीच मेल हो जाना नागवार था, जिसके कारण स्पष्ट है । इसलिए उन्होंने कृष्ण कुंवर की हत्या के लिए प्रेरित किया होगा और राणा साहब विनाश काले विपरीत बुद्धिः के अनुसार खाँ साहब जैसे ग़ाज़ी मर्द की बात को टालना समझदारी से खाली समझते होंगे । खाँ साहब इल्जाम से उस हालत में बरी हो सकते थे अगर वह जगतसिंह को डरा-धमकाकर दबा लेते और तब मानसिंह की शादी बिना किसी झंझट के कृष्ण कुंवर से हो जाती । जगतसिंह अकेले मानसिंह का कुछ न बिगाड़ सकता क्योंकि अगर उसमे यह योग्यता होती तो लड़ाई शुरू होने से पहले उसने मीरखाँ साहब से सहायता की प्रार्थना न की होती ।

जमाना, फरवरी १९०५

'आईने क़ैसरी' और 'महारिबाते अज़ीम'

आईने क़ैसरी

कुछ अर्सा हुआ कि मिस्टर रोमेशचन्द्र दत्त ने एक अंग्रेजी किताब 'महारानी विक्टोरिया के शासन काल में हिन्दुस्तान' लिखी थी जिसका सिर्फ हिन्दुस्तान ही में बड़े उत्साह से स्वागत नहीं किया गया बल्कि अमरीका और इंगलिस्तान के विद्वानों ने भी उसको बहुत सराहा। कुछ अंग्रेज़ी विचारकों ने उसको सर विलियम हंटर के अनमोल और स्मरणीय इतिहास के बराबर ठहराया है। हमारी उर्दू जवान में इस तरह की कोई किताब न थी जिसको पढ़कर उर्दूदाँ पब्लिक अपनी सरकार और उसकी तबदीलियों और तरक्कियों का हाल मालूम कर सके। मौलवी ज़काउल्ला साहब ने इस आम जरूरत को पूरा किया है। मगर जहाँ कि मिस्टर दत्त की किताब शुरू से आखीर तक नयी-नयी खोजों और सार्थक आकड़ों और प्रमाणों से भरी हुई है,मौलवी साहब की किताब महज कुछ अंग्रेजी किताबों का ज्यों-का-त्यों तर्जुमा है। मिस्टर दत्त ने गवर्नमेंण्ट के अंधेरे और रौशन दोनो पहलुओं पर निष्पक्ष होकर दृष्टि डाली है और सारी किताब में ऐसी-ऐसी समझदारी की सलाहें दी है कि अगर गवर्नमेण्ट उन पर अमल करे तो रिआया के लिए सचमुच सतजुग का जमाना आ जाय। मगर मौलवी साहब ने शुरू से लेकर आखीर तक एक कवित्त गाया है, जो गद्य मे होने से बिलकुल वदमजा हो गया है। काश इन्ही घटनाओं पर मौलवी साहब कसीदा लिखते तो वह ज्यादा आदर से देखे जाने का अधिकारी होता।

मौलवी साहव उर्दू आसमान के सूरज हैं। जब तक उर्दू जबान जिन्दा रहेगी आपका नाम मध्याह्न के सूर्य की तरह चमकता रहेगा। मगर सिर्फ़ एक विद्वान भाषा-विद् की हैसियत से। उनके इतिहास, जिन पर उन्होने अपने बुढापे को कुर्बान कर दिया है, बहुत जल्द भुला दिये जायेंगे। मौलाना हाली की 'हयाते जावेद' मौलाना आज़ाद की 'आबे हयात' मौलाना हँरत देहलवी की 'तारीखे हमीदिया' बेशक इस क़ाबिल है कि उर्दू साहित्य का बेहतरीन नमूना क़रार दी जा सकें। मगर मौलवी साहब की 'आईने क़ैसरी' हरगिज इस रुतबे का दावा नही कर सकती।

लेखक—खान बहादुर शम्सुलउलमा मौलाना मौलवी ज़काउल्ला साहब देहलवी।

यू तो सर सैयद अहमद खाँ के सांस्कृतिक और राष्ट्रीय सिद्धान्तों से हमेशा विरोध रहा मगर सच बात यह है कि अभी तक हमको उन उसूलों के मतलब कुछ यों ही से मालूम थे। मौलवी जकाउल्ला साहब ने उन तमाम उसूलों के माने सूरज की तरह रौशन कर दिये हैं।

एक ऐसी किताब पर जिसकी मोटाई ढाई सौ पन्नों से कम नहीं और जिसमें हिन्दोस्तान की पेचीदा गवर्नमेंट के अनेक विभागों पर रायजनी की गयी है कुछ पन्नों मे उसका निर्णय करना बहुत मुश्किल है। लिहाजा हम कुछ खास और मार्के के लेखों से उद्धरण देकर पाठकों के सामने पेश करते हैं।

हिन्दुस्तानियों का ऊँचे ओहदे पर नियुक्त होना

मौलवी साहब खयाल फ़रमाते हैं कि 'हिन्दोस्तानियों के हाथों में जो अधिकार इस समय है, वही औचित्य की सीमा को लाघ गये हैं। उनके हाथों में और अधिकार देना रिआया के लिए नुक़सानदेह और गवर्नमेंट के लिए खतरनाक होगा। इस बात को कभी नही भूलना चाहिए कि इस उसूल के क़ायम रखने में हमको जरा भी हिच न कभी न होगी कि हिन्दोस्तान के आदमियों के लिए हमारे कर्तव्यों में से पहला कर्तव्य यही था कि हम अपनी सल्तनत की सलामती की खैर मनायें। हमको अपनी व्यवस्था के लाभप्रद होने का पूरा विश्वास है और पक्की धारणा है कि अगर हम अपनी गवर्नमेंट हिन्दोस्तानियो के हवाले कर दें तो अराजकता और अव्यवस्था दोबारा दिखायी देगी। इसलिए हमारी गवर्नमेंट की दृढ़ता और स्थायित्व के लिए यह पालिसी बुनियाद होनी चाहिए कि ऊँचे ओहदों पर ज्यादातर अंग्रेजों की नियुक्ति हो। यह एक असली चीज है।' [१]

मौलवी साहब को सख्त अफसोस है कि इस मुल्क मे अदालत और एक्जिक्यूटिव सब की व्यवस्था हिन्दोस्तानियों ही के हाथ मे है। काश और अंग्रेज आ जाते! फ़रमाते हैं 'लोग जो यह मानते है कि हिन्दोस्तान में सिविल इन्तजाम का बड़ा हिस्सा इगलिशमैन के हाथ में है और इसमें हिन्दोस्तानी ऊँचे ओहदों के पाने से वंचित हैं, इससे ज्यादा कोई बात सच से परे नहीं हो सकती।' मौलवी साहब खुद म्योर कालेज के प्रोफेसर हो गये थे। उनके नजदीक अब इससे ऊँचा कोई ओहदा क्यों होने लगा जिसकी कोई हिन्दोस्तानी कोशिश करे। इसी सिलसिले मे फिर फ़रमाते हैं, 'पब्लिक सर्विस में हिन्दोस्तानी मुलाजिमों की तादाद बढ़ती जाती है। इंगलैंड मे बहुत ही थोड़े अंग्रेज मुकर्रर होते हैं।

१ अनुवाद है एक अंग्रेजी पुस्तक से। मौलवी साहब ने इस अनुवाद को अपने विचारों की अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया है।

उनके सिवा विरली ही कोई ऐसी सूरत होगी जिस पर हिन्दोस्तानी न मुक़र्रर होते हों।' अफ़सोस ! एक अंग्रेज जो विलायत मे हिन्दोस्तानी ओहदा पाता है, उसकी तनख्वाह आम तौर पर ढाई सौ क्लर्कों के बराबर होती है। और बहुत बार इससे कही ज्यादा।

क्या मौलवी साहब नहीं जानते कि किसी ज़माने मे यह ऐक्ट पास हुआ था कि किसी महकमे में दो सौ या इससे कम के ओहदों पर कोई अंग्रेज न रखा जाय। आज तारघर और सेक्रेटेरियट और इंसपेक्टर जनरल का दफ़्तर, रेल का महकमा और खुदा जाने कितने सरकारी दफ़्तर है, जिनमे पचास रुपये से ज्यादा तनख्वाह के जितने ओहदे है उन पर अमूमन यूरेशियन नजर आते है। कई महकमे तो ऐसे हैं जिसमें कोई हिन्दोस्तानी नज़र ही नही आता। अगर हम यह भी मान लें कि हमारे हाथो मे छोटे-छोटे सौ-दो सौ रुपये की तनख्वाहों के बहुत से ओहदे है तब भी इन ओहदों से हमारा राष्ट्रीय गौरव तनिक भी नही प्रकट होता। जैसा मिस्टर गोखले ने कहा था कि जब हम ओहदों का ज़िक्र करते है तो पाँच सौ या इससे ज्यादा तनख्वाह के ओहदो का ज़िक्र करते है। क्या इसमें कोई शक है कि इस तनख्वाह के हिन्दोस्तानी ओहदेदारों के नाम उँगलियों पर गिने जा सकते हैं। मगर हम भूले जाते है। मौलवी जकाउल्ला साहब हिन्दोस्तानियो को सिर्फ इस खयाल से ऊँचे ओहदों के क़ाबिल नही समझते कि 'उनके लिए ऐसी साइंटिफिक और टेकनीकल शिक्षा की जरूरत होती है जो कि हिन्दोस्तानियों में बहुत कम मिलती है' बल्कि आपको उनकी सच्चाई और ईमानदारी मे भी सन्देह है। 'ग़रज हिन्दोस्तानी जजों और मजिस्ट्रेटों की सच्चाई और ईमानदारी इस कारण से है कि वह ईमानदार और सच्चे इंगलिश ओहदेदारों के मातहत रहते है।' लेखक महोदय ने अपनी वफादारी और नमकख्वारी के जोश में अपने भाई-बन्दो को गाली देना शुरू कर दिया ! आपकी नज़रों में 'अब हिन्दोस्तानियों को ज्यादा रियायत की जरूरत नहीं है। मगर अंग्रेजों को हिन्दोस्तानी खिदमतों पर ज्यादा से ज्यादा तादाद में लगाने के लिए जरूरी है कि उनको ज्यादा आमदनियाँ और फरलो के अधिकार दिये जायँ........हिन्दोस्तानियों के लिए नौकरियों का मैदान बढ़ता जाता है और योरोपियन के लिए तंग होता जाता है।' इसको कहते हैं नमकख्वारी और नमकहलाली ! बेचारे बिना हाथ-पैर के और बेजबान अंग्रेजो की कैसी वकालत की है ! काश लार्ड कर्जन की निगाह इस जुमले पर पड़ जाय ! हे भगवान् खुशामद की भी कोई इन्तहा है ! अफ़सोस मौलवी साहब ने मिस्टर गोखले का वह नोट नहीं देखा जो उनकी आखिरी बजट स्पीच के साथ अखबारो में छपा है क्योंकि इससे उनको मालूम हो जाता कि आखिरी चार-पाँच

वर्षों में कितने नये ओहदे क़ायम हुए और उनमें कितने हिन्दोस्तानियों को मिले और कितने अंग्रेजों के हाथ लगे। शायद इस नतीजे से उनको कुछ तसकीन होती। पब्लिक सर्विस कमीशन की रिपोर्ट देखिए और जाँचिए कि इन हिदायतों की कहाँ तक तामील हो रही है।

राष्ट्रीय कर

जमीन की आमदनी— मौलवी साहब ने इस महत्वपूर्ण विषय पर कुछ रोशनी नहीं डाली। हाँ, सिर्फ इतना कह दिया है कि 'हमको याद नहीं कि हिन्दोस्तान में खेती के नफे में कभी किसी गवर्नमेंट ने अपना हिस्सा इतना कम लिया हो।' अकबरनामा और दूसरी किताबों और ईस्ट इण्डिया कम्पनी की शुरू की रिपोर्टों के देखने से मालूम होता है कि पहले जमीन का टैक्स पैदावार पर एक तिहाई से एक चौथाई तक था। अब अक्सर हिस्सों में पचास फ़ीसदी है और कभी-कभी तो इससे कहीं ज्यादा। मिस्टर गोखले ने अपनी बजट स्पीच में एक नक्शा पेश किया था जिसमें उन्होंने प्रामाणिक आँकड़ों और निरुत्तर कर देनेवाली युक्तियों के आधार पर दिखाया है कि तमाम सभ्य संसार में कहीं कुल पैदावार पर आठ फ़ी सदी से ज्यादा टैक्स नहीं। हिन्दोस्तान में पन्द्रह फ़ी सदी से पचीस फ़ी सदी है! न कि जैसा मौलवी साहब फ़रमाते हैं 'सिवाय कुछ ऐसी सूरतों के जिन्हें हम अपवाद मान सकते हैं, सात या आठ फ़ी सदी कुल पैदावार का नहीं है।' इसमें कोई शक नहीं कि लगान की जो दर सन् १८३० में थी उससे अब किसी क़दर कम है मगर उस जमाने का आज जिक्र करना ही फ़िजूल है। ईस्ट इण्डिया को अपने हलवे-मांडे से काम था। रिआया की जो हालत थी उसके बारे में कुछ न कहना ही बेहतर है। इस सिलसिले में हमको लेखक महोदय के एक रिमार्क से बहुत आश्चर्य होता है। फ़रमाते हैं, 'जमीन भी अगरचे पब्लिक रेवेन्यू के बड़े हिस्से को पूरा करती है, कभी-कभी बिलकुल वह अपनी हैसियत के मुनासिब टैक्स नहीं देती........इसकी मशहूर मिसाल बंगाल है जिसमें गलती से सौ बरस हुए कि इस्तमरारी बन्दोबस्त हुआ है जिसके कारण बहुत उपजाऊ प्रदेश के जमीन्दार सरकार को नाकाफ़ी मालगुजारी देते हैं और टैक्सों से भी बरी रहते हैं।' मौलवी साहब शायद दुआ करते हों कि बहुत जल्द बंगाल का इस्तमरारी बन्दोबस्त खत्म कर दिया जाय और हर सूबे में मद्रास का रैयतवारी तरीक़ा जारी हो जाय। सारा जमाना मानता है कि इस्तमरारी बन्दोबस्त रिआया के लिए अमृत है और वह दिन शुभ होगा जब कि हिन्दोस्तान के दूसरे सूबों में भी उसका प्रचलन हो जायगा। मगर मौलवी साहब के राजनीतिक

सिद्धान्त निराले हैं। बजाय इन बेमानी बातों के, इतिहासकार की हैसियत से मौलवी साहब के लिए यह बतलाना कर्तव्य था कि मौजूदा ज़मीन्दारी और काश्तकारी के तरीक़े का हिन्दोस्तान के अलग अलग सूबों में कैसे जन्म हुआ और उनसे क्या-क्या नफ़े और नुक्सान हैं वगैरह वगैरह। मगर मौलवी साहब अपने बुढापे की वजह से इतनी माथापच्ची नहीं कर सकते।

रेवेन्यू के दूसरे ज़रिये—लेखक महोदय नहीं चाहते कि गवर्नमेंट 'मालामाल न रहे' चुनांचे वह इनकम टैक्स और अफ़ीम के रेवेन्यू और स्टाम्प के रेवेन्यू और शराब और दूसरी नशीली चीज़ों के रेवेन्यू वगैरह वगैरह को बहुत अनुकूल दृष्टि से देखते हैं और इन सब जरियों को गवर्नमेंट की आमदनी का जरूरी ज़रिया समझते हैं बल्कि इन सब ख़जानों को नाकाफ़ी समझते हैं। फरमाते हैं कि हिन्दोस्तान में औसत टैक्स फ़ी आमदनी सिर्फ़ तीन रुपया है। अफसोस! अगर यह सही भी मान लिया जाय, तब भी क्या यह जुल्म नही कि उस आबादी पर जिसकी आमदनी डेढ रुपया फी आदमी से ज्यादा न हो, दो महीने की आमदनी का टैक्स लगा दिया जाय?

शराब की आमदनी के दिनोदिन बढने से राष्ट्र के नेता दुखी हैं, मगर मौलवी साहब उनको इस्लाह इन शब्दों में करते है 'आबकारी की आमदनी का बढना इस बात को नही साबित करता कि आदमियों को शराब पीने की आदत ज्यादा हो गयी है बल्कि वह नतीजा इसका है कि शराब पर टैक्स की दर आम तौर पर बहुत ज्यादा बढा दी गयी हैं।' और चोरी-छिपे नाजायज शराब बनाने की मनाही हो गयी है। आप इण्डिया और इंगलिस्तान का मुकाबिला करते हैं कि 'इंगलिस्तान में २४२ आदमियों पीछे एक शराब की दूकान हैं और इण्डिया में २४०० से ज्यादा आदमियों पर एक दूकान है। आबकारी की आमदनी निश्चय ही बड़ी आमदनी हो गयी है। इंगलैण्ड मे हितचिन्तक व्यक्तियों ने इन आकड़ों को देखकर अपनी दुर्बुद्धि और अज्ञान से गवर्नमेंट पर अपना बड़ा गुस्सा निकाला कि वह अपनी आमदनी बढ़ाने के लिए यह शरारत करती है कि हिन्दोस्तानियों के लिए शराब पीना आसान करती जाती है। ऐसी ही हिन्दोस्तानियों की भी राय है मगर इसमें कुछ तथ्य नहीं।'

अगर मौलवी साहब को उनका बुढापा इजाज़त देता और वह एक रोज़ किसी शराबख़ाने में जाकर देखते कि कितने जुलाहे, शेख, पठान बोतलों पर बोतलें लुंढाते जाते है तो कुछ सच्चाई खुलती और यह लोग वह है जो अगले ज़माने में शराब को हराम समझा करते थे। ताज्जुब है कि मौलवी साहब ऐसे अपने धर्म के पक्के होकर भी गवर्नमेंट के इस नाजायज आमदनी के जरिये को

अच्छा समझते हैं।

रुई के कपड़े पर महसूल—इस विषय पर मौलवी साहब ने कुछ परिवर्तनों और कमी-बेशी का उल्लेख करने के बाद लिखा है कि 'दिसम्बर १८९४ में इस रुई के कपडे और सूत पर जो हिन्दोस्तान में मिलें बनायें पाँच रुपया फ़ी सदी कीमत पर महसूल लग जाये।' इस बेईमानी पर मौलवी साहब ने ज़बान नहीं खोली। हम उनके बहुत कृतज्ञ हुए कि उन्होंने इसके न्यायोचित पहलू पर प्रकाश नहीं डाला। यह वह टैक्स है जिसको सारी सभ्य दुनिया नफ़रत की निगाह से देखती है और जो अंग्रेजी कौम की खुदगर्जी और सख्ती की निहायत अच्छी मिसाल है।

हिन्दुस्तान का व्यापार—आयात व निर्यात

यह अर्थशास्त्र का एक निश्चित सिद्धान्त है कि अगर किसी देश में निरन्तर कई साल तक माल के आयात का परिमाण निर्यात से अधिक हो तो वह देश दिनों-दिन निर्धन और दरिद्र होता जाता है। मिल और फ़ास्ट जैसे अर्थशास्त्रियों ने इस बात को अपनी दलीलों से आईने की तरह साफ़ साबित कर दिया है और अब किसी को उन पर नुक्ताचीनी करने की गुजाइश नहीं है। मगर हमारे लेखक महोदय फ़रमाते हैं 'अब वह जमाना नहीं रहा कि इस बात को जरूरी मानना पडता था कि वही देश फ़ायदे में रहता है जिसमें माल का निर्यात माल के आयात से अधिक होता है। यह दकियानूसी रायें हैं।' इस बात के सबूत में आप इंगलिस्तान को पेश करते हैं। आपको शायद नहीं मालूम कि हिन्दुस्तान की हालत इंगलिस्तान से बिल्कुल अलग है। अगर इंगलिस्तान में माल का आयात निर्यात से अधिक है तो उसको ज्यादा डर नहीं क्योंकि वह कच्चे माल का एक बडा ज़खीरा अपने मुल्क में बढाता जाता है। हिन्दोस्तान औद्योगिक देश नहीं और जो व्यापार है वह भी व्यवहारतः सोलहों आना अंग्रेजों के हाथ में है। नील, शक्कर, चाय, कहवा, रुई इत्यादि का क्रयविक्रय अंग्रेज ही करते हैं। कलकत्ता, बम्बई, मद्रास, कानपुर वगैरह की मिलों के मालिक भी ज्यादातर वही लोग हैं। हाँ अगर इन व्यापारों से देश को लाभ है तो इतना कि कुछ गरीब मुहताजों के लिए रूखी रोटी का सहारा मौजूद है। गो दस-बीस पंखा कुलियों की जान जाय तो कोई मुजायका नहीं। हिन्दुस्तानी व्यापार का मसला ऐसा दिलचस्प है कि खामखाह तबियत को ज्यादा जानकारी की तलाश होती है। लेकिन आलोच्य पुस्तक से जरा भी तृप्ति नहीं होती। एक न्यायप्रिय अंग्रेज का कहना है कि हिन्दुस्तान की व्यापारिक तबाही जो इंगलिस्तान के हाथों हुई है, उसकी मिसाल

व्यापार के इतिहास में कहीं नहीं मिलती। सन् १८२० में हिन्दुस्तान योरप को करोड़ों रुपये का माल रवाना करता था। सन् १८२० में उसकी व्यापारिक मन्दी शुरू हो गयी और सन् १८५० तक यह देश उद्योग-धन्धे की दृष्टि से समाप्त हो गया। हमारे व्यापार की हत्या करने के लिए इंगलिस्तान ने जो तदबीरें की हैं, उनको आज पढकर रोना आता है।

चेम्बर आफ कामर्स जो कानपुर, कलकत्ता वगैरह में कायम है, उनसे पब्लिक को फायदा नही होता। हाँ, वह अंग्रेजी व्यापार के खयालों का आला समझे जाते हैं[1]। उन्ही की प्रेरणा से तिब्बत को मिशन रवाना हुआ और बहुत करके उन्ही के फायदे के लिए अब फारस से व्यापारिक सम्बन्ध बढाने का प्रयत्न किया जा रहा है। अगर इन चेम्बरो से देश को कुछ फ़ायदा है तो इतना ही है कि समय-समय पर दस-पांच लाख रुपये की वृद्धि युद्ध के खर्चे मे हो जाती है और हज़ार-दो-हज़ार आदमी कुर्बान हो जाते है।

लेखक महोदय ने इस प्रसंग में उन प्रस्तावों और सुझावों का ज़रा भी जिक्र नही किया जो हिन्दुस्तान के व्यापार को बढाने के लिए गवर्नमेंएट के सामने पेश किये जाते है! इनमें से एक प्रस्ताव वही है जिसपर अमल करने से जर्मनी की गवर्नमेंएट ने जर्मन शकर को इस काबिल बना दिया है कि हिन्दुस्तानी बाजारो मे देशी शकर का मुकाबिला कामयाबी के साथ करे।

शिक्षा

लेखक महोदय ने बहुत से कालेजों के क़ायम होने, अंग्रेजी शिक्षा के रिवाज पाने और शिक्षा की धीरे-धीरे उन्नति होने की चर्चा संक्षेप में की है। स्त्री-शिक्षा के बारे में फरमाते है कि अभी आम राय इसके खिलाफ है जो एक हद तक सही है। इसी अध्याय में यह भी लिखा है कि किसानो मे शिक्षा कभी नही पनप सकती। यह खयाल बिलकुल दकियानूसी है। आस्ट्रेलिया, कनाडा कृषिप्रधान देश है मगर वहाँ शिक्षा के क्षेत्र मे ऊँचे दर्जे की तरक्की है गो इसमें कोई शक नही कि शिक्षा की दृष्टि से कृषिप्रधान देश कभी औद्योगिक देश का मुकाबिला नहीं कर सकता। अनिवार्य शिक्षा की समस्या पर, जिस पर एक जमाने से बहस हो रही है, आप बिलकुल खामोश है, शायद इस वजह से कि यह कांग्रेस के प्रस्तावों का एक अंग है। शिक्षा के खर्चों के बारे में इतना ही लिखा है कि 'गवर्नमेंएट इससे ज्यादा नही कर सकती।' इसी सिलसिले में अलीगढ़ कालेज का संक्षिप्त उल्लेख किया है और अपने पेशवा और गुरु सर सैयद अहमद को भी दो-चार खरी-खोटी सुनायी है। औद्योगिक शिक्षा, कृषि की शिक्षा आदि का भूलकर भी उल्लेख

नहीं किया।

कालेज की शिक्षा से आप बुरी तरह क्षुब्ध हैं। फ़रमाते हैं कि हिन्दुस्तान में इसका कुछ अच्छा असर नहीं हुआ। आज तक कोई ऊँचे दिमाग़ वाला नहीं पैदा हुआ। बुरा नतीजा जो हुआ वह यह है कि लोग पढ़-पढ़कर गवर्नमेंएट पर नुक्ताचीनी करते हैं जिसको मौलवी साहब बहुत बड़ा गुनाह समझते हैं।

कांग्रेस

कांग्रेस मौलवी साहब की आँखों में खटकता हुआ काँटा है, लिहाजा आपने किताब के आख़िरी पन्नो मे उस पर कुछ शब्दों के तीर चलाये हैं —

'हिन्दुस्तान के पढे-लिखे लोगो ने एक नेशनल काग्रेस बनायी है जिसमें कभी-कभी पोलिटिकल बहसें बड़े ज़ोर-शोर से होती हैं। यह शास्त्रार्थ, यह बहसें अक्सर विद्यार्थियो के जैसी होती है। बृटिश गवर्नमेंएट के खिलाफ़ ऐसी बे सिर-पैर समस्याएँ भी पेश होती है कि हिन्दुस्तानी फ़ाइनेंस का प्रबन्ध करें और बृटिश गवर्नमेंएट देश की रक्षा करे। ग़ालिबन ऐसे बेतुके ख़यालात खुद-ब-खुद मुर्दा हो जायँगे या गवर्नमेंएट उनको ठण्डा कर देगी।'

मौलवी साहब को खबर नही कि वह गम्भीर विचार-विमर्श जो मुहम्मडन एज्यूकेशनल कान्फ्रेंस में होते हैं, एक मर्तबा मिस्टर बदरुद्दीन तैयब जी की प्रेसिडेण्टी मे हो चुके हैं और मिस्टर तैयब जी कांग्रेस की जान हैं। मिस्टर हैदरी, स्वर्गीय मिस्टर सयानी, मिस्टर तैयब जी और नवाब मिस्टर मुहम्मद हुसैन मद्रासी जैसे-जैसे बुजुर्गवार कांग्रेस के सहयोगी हैं। ऐसे विद्वानों को विद्यार्थी या स्कूली बच्चा कहना लेखक महोदय ही के गुर्दे की बात है।

निहायत अफ़सोस है कि मुसलमान क़ौम के रहनुमा अभी तक ज़माने और उसके रंग-ढंग पर जरा भी नज़र न डालकर आँख मूँदे सर सैयद अहमद के बतलाये हुए रास्ते पर चले जा रहे हैं। मौलवी साहब सर सैयद के खास चेलो में हैं और शायद अपनी जिन्दगी में अपने स्वर्गीय गुरू का विरोध करना बेवफ़ाई समझते हैं।

हम नीचे उर्दूएमुअल्ला की एक फ़ारसी तहरीर से नकल करते हैं जो एक बुजुर्गवार ने अमरीका से लिखकर भेजी है और जो मार्च के नम्बर में छपी है। बहुत गवेषणापूर्ण लेख है—

इण्डियन नेशनल कांग्रेस हमा ज़रिया अस्त कि अर्ज़े हाले हमा हिन्दुस्तानियाँ रा बसमए कुबूले पार्लिमेण्ट इंग्लिस्तान ख्वाहद रसानीद। फ़रियाद ओ ज़ारिये यक फ़िर्क़ा या दो फ़िर्क़ा मानिन्दे आवाज़े तूती दर नक़्कारख़ाना मी बाशद। अम्मा

वक्ते कि हमा अब्नाए मुल्क बइत्तफ़ाक़े हाले जारे खेशरा बयक आवाज़ अदा कुनन्द, यक सदाए तुन्दरा आसा आफ़ाक़े आलमरा गीरद....हरचन्द कि दरीं साले गुज़श्ता दुआए कांग्रेस क़ुबूल न शुद....अम्मा इण्डियन नेशनल कांग्रेस दर नजरे आलमे मुतमद्दिन एतवारे हासिल कर्दा अस्त व कोशिशे बानियानश रायगाँ न रफ़्ता।'

अर्थात् इण्डियन नेशनल कांग्रेस अकेला ऐसा ज़रिया है कि जो तमाम हिन्दुस्तानियों का हाल इंग्लैण्ड की पार्लमेण्ट तक कुबूलियत के लिए पहुँचाता है। एक या दो फ़िर्कों का रोना-धोना नक्कारख़ाने में तूती की आवाज़ की तरह होता है। लेकिन वक्त आ गया है कि मुल्क के तमाम बेटे एक होकर एक आवाज से अपने दुख-दर्द की गुहार लगायें, एक ऐसी जबर्दस्त गरज जो सारी दुनिया को घेर ले....अगर्चे गये साल कांग्रेस की मुराद पूरी नहीं हुई लेकिन इण्डियन नेशनल कांग्रेस ने तहज़ीबयाफ़्ता दुनिया की नजर में एक एतबार हासिल कर लिया है और उसके बानियों (प्रवर्तकों) की कोशिश अकारथ नहीं हुई।

हिन्दुओं का हाल

पुस्तक के अंतिम पृष्ठों मे मौलवी साहब ने हिन्दुओं की दुर्दशा पर भी कृपा की है। आपने जो इस कौम की तस्वीर खींची है, उससे साफ़ ज़ाहिर होता है कि यह क़ौम बिलकुल वहशियों की है। फ़रमाते हैं कि यह लोग नये सिरे से सती की प्रथा को जारी किया चाहते हैं, लड़कियों को मार डालते हैं, आदमियों की कुर्बानी दिन-दहाड़े करते है, विधवाओं को जीते-जी मार डालते हैं और उनकी दशा को सुधारने का ज़रा भी प्रयत्न नहीं करते। क़ौम के नेता सांस्कृतिक सुधार से घबड़ाते हैं और भगवान जाने क्या-क्या खुराफ़ात बातें लिखी हैं। हमे लेख के बढ़ जाने का भय है तो भी हम इस मौके पर मौलवी साहब की किताब से कुछ उद्धरण देना जरूरी समझते हैं —

'अंग्रेजी हुकूमत की हालतें ऐसी हैं, कि उन ओहदों पर जिनमें जान-जोखिम का सामना करना पड़ता है योरोपियन ही मुकर्रर हों।'

'सती—अगर बृटिश गवर्नमेण्ट अपनी देखभाल और ख़बरदारी मे ज़रा भी चूके तो मुश्किल से कोई सूबा ऐसा होगा जिसमें यह अत्याचारी बर्बर प्रथा बड़ी तेजी से न होने लगे। बहुत थोड़े ही हिन्दू ऐसे होंगे जिनको सती प्रथा का हटाया जाना पसन्द हो।'

'आदमियों की कुर्बानी—उन ज़िलों में जहाँ तालीम ने सबसे ज्यादा तरक्की की है, काली देवी अब तक आदमियों की कुर्बानी का दावा किये जाती है। इसकी

मिसाले सामने आती हैं।'

'यह भयानक घटनाएँ जो होती है, (कन्याओं को मार डालना और आदमियों की कुर्बानी) इन पर आमतौर पर लानत-मलामत नहीं की जाती और गवर्नमेंट इन कामों के बन्द करने मे जो कोशिश करती है, उसको लोग पसन्द नही करते और तालीमयाफ्ता आदमी तक भी गवर्नमेंट के साथ इसमें हमदर्दी नही करते। पुरानी रस्मों में गवर्नमेंट जो हस्तक्षेप करती है, उससे हिन्दू बहुत चिढते हैं, चाहे यह रस्म इनकी अपनी हो या न हो।'

'लेकिन कम्बख्ती तो यह है कि इन सांस्कृतिक और सामाजिक प्रश्नों पर गवर्नमेंट को बहुत ही कम सलाह-मशविरा दिया जाता है।'

'लेकिन यह बात आसान नहीं है कि ऐसी मिसाले दी जायँ कि किसी धनी-धोरी हिन्दुस्तानी ने संस्कृति या समाज की उन्नति में नेतृत्व किया हो।'

हमने इन उद्धरणो के साथ इनको काटते हुए कोई नोट लिखना जरूरी नहीं समझा। उनको दुहरा देना ही उनका जवाब दे देना है। पाठक इनके बारे में स्वयं न्याय कर सकते हैं। हमको इसका तनिक भी दुःख नही हैं कि हिन्दुओं पर किसी ने बेजा हमले किये। हाँ दुख इसका है कि जिसने हमले किये वह अपने बुढापे के कारण हमारे मुंहतोड़ जवाबो को सह न सकेगा।

उपरोक्त बातो के अलावा इस किताब मे राज्य-व्यवस्था, ईसाई शिक्षा और चरित्र पर उसका प्रभाव, कानून बनाना, कौंसिल इम्पीरियल और प्राविंशियल, म्युनिसिपल सुधार, भारतीय सेना, गवर्नमेंट खर्चे वगैरह वगैरह पर क़लम घिसा गया है जो हर व्यक्ति Citizen of India और स्ट्राची के British Empire को पढकर ब ख़ूबी मालूम कर सकता है।

भाषा और लेखन-शैली

गो मौलवी साहब देहलवी हैं और उर्दू ज़बान के उस्ताद, गो उन्होंने अपनी सारी कीमती जिन्दगी लिखने-पढ़ने ही मे खर्च की है मगर अफसोस है कि यह किताब साहित्यिक रूप से उस सम्मान की भी अधिकारिणी नहीं, जो उसको ऐतिहासिक रूप से प्राप्त है। अंग्रेजी के बड़े-बड़े भारी-भरकम शब्द बिना किसी टीका के लिख दिये गये हैं जिनको समझने के लिए अरबी-फ़ारसी के अलावा अंग्रेज़ी का भी अच्छा ज्ञान होना चाहिए। कहीं-कहीं ऐसे-ऐसे पेचीदा जुमले लिखे है, कि उनके माने अक्ल में ज़रा भी नही आते। खास तौर पर जहाँ अंग्रेज़ी किताबों से तर्जुमे किये है वहाँ की भाषा बिलकुल अर्थशून्य हो गयी है।

किताब का अन्त

मौलवी साहब ने अपनी किताब के अन्त में यों लिखा है—'अब मैं अपनी किताब को खत्म करता हूँ। मुझे यकीन है कि जो कमसमझ लोग बृटिश गवर्नमेण्ट की खूबियों और नेकियों, नेमतों और बरकतों के समझने में धोखे खाते हैं, इस किताब के पढ़ने से उनके दिलों से वह भरम और धोखे दूर हो जायँगे।' *हमको सचमुच अफ़सोस होगा।* मगर मौलवी साहब के यह जुमले गवर्नमेण्ट तक न पहुँचे जिसके कि वह इतने बड़े भक्त हैं।

महारिबाते अज़ीम

इस किताब में मौलवी साहब ने वह सब महत्वपूर्ण और स्मरणीय घटनाएँ और लड़ाइयाँ लिपिबद्ध की हैं जो स्वर्गीया महारानी के राज्यकाल में इंगलिस्तान में हुईं। मगर यह पुस्तक इतिहास के नाते इतना कम महत्व रखती है कि इसको मौलवी साहब जैसे बड़े और अनुभवी लेखक के साथ जोड़ते हुए शर्म मालूम होती है। मौजूदा जमाने में इतिहास लिखने का स्तर बहुत ऊँचा हो गया है। अब किसी घटना को केवल सरल भाषा में बयान कर देने का नाम इतिहास नहीं है। इतिहासकार का कर्त्तव्य है कि वह जिस घटना को लिखे, उस पर अच्छी तरह अधिकार रखता हो, उस पर ठीक राय दे सके और उसके कारणों और नतीजों पर अच्छी तरह दलील देकर बहस करे। इस हैसियत से यह किताब, जिसकी समालोचना की जा रही है, बहुत कम महत्व रखती है। इसमें किसी घटना पर अच्छी तरह बहस नहीं की गयी बल्कि उनको कुछ थोड़े से इतिहासों से लेकर सरसरी तौर पर लिख दिया है। हाँ क्रीमिया की लड़ाई के साथ खास रिआयत की गयी है। मगर किसी लडाई या मुहासिरे का इतिहास प्रभावशाली नही हो सकता जब तक कि लडाई का सही नक्शा आँखों के सामने मौजूद न हो। इस किताब में इस किस्म की एक तस्वीर या एक नक्शा भी नही है जिसने इसके शैक्षणिक महत्व को बहुत कम कर दिया है। इसके अलावा कुछ और बातें हैं जिनको दुहराना उचित है—

१—फ्रांस और प्रुशिया की लड़ाई, जिसने संसार के इतिहास में ख्याति प्राप्त की, बहुत ही संक्षेप में लिखी गयी है।

२—मिस्टर ग्लैडस्टन के शिक्षा-सम्बन्धी बिल पर, जो एक बहुत स्मरणीय घटना है, कुछ प्रकाश नही डाला गया।

३—तुर्की के बारे में ग्लैडस्टन और लार्ड बीकन्सफील्ड की पालिसियों में जो स्पष्ट अन्तर है, उसको कहीं प्रकट नही किया गया।

॥ आईने कैसरी और महारिबाते अज़ीम ॥

४—किसी-किसी जगह पर जहां खर्च या आमदनी का जिक्र है पौण्ड में किया है, रुपये में होना चाहिए था।

५—अंग्रेजी नामों के सामने रोमन लिपि में नाम लिखना चाहिए ताकि उच्चारण मे गलती न हो।

जबान इस किताब की 'आइने क़ैसरी' की जबान से भी गिरी हुई है। बड़े-बड़े और कठिन शब्द अनावश्यक ठूँस दिये गये हैं। मसलन् 'कूवत व सतवत व शौकत व सौलत' चारों पर्यायवाची शब्द बार-बार साथ-साथ आये हैं। इसी तरह 'इस्तीला' और 'इस्तेला' वगैरह और कहीं कहीं तो जुमले ऐसे हैं कि समझ ही में नहीं आते। शायद यह इस वजह से हैं कि लेखक ने अंग्रेजी इतिहास को सामने रखकर उनका खुलासा किया है। अगर घटनाओं पर अधिकार रख के लिखते तो वह अंग्रेजी शब्दों के अजनबी-से अनुवाद न दिखायी पड़ते जो अकसर मिलते हैं।

—जमाना, अप्रैल १६०१

महारानी विक्टोरिया की जीवनी

अगर इंगलैंड जैसे देश में जहाँ इतनी अधिक पुस्तकें हैं, मिस्टर मारले की पुस्तक 'ग्लैडस्टन की जीवनी' को वहाँ के पत्रों ने महीने की बेजोड़ किताब का स्थान दिया था, तो हिन्दुस्तान जैसे टुटपुंजिये देश में मौलवी ज़काउल्ला साहब की इस ताज़ा कृति या अनुकृति को साल की बेजोड़ किताब की सम्मानित उपाधि न्यायपूर्वक दी जा सकती है। यह एक मोटी किताब है, और यद्यपि इन जानकारियों का भण्डार अंग्रेज़ी भाषा में असंख्य मिलता है तब भी कई किताबों का अध्ययन करना और उनसे अपने मतलब की चीजें चुनकर पूरी एक किताब लिखना आसान काम नहीं है। हम मौलवी साहब को उनकी कामयाबी पर मुबारकबाद देते हैं। उर्दू ज़बान में अब तक इस सर्वप्रिय महारानी की कोई स्मरणीय जीवनी नहीं प्रकाशित हुई थी और गो इसमें शक है कि यह किताब भी याद रखने के क़ाबिल साबित होगी या नहीं, ताहम फ़िलहाल इसके फ़ायदेमन्द होने में कोई शक नहीं है। उर्दूदाँ पब्लिक पर मौलवी साहब ने सचमुच बड़ा एहसान किया है।

भाषा और लेखनशैली

इस किताब की भाषा मौलवी साहब की दूसरी ताज़ा किताबों के मुकाबिले में कहीं ज्यादा अच्छी है। गो फ़ारसी के मोटे-मोटे लफ्ज़ जगह-जगह लुढ़का दिए गये हैं और बिला जरूरत मुश्किल लफ्ज़ों की भरमार कर दी गयी है, ताहम भाषा की सरलता और गम्भीरता में बहुत ज्यादा फर्क नहीं आने पाया। बाज मौकों पर जो सीन बयान किये गये हैं, वह मज़े ले-लेकर पढ़ने के क़ाबिल हैं। ख़ास तौर पर बड़ी नुमाइश को खूब विस्तार और स्पष्टता से बयान किया है। तर्जुमे जो अंग्रेज़ी किताबों से लिये गये हैं, उनके शाब्दिक अर्थों की अपेक्षा उनके आशय पर अधिक ध्यान रक्खा गया है। हाँ कहीं-कहीं अंग्रेज़ी शब्द इतने अधिक इस्तेमाल किये हैं कि वह भाषा बेचारे ग़ैर-अंग्रेज़ीदाँ के लिए लैटिन से कम नहीं है। मसलन् '२७ को मलका को विण्डसर कैसिल में म्युनिस्पैलिटियों और फ़ेण्डली सोसायटियों और प्रोफ़ेशनल एसोसिएशनों और पब्लिक बॉडियों गरज़ इंगलैण्ड........डेपुटेशन मुबारकबाद देने आये।'

लेखक महोदय ने भूमिका में कहा है कि इस किताब में महारानी विक्टोरिया के राज्यकाल का इतिहास लिखने पर दृष्टि नहीं रक्खी गयी है बल्कि उनके उनके निजी जीवन की बातें लिपिबद्ध की गयी हैं। मगर मुसन्निफ़ मौलवी साहब ने इस भूमिका का बहुत ज्यादा लिहाज नहीं रक्खा है क्योंकि उन्होंने न सिर्फ निजी जिन्दगी की दिलचस्पियाँ बयान की हैं, बल्कि राज्यकाल की भी, और सच तो यह है कि महारानी को उनके जमाने से अलग करना मुश्किल है। दोनों एक थे और जब एक का इतिहास लिखा जाता है, तो दूसरे का ज़िक्र करना अनिवार्य हो जाता है।

महारानी के सद्गुण

महारानी के राज्य-संचालन के गुण और बादशाहत के क़ानून चाहे जो महत्व रखते हों, इसमें सन्देह नहीं कि महारानी दया का भण्डार थीं। रहमदिली और हमदर्दी उनकी घुट्टी में पड़ी थी। वह जब बालमोरल या विण्डसर कैसिल में तशरीफ़ ले जातीं तो अक्सर विधवाओं और अनाथों के झोपड़ों में बैठकर उनके साथ हमदर्दी का इज़हार फ़रमातीं। जब अंग्रेजी फौज रूसियों के मुक़ाबिले में टर्की की मदद के लिए गयी थी, उस वक्त महारानी और उनके कुनबे ने अपने हाथों से घायल सिपाहियों के लिए मोज़े और कुरते तैयार किये थे। महारानी का स्वभाव बहुत स्नेहशील था। पति या बच्चों का वियोग एक पल के लिए भी असह्य हो जाता था और जिस गर्मी और सच्चाई और आदरपूर्ण प्रेम से वह अपने पति से पेश आती थीं, उससे हमारी हिन्दोस्तानी स्त्रियाँ बहुत क़ीमती सबक़ हासिल कर सकती हैं। महारानी पत्नी के रूप में, योरप की बीवियों की बनिस्बत हिन्दोस्तान की औरतों से ज्यादा मिलती-जुलती हैं। विद्वानों और कलाकारों का आदर करना उनके स्वभाव का अंग था। जिस वक्त लार्ड डिज़रायली का देहान्त हुआ महारानी ने चाहा कि उसकी लाश वेस्टमिन्स्टर ऐबे में दफ़न की जाय। मगर जब स्वर्गीय लार्ड के उत्तराधिकारी राजी न हुए तो महारानी ने वहाँ उनकी एक लोहे की मूर्ति अपने खर्च से बनवाकर रख दी। छिद्रान्वेषण और छोटी-छोटी बातों में नुक्ताचीनी करने से उनको नफ़रत थी। कहते हैं अपने रोज़नामचे में योरप के बादशाहों और बड़े-बड़े लोगों की आदतों पर अक्सर क़लम चलायी है मगर किसी की शान में कोई कड़ी बात नहीं लिखी।

इंगलिस्तान की महारानी के रूप में विक्टोरिया

इस हैसियत से महारानी का स्थान इतना ऊँचा न था जिसकी तुलना

महारानी एलिजाबेथ से की जा सके। पहले-पहल उन्होंने पार्लियामेंएट के लिबरल दल की तरफ ध्यान दिया मगर लार्ड मेलबोर्न जैसा अनुभवी व्यक्ति इस समय प्रधानमन्त्री था, उसी ने धीरे-धीरे महारानी के दिल से तरफ़दारी के खयाल दूर कर दिये क्योंकि बादशाह का किसी दल की तरफ़दारी करना देश के लिए घातक है। इसके बाद लार्ड एबरडीन और राबर्ट पील और ड्यूक आफ वेलिंग्टन और लार्ड पामर्सटन और लार्ड डिजरायली और ग्लैडस्टन जैसे-जैसे कौम के बुजुर्ग प्रधानमन्त्री के पद पर सुशोभित हुए मगर महारानी के सम्बन्ध सबसे बहुत मैत्रीपूर्ण रहे। कभी-कभी लार्ड पामर्सटन की जंगजू पालिसी अलबत्ता उनको नागवार मालूम होती थी इसलिए बाहर के देशों से जो खतोकिताबत होती थी उसके मसौदे पढ़ने पर महारानी बहुत जोर दिया करती थीं क्योंकि उनको लार्ड पामर्सटन पर भरोसा न था। इस राज्यकाल मे सुधार के बहुत महत्वपूर्ण कानून चलन मे आये मगर महारानी को उनके लिए कभी दर्दसरी की जरूरत पेश न हुई। उनका उसूल था कि बादशाह को क़ौम के साथ-साथ आजादी के मैदान में क़दम रखना चाहिए, न खुद आगे चलकर रास्ता बनाना चाहिए और न पीछे रहकर अपनी हुकूमत को पाबन्दियाँ ढीली करनी चाहिए। तमाम मत्री और साधारण लोग दिल से महारानी को प्यार करते थे और उन्हें आदर देते थे। इसमे कोई शक नहीं कि महारानी पर कई बार घातक हमले किए गए मगर हर बार साबित हो गया कि यह हमले निजी खुदग़रज़ियों और बदमिज़ाजियों और जहालतों का नतीजा थे। महारानी के राज्याभिषेक के कुछ ही साल बाद बड़े-बड़े शहरों में चार्टिस्टों ने खूब ऊधम मचाया। यह उन मज़दूर-पेशा आदमियों की जमात थी जिनको रिफ़ार्म बिल से कोई अधिकार न प्राप्त हुए थे। महारानी हमेशा प्रयत्नशील रहती थी कि देश में स्थायी सेना अधिक संख्या मे रहा करे। अतः हिन्दोस्तान के विद्रोह के कुछ साल पहले जब हिन्दुस्तानी फौज मे छटनी हुई थी उस समय महारानी ने इस प्रस्ताव का विरोध किया था। जब फ्रांस में बड़ी क्रान्ति हुई उस समय योरोप के बादशाहों का खाना-पीना और सोना हराम था मगर महारानी बेधड़क हवाखोरी और सैर के लिए निकला करती थी। उन्होंने रिआया के दिलो मे घर कर लिया था। जब कभी उनकी सालगिरह होती या वह किसी दूसरे शहर मे तशरीफ ले जाती उस वक्त उनका स्वागत बड़े धूम-धाम से किया जाता था। यह ज़माना इंगलिस्तान के लिए तरक़्क़ियों का ज़माना था। अगर महारानी एलिज़ाबेथ के ज़माने में लिटरेचर को तरक्की हुई, जहाजरानी का शौक रिआया के दिलों में पैदा हुआ तो महारानी विक्टोरिया के ज़माने में उद्योग-धन्धों की ऐसी-ऐसी तरक्कियाँ हुईं जिनको महारानी एलिज़ाबेथ चमत्कार समझतीं।

॥ महारानी विक्टोरिया की जीवनी ॥

प्रिंस एलबर्ट

महारानी और प्रिंस एलबर्ट एक प्राण दो शरीर थे। सम्भव नहीं कि इस किताब को शुरू से आखिर तक पढ़कर पाठकों को प्रिंस से वही प्रेम न हो जाय जो किसी अच्छे नावेल के हीरो के साथ हुआ करता है। यह नेक-तबीयत शहज़ादा महारानी विक्टोरिया का ममेरा भाई था। पहले-पहल बड़े-बड़े अंग्रेज़ी परिवारों ने सचमुच उनका उचित सम्मान नहीं किया। लोग उनको दूसरे देश का निवासी होने के कारण अजनबी समझते थे। प्रिंस ने अपनी बारीक निगाहों से इस बेरुखी को ताड़ लिया और अपना शेष जीवन अंग्रेज़ी कौम की भलाई की कोशिशों के लिए समर्पित कर दिया। सन् १८८१ में जो बड़ी नुमायश विलायत में हुई थी और जिसने उस वक़्त संसार भर में ख्याति पायी थी, वह प्रिंस एलबर्ट की सूझबूझ और व्यावहारिक योग्यता का ही परिणाम थी। इस ज़माने में नुमाइशों से मुल्क के लिए ख़तरा पैदा होने का डर था। लिहाज़ा कुछ बड़े सम्मानित लोगों ने प्रिंस को उनके इरादे से दूर रखना चाहा मगर प्रिंस ने प्रशंसनीय लगन और एकाग्रता से इस काम को अंतिम परिणति तक पहुँचाया और इस नुमाइश ने न सिर्फ़ इंगलिस्तान की राष्ट्रीय प्रतिष्ठा को बढ़ाया, बल्कि अंग्रेज़ी कल-कारखानों को इससे बहुत ताकत मिली। इस सफलता ने प्रिंस के हौसलों को और भी बुलन्द कर दिया। वह दिलोजान से क़ौम की भलाई में लग गये। जहाँ कहीं शिक्षा या समाज-सुधार पर कोई जलसा होता उसके सभापति प्रिंस बनाये जाते थे। इस नुमाइश की देखा-देखी और भी बहुत सी नुमाइशें हुईं और हर मौके पर काम करने वालों ने प्रिंस के व्यापक अनुभव से लाभ उठाया। वह ज्ञान-विज्ञान और ललित कलाओं और कल-कारखानों की उन्नति के इच्छुक थे और उनको *"कल-कारखानों का प्यारा और दस्तकारियों का लाड़ला"* कहना बिलकुल उचित है। अपनी इन सब व्यस्तताओं के होते हुए प्रिंस एलबर्ट महारानी के कामों में भी सहयोग दिया करते थे, बल्कि यों कहिए कि उनके खास सलाहकार और मंत्री थे। उनको इंगलिस्तान की हुकूमत की कील कहना गलत न होगा। मशहूर अंग्रेज़ी कवि लार्ड टेनिसन ने उनकी शान में एक बेजोड़ कसीदा लिखा है।

लेकिन गो कि प्रिंस एलबर्ट तमाम तरक्की की कोशिशों की जान थे और इंगलैण्ड में सभी अच्छे पढ़े-लिखे समझदार लोग उनकी कारगुज़ारियों की तारीफ़ करते थे, तब भी एक मौके पर जब रूस की सन्धि का मसला पेश हुआ तो कुछ मन्त्रियों ने प्रिंस पर खुफ़िया जासूस और मुखबिर होने का इलज़ाम लगाया और इसी इलज़ाम पर उनको टावर में क़ैद भी कर दिया। महारानी को अपने

देश को इस कृतघ्नता से बहुत दुख हुआ। मगर जब पालियामेंएट फिर बैठी तो लार्ड ग्रेनवेल ने बहुत समझदारी से प्रिंस के सर से वह सभी इलजाम दूर कर दिये।

प्रिंस की चिट्ठी-पत्री

जीवनीकारी का अनुभव है कि हीरो के एक खत का महत्व लेखक के दस-बीस पन्नों से ज्यादा होता है। मौलवी साहब ने भी प्रिंस और महारानी के अनेक पत्रों के अनुवाद लिखे हैं। इन पत्रों से शहजादे की नेक और पाक तबीयत का साफ पता चलता है। खास तौर पर जो खत उन्होंने अपने उस्ताद और सच्चे दोस्त बैरन स्टाकमेयर को लिखे हैं वह अक्लोदानिश का खजाना मालूम होते हैं। अक्सर चिट्ठियों में बादशाहत के उसूलों और दार्शनिक समस्याओं पर बड़ी खूबी से बहस की गयी है। प्रिंस के एड्रेस हर मौके पर बड़ी दिलचस्पी से सुने जाते थे। उन्होंने बड़े अभ्यास से अंग्रेजी लिखने और बोलने में वह योग्यता प्राप्त कर ली थी जिससे लोगों को आश्चर्य होता था। खासकर एक एड्रेस जो उन्होंने अंक विद्या के लाभों पर दिया है वह उनके कुल एड्रेसों में विशेषरूप से जिक्र करने के काबिल है। मौलवी साहब ने उसका अनुवाद बड़ी खूबी से किया है गो कि भाषा जरा कठिन हो गयी है।

कुछ फुटकर बातें

उपरोक्त बातों के अलावा इस किताब में महारानी के रोजनामचे से जगह जगह मनोरंजक चयन किये गये हैं। उनके सफ़रनामे, उनकी शाही मुलाकातों के ज़िक्र, उनकी सैर और तफ़रीह के किस्से, छोटे शहज़ादों के खेल-तमाशे, बचपन की कहानियाँ, घरेलू प्रबन्ध, बच्चों की शिक्षा-दीक्षा और दैनिक जीवन की और भी बातें बड़ी खूबी से लिखी गयी हैं। महारानी की न्यायप्रियता और उदारता की कहानियाँ जो बहुत प्रभावशाली हैं, सारी पुस्तक में जगह-जगह मोतियों की तरह बिखेर दी गयी हैं। ऐतिहासिक घटनाएँ सब संक्षेप में लिख दी गयी हैं और अक्सर बड़ी खूबी से उनके बारे में राय भी दी गयी है।

—ज़माना, अगस्त १९०५

हाल की कुछ किताबें

हर एक भाषा की बौद्धिक और ज्ञानविज्ञान-विषयक उन्नति को जाँचने का सबसे अच्छा तरीका यह है कि उसकी रचनाओं और संकलन इत्यादि पर दृष्टि डाली जाय। इस लिहाज से अगर उर्दू की हाल की कुछ किताबों पर निगाह डालिए तो किसी कदर मायूसी होती है। इसमे शक नही कि किताबें बहुत सी प्रकाशित हुई मगर उनका स्तर कुछ ऐसा गिरा हुआ है कि उर्दू भाषा का महत्व उनके कारण बहुत नही बढता। 'आबे-हयात' या 'हयाते-जावेद' के स्तर की कृतियाँ अब दिनों-दिन दुर्लभ होती जाती है और 'तमद्दुने-अरब' के स्तर के अनुवाद तो जैसे सपना हो गये। और प्रान्तों की भाषाओं को देखिए तो ज्ञान-विज्ञान के हर क्षेत्र मे अनेकों पुस्तके लिखी जा रही है जो नये-नये अनुसंधानो से भरपूर होती है और जिनको पढकर यह इतमीनान होता है कि हमने अपने ज्ञान में कुछ वृद्धि की। हमारी उर्दू जबान मे वैज्ञानिक और ऐतिहासिक पुस्तकों का तो जिक्र ही क्या कुछ दिनों से ऊँचे स्तर की कहानियाँ भी नजर से नहीं गुजरी। कुछ लोगों का खयाल है कि गंभीर साहित्य की मंदी का कारण उर्दूदाँ लोगों की उदासीनता और उपेक्षा है। हम इस राय से पूरी तरह सहमत नहीं है। सम्भव नही कि ज्ञान के बाजार मे कोई अनूठी चीज आये और हाथों-हाथ बिक न जाये। खास सबब इस मंदी का यह है कि आमतौर पर लिखने वाले न कोई ऊँची कसौटी अपनी आँखों के सामने रखते है और न काफ़ी तौर पर लिखने मे जान ही लगाते है। अगर बाक़ायदा तौर पर ऐसी कोशिशें की जायँ तो पब्लिक बहुत जल्द उनकी कद्र करने लगे और उर्दू का इल्म का बाजार हरा-भरा और कामयाब हो जाये। तो भी पढ़नेवालो की यह बदशौकी और लिखनेवालों की यह बेदिली देखते हुए हम इन किताबों को भी गनीमत समझते है जो पिछले कुछ महीनों मे प्रकाशित हुई और उन पर एक सरसरी निगाह डालते है।

मौलवी मुहम्मद हसन खाँ साहब के नाम से उर्दूदाँ पब्लिक अपरिचित नही है। आपकी दो किताबें 'तुजके अब्दुर्रहमानी' और 'हाजरा' इसके पहले लोकप्रिय हो चुकी हैं। यह तीसरी किताब एक अंग्रेजी पुस्तक 'द डायरी आफ ए टर्क' का अनुवाद है। खालिद जो इस पुस्तक का लेखक है एक तुर्की नौजवान है

जिसने राष्ट्रीय झगड़ों के कारण अपने देश से भागकर इंगलिस्तान में शरण ली है और वही यह किताब लिखी है। इसके पढ़ने से तुर्की के पिछले पचास-साठ वर्षों की सास्कृतिक स्थितियों पर बहुत-कुछ प्रकाश पड़ता है। यद्यपि लेखक खुद एक तुर्क है मगर उसने तुर्की मामलो पर एक सजग अंग्रेज की निगाह डाली है और अक्सर बड़ी गंभीरता से उन पर अपनी राय भी दी है। हिन्दुस्तान की तरह तुर्की भी मौजूदा ज़माने की रफ्तार के असर से प्रभावित हो रहा है। यहाँ की तरह वहाँ भी पोलिटिकल आजादी और अधिकारों की माँग करनेवालों की संख्या दिनों-दिन बढ़ती जाती है। खालिद इसी श्रेणी का एक जोशीला नौजवान है और गो वह तुर्की की आन्तरिक व्यवस्था से खुश नही है मगर जब कोई ऐसा मौक़ा आया है उसने तुर्की को उन ग़लतफहमियों से बचाने की कोशिश की है जो योरोप मे बेइंसाफ़ और द्वेष से भरे हुए पत्रों और पत्रकारों की बदौलत फैली हुई हैं। खास तौर पर जिस अध्याय में उसने आरमीनियों के उपद्रव और विद्रोहात्मक षड्यंत्र और तुर्की गवर्नमेण्ट की परेशानी और बेबसी का ज़िक्र किया है उसके पढ़ने से साफ ज़ाहिर हो जाता है कि योरोपीय राज्य तुर्की की जड खोदने में, चाहे वह कितने ही अनुचित ढंग से क्यो न हो, पहलू नही बचा रहे हैं। इसके अलावा लेखक ने तुर्की के रीति-रिवाज और सामाजिक व्यवस्था का भी थोड़ा बहुत ज़िक्र किया है जिससे जाहिर होता है कि हिन्दुस्तान की तरह वहाँ भी नयी और पुरानी सभ्यता मे संघर्ष छिडा हुआ है। उद्योग-धंधों और कल-कारखानो की मदी का वहाँ भी यही हाल है और वहाँ भी पढा-लिखा समुदाय इसी तरह सरकारी नौकरियों पर जान देता है। अनुवाद की दृष्टि से यह पुस्तक प्राय: निर्दोष है मगर एक चीज़ जो तबियत को परेशान करनेवाली है वह इसकी लम्बी भूमिका है। ज्ञान जितना बड़ा हो, पगड़ भी उतना ही बड़ा होना चाहिए। आमतौर पर भूमिका में मूल पुस्तक के उद्देश्य और लक्ष्य बताये जाते हैं मगर मौलवी मुहम्मद हसन खाँ ने अपनी भूमिका को, जो असल किताब से दो ही चार सफे कम है, सांस्कृतिक प्रश्नों की बहस का मैदान बनाया है। आप हिन्द की इस्लामी तरक्क़ी की रफ्तार से दुखी और बेज़ार हैं, और जरूरत से ज्यादा सख्त शब्दों मे आजादी के उन बडे-बडे चाहनेवालों से अपना विरोध प्रकट करते हैं जिनमे जस्टिस तैयब जी, जस्टिस अमीर अली, सर आग़ा खाँ जैसे क़ौम के नेता शामिल हैं। बहस उसी बात को लेकर है जिस पर बार-बार अखबारों और रिसालों में लिखा जा चुका है। हाँ, इस मौके पर सारी आपत्तियाँ और उनके जवाब बाक़ायदा तौर पर एक जगह इकट्ठा कर दिये गये हैं। हमको इससे

बहस नहीं कि आपने ऐसे विचारों को जो मौजूदा जमाने से क़तई मेल नहीं खाते क्यों प्रकट किया। हर आदमी को अपने विचार व्यक्त करने का अधिकार है मगर इस काम के लिए दूसरी तरह की किताब की जरूरत थी। कागज, छपाई और लिखाई के लिहाज से यह किताब बहुत अच्छी है। इन गुणों को देखते इसकी क़ीमत ज्यादा नहीं है।

समकालीन ऐतिहासिक घटनाओं पर ड्रामा लिखने का रिवाज अभी उर्दू जबान में बहुत कम है। एलबर्ट बिल पर एक ड्रामा छपा था। इसके बाद अब 'दकन रिव्यू' के क़ाबिल एडिटर मौलवी ज़फ़र अली खाँ बी० ए० ने रूस और जापान की लड़ाई पर एक ड्रामा लिखा है जिसमें लड़ाई के कारण, जापानी सिपाहियों और सेनापतियों का देश-प्रेम, रूसी फौज के आपसी झगड़े-फ़साद और इसके बुरे नतीजे बड़े मनोरंजक ढंग से दिखाये गए हैं। कहीं कहीं हुस्नो-इश्क़ की चाशनी भी डाल दी गई है जिससे किताब की दिलचस्पी बहुत बढ़ जाती है। मगर ड्रामे का सर्वोत्तम गुण यह है कि उसका एक-एक शब्द और एक-एक वाक्यांश हृदय के आवेग से गर्म हो और सुननेवाले के दिल में कभी गुदगुदी, कभी गर्मी और घुलावट, कभी जोशो-खरोश और कभी गम और गुस्सा पैदा करे। इस लिहाज से हम इस किताब को ड्रामे के बजाय नाविल से ज्यादा मिलता-जुलता समझते हैं। इसके अलावा कला का एक दोष यह है कि सारी किताब पढ़ जाइये मगर यह पता नहीं चलता कि कौन हीरो है और कौन हीरोइन। आमतौर पर ड्रामा में हीरो को ऐसी महत्वपूर्ण भूमिका दी जाती है और सारी घटनाओं में उसका अंश इतना अधिक होता है कि उसको दूसरे साधारण पात्रों से अलग पहचान लेना बहुत आसान होता है। मगर इस ड्रामे में गौर करने से भी समझ में नहीं आता कि किसको हीरो कहूँ और किसको हीरोइन। यह भी कहना जरूरी है कि जल्द-जल्द सीन बदलना दोषपूर्ण है, इसका लिहाज किये बगैर कि घटनाओं के लिए दृश्य-परिवर्तन की जरूरत है या नहीं। इस ड्रामे में कुछ ही पन्नों में टोकियो, काबुल, सेण्ट पीटर्सबर्ग, मास्को, पोर्ट आर्थर, क़ार्जो, लड़ाई का मैदान और और भी बहुत सी जगहों का नक्शा दिखाया गया है। इसी कारण से किसी जगह पर पढ़नेवाले का ध्यान काफ़ी तौर पर जम नहीं पाता।

कैरेक्टरों के संभालने में लेखक को एक हद तक कामयाबी हुई है। ऐमो, विनयोमिंद्रा और कियो वगैरह इंसानियत के बेहतरीन नमूने हैं। मिकाडो की दृढ़-निश्चयता और जार के हृदय की अस्थिरता भी खूब दिखाई गई है मगर इसके साथ ही कहीं-कहीं मौक़े-महल का लिहाज न करके कैरेक्टरों से ऐसे पार्ट अदा कराये गये हैं जो किसी तरह नेचुरल नहीं मालूम होते बल्कि एक हद तक सुरुचि

को ठेस पहुँचाते हैं जैसे :

की डुगडुगी से पहले कलन्दर ने मुनादी
फिर उठके रसन खिर्स की बंदर को थमा दी
भालू ने जो बन्कार के बंदर को सदा दी
बंदर ने भी दुम अपनी हिकारत से उठा दी
और खिर्स को दिखला दिये दो सुर्ख रतालू।

ये शेर अगर किसी मसखरे की ज़बान से अदा कराये जाते तो ज़रा भी बेमौका या नागवार न मालूम होते। मगर एक ऐसी मजलिस में जो शेख-उल-इस्लाम काज़ी मुहम्मद बिन यहया के घर पर हुई है और वहाँ भी एक तहज़ीब-याफ्ता मौलवी की ज़बान से ऐसे पोच अशआर का निकलना बहुत बुरा मालूम होता है।

इसी तरह मुल्ला मुहम्मद सईद की ज़बान से नीचे लिखी बातचीत अदा कराई गई है :

'यूरोप के ईसाई, क्या अंग्रेज और क्या रूसी, लातों के भूत हैं, बातों से नहीं मानते। जो डंडा संभालकर उनके सिर पर सवार हो जाये उसके ये दोस्त और जो ज़रा दबा उसका उन्होंने टेटुआ दबाया।'

यह बातचीत काबुल के अमीर जैसे समझदार, ऊँचे दिमागवाले बादशाह के एक सुसंस्कृत मंत्री की है मगर किसी बाज़ारू आदमी की ज़बान से निकलती तो ज्यादा ठीक मालूम होती। इसके अलावा ऐसी बेहूदा बातचीत से काबुल के अमीर के दरबार का रोब-दाब, शान-शौकत पढ़नेवाले के दिल से दूर हो जाती है।

सबसे बड़ी गलती कैरेक्टरों के दिखाने में लेखक महोदय से यह हुई है कि आपने मिस्टर और मैडम रूज़वेल्ट को बिल्कुल मटियामेट कर दिया है। आपकी मैडम रूज़वेल्ट किसी पुराने दक़ियानूसी हिन्दी क़िस्से की रानी हों तो हों मगर अमरीका के मनस्वी, बुद्धिमान प्रेसीडेन्ट की पत्नी नहीं हो सकतीं। इन दोनों कैरेक्टरों में जो बातचीत होती है वह उनके पद, सभ्यता और कुलीनता की दृष्टि से बिल्कुल छिछली है, मसलन् मिस्टर रूज़वेल्ट अपनी बीवी से कहते हैं—

यह खब्त क्या तुम्हें सूझा है ऐ मेरी प्यारी
मगर दिमाग तुम्हारा है अक्ल से आरी।

हम नहीं समझते कि मिस्टर रूज़वेल्ट या उनकी बीवी की नज़रों से यह शेर गुज़रे तो वह हिन्दुस्तानियों की तहज़ीब का अपने दिल में क्या अन्दाज़ा लगायें। आधुनिक सभ्यता की विशेषता स्त्रियों के साथ अत्यंत सदाचार बरतना है। अगर उनको आवश्यकतावश बुरा-भला भी कहें तो बहुत संयत और क्षमायाचना के से

स्वर में कहेंगे न कि इस तरह आमने-सामने गाली-गलौज ! मगर इसी पर खात्मा नही हुआ है। सारी दुनिया एकमत है कि मिस्टर रूज़वेल्ट अत्यंत शांति-प्रेमी, स्वतंत्र-विचार, और संधि व समझौते के ज़ोरदार समर्थक व्यक्ति हैं। मगर इस ड्रामे में लिखने के जोश मे उनकी जबान से निहायत पोच और गन्दे खयालात का इजहार किया गया है। मसलन 'दो-तीन लाख और रूसी मारे गये तो मेरी जूती से और जापान की फ़ौजी आबादी लाख-डेढ़ लाख कम हो गई तो मेरी बला से।'

अफ़सोस हमारे नाटककार ने एक बहुत ही नेक और बड़े आदमी को जनता की आँखों में गिरा दिया है। इसमें शक नहीं कि नाटककार हमेशा थोड़ी-बहुत अतिरंजना से काम लिया करता है मगर नेक को बद बना देना अतिरंजना नही है। अलबत्ता मामूली नेक को फ़रिश्ता और बद को शैतान बना देना अक्सर ड्रामा लिखनेवालों का ढंग रहा है। अफ़सोस है कि इस किताब में ऐसी बातों का बहुत कम लिहाज रखा गया है और शायद यही वजह है कि सारी किताब में कही भी भावनाओं में सच्चा उभार नही आता।

भाषा इस पुस्तक की साफ-सुथरी है। कही-कहीं जटिल और दुर्बोध शब्दों का प्रयोग कानों को खटकता है। कथोपकथन कही-कही बहुत लम्बे है जिनसे तबियत उकता जाती है। ड्रामे के लिए शब्दों की सहजता और उपयुक्तता बहुत जरूरी चीज है। भारी-भारी शब्द, जिसका जरूरत से ज्यादा लिहाज रखा गया है, पांडित्यपूर्ण और ऐतिहासिक विषयों के लिए उचित हों तो हों मगर ड्रामा के लिए उपयुक्त नही।

किताब की तरफ से नजर हटाकर जब उसकी भूमिका को देखिये तो फ़ौरन ऐसा खयाल होता है कि जैसे बाजार की खाक छानकर एक मसखरों की मह-फ़िल में आ गये। मौलवी अब्दुल हक़ साहब लेखन-कला के पंडित है। आपने उस संक्रामक रोग का, जिसको 'जर्मन की न मिटनेवाली भूख' कहते हैं और जिसमें योरप की कुल सल्तनतें गिरफ्तार है, निहायत प्यारे लहजे में ज़िक्र किया है। आपकी शैली हास्यपूर्ण और बहुत ही दिल में घर करनेवाली है। एक ऐसे रूखे-सूखे पोलिटिकल मसले को ऐसे मजेदार ढंग से निबाहना आपही का काम है।

अंजुमन तरक्क़िये उर्दू और अंजुमने उलूमे क़दीमा कुछ अर्से से क़ायम हैं और विभिन्न शास्त्रों की कुछ किताबें भी प्रकाशित कर चुके है मगर हमारी समझ में अब तक उनकी तरफ़ से कोई ऐसी किताब नहीं प्रकाशित हुई जो ऐतिहासिक महत्व की दृष्टि से उस ग्रन्थ-माला की बराबरी कर सके जिसका पहला नम्बर 'रसराते यद' के नाम से प्रकाशित हुआ है। मौलवी हकीम सैयद मुहम्मद अली साहब अर्श मलीहाबादी ने जो उसके सम्पादक है वाक़ई मुल्क और जबान पर

॥ विविध प्रसंग ॥

एहसान किया है। नवाब वाजिद अली शाह जब अपने भोग-विलास के कारण बरबाद हुए तो उनके अनेक महलों और बेगमों पर हसरतभरी बेचारगी की हालत छा गई। कितनी ही बेगमों ने तो सरकारी वसीक़ा लेकर संतोष किया और शहर को छोड़ कर दर-ब-दर भटकने लगी और कितनी ही दुनिया की गंदगियो का शिकार हो गईं। मगर कुछ पतिव्रता स्त्रियों ने अपने सम्मान और शील को बनाये रक्खा और जब तक जिन्दा रही प्यारे जान आलम के नाम पर मरती रहीं। बद्र आलम साहिबा उन्हीं बेगमों में से थी और यह किताब, जो रुक़्क़ात-बद्र के नाम से छपी है, उन पत्रों का संग्रह है जो बद्र आलम साहिबा ने प्यारे अख़्तर के नाम लिखे थे। क्योंकर मुमकिन था कि वह तबीयतें जो नाज़ो-नेमत की गोद में पली थी, जिन्होंने मुसीबत और नाउम्मीदी को सपने में भी न देखा था और जो ऐश-परस्ती मे सर से पैर तक डूबी हुई थी, एकाएक अपनी आदतों को बदल लेतीं। गो जान आलम मटियाबुर्ज की चहारदीवारी में बंद थे, तख़्तो ताज और शान-शौकत का खात्मा हो गया था, गो बद्र आलम किराये के मकान में रहती, महाजनों के तकाज़े सहती और 'भाड़ी ज़मीन पर' बैठती थी मगर ख़त सब के सब आशिक़ाना शिकवे-शिकायत, गुपचुप माशूक़ाना इशारों और लगावटबाज़ी के जुमलो से भरे हुए है। जबान की नमकीनी का क्या पूछना। लखनऊ की एक आला दर्जे की तालीमयाफ्ता बेगम की ज़बान मे जिस क़दर नजाकत, पाकीजगी और सुथरापन हो सकता है वह सब इन ख़तों में मौजूद है। हाँ चूँकि वह ज़माना 'सुरूर' के रंग का था इसलिए अक्सर सम्बोधन आदि लम्बे-चौड़े है और ज्यादातर मौक़ों पर छोटी-सी बात भी बहुत अनुप्रासों से भरी हुई शैली में अदा की गई है। बद्र आलम साहिबा शायरा भी थी और संकलित पत्रो को देखकर कह सकते है कि उनकी तबीयत शायराना थी। अफसोस ज़माना कैसा बेरहम है! उन शहज़ादियो को, जो जमीन पर पाँव भी न रखती थीं, ज़माने के सदमे उठाना और ज़िंदगी के ज़ुल्म सहना पड़े। इन पत्रो में एक बात जो सबसे ज्यादा दिल पर असर करती है वह यह है कि बद्र आलम साहिबा का यही ख़याल रहा कि जान आलम से बहुत जल्द फिर लखनऊ में मिलेंगे। काश इस पत्रो के संग्रह के साथ एक भूमिका भी होती तो किताब ज्यादा दिलचस्प हो जाती।

स्त्री-शिक्षा के प्रश्न से आजकल बडा लगाव दिखायी पड़ रहा है। गवर्नमेंट और पब्लिक दोनों ही ने उसके महत्व और उसकी आवश्यकता को स्वीकार कर लिया है और उसको व्यावहारिक रूप देने का प्रयत्न कर रहे है। ऐसे वक़्त मे मुंशी अहमद अली खाँ साहब की किताब 'अतालीक़े निस्वा' एक बड़ी ज़रूरत

को पूरा करेगी । यह किताब पाँच छोटी जिल्दो में प्रकाशित हुई है । ग्रन्थकार ने स्त्री-शिक्षा की जो कसौटी अपने सामने रखी है वह यह है कि लड़कियाँ 'दो चार हर्फ़ उर्दू जवान मे अपने रिश्ते-कुनवेवालों को अपनी जरूरत के बारे में लिख-पढ़ सकें, घर का रोज़ का खर्च लिख लें, बच्चों को मामूली किताबें पढा सकें, अपनी और घरवालो की सेहत ठीक रक्खें और बच्चों की ग्राम बीमारियों का इलाज हकीम न मिलने की सूरत मे कर लें। उनको सिखायें-पढ़ायें, स्वादिष्ट और पौष्टिक खाने पकायें, सीने-पिरोने और कुछ कशीदे काढ़ने की जानकारी रखती हो और सामान्य ज्ञान की बातों का उनके पास खज़ाना हो।' हम इस कसौटी का पूरी तरह समर्थन करते है। हमको खुशी है कि लेखक ने इस पर अमल करने में एक बडी हद तक कामयाबी हासिल की है और 'अतालीके निस्वाँ' की पाँचो जिल्दो मे कही यह कसौटी नज़रों से नही गिरने दी है। हाँ, लेखों के क्रम से हम पूरी तरह सहमत नही हैं। मसलन, पहले हिस्से मे हिसाब की तालीम दी गई है। हमारी समझ में बच्चो के लिए सबसे पहले मामूली चीजों पर ज़बानी सबक देने की जरूरत है। शुरू-शुरू मे उनको हिसाब से बहुत कम दिलचस्पी होती है। हिसाब का ज़िक्र स्वभावत. गृहस्थी के प्रबंध से संबंध रखता है जिसका ज़िक्र पाँचवो जिल्द में आया है। खाना पकाने, सीने-पिरोने, काढ़ने और रँगने पर मौजूदा ज़माने की खोजों और आविष्कारो को ध्यान में रखकर बहुत फ़ायदेमंद और तजुर्बे की हिदायतें की गई है। सामान्य लेख और चिट्ठियाँ लिखने के पाठो का क्रम बिल्कुल अंग्रेज़ी किताबो के ढग पर रखा गया है जिससे उम्मीद है कि यह मुश्किल काम बहुत आसान हो जायेगा।

पंजाब रिलीजस बुक सोसाइटी के ज्ञान-विज्ञान-विषयक कार्यो की 'ज़माना' के पन्नों मे कई बार तारीफ़ की जा चुकी है। पिछले कुछ महीनों में इस सोसाइटी की तरफ से कई फायदेमंद और काम की किताबे प्रकाशित हुई है जिनमे विषय की दृष्टि से 'हयाते शमा' खास तौर पर ज़िक्र करने के क़ाबिल है। आकार इस पुस्तक का छोटा है और पृष्ठ संख्या भी साठ से ज्यादा नही मगर इनमे ग्रन्थकार ने वह सब जरूरी बातें भर दी है जो एक साइंस का आरंभिक ज्ञान रखनेवाले को जाननी चाहिए। मसलन् चिराग के लिए हवा चलने की क्यों जरूरत होती है, चिराग के जलने से कौन-कौन चीजें पैदा होती है, कोयले की गैस क्या है और क्योंकर बनती है वगैरह। अक्सर बातों को समझाने के लिए तस्वीरों से मदद ली गई है। भाषा सरल और सुबोध है। इस किताब के अलावा इसी रूप-रंग और आकार-प्रकार की कई और किताबें सोसाइटी ने छापी हैं— 'फूलों की कहानी' 'तारीखे मिस्र' और 'राबिन्सन क्रूसो' का तजुर्मा वगैरह।

'फूलों की कहानी' वनस्पति-शास्त्र की एक प्राइमर है। इसमे फूलों की वनावट, उनकी अंग-रचना और क्रिया-कलाप, उनका वर्गीकरण, उनका शादी-ब्याह, उनके जन्म आदि का काफी विस्तार के साथ वर्णन किया गया है। फूलों के विविध अंग तस्वीरों की मदद से दिखाये गये हैं। ऐसी हालत में जब कि उर्दू ज़बान मे वनस्पति-शास्त्र पर विशद पुस्तकें बहुत कम लिखी गई है, हम इस प्राइमर को गनीमत समझते है। ऐसी किताबों के लिखने मे एक बडी दिक्कत यह है कि मौके-मौके पर शब्दो की कमी अनुभव होने लगती है और लेखक को मजबूरन दूसरी भाषा के शब्द ज्यों के त्यों रख देने पडते है। मगर इस किताब में अक्सर अंग्रेज़ी शब्दों के मुकाबले में उनके फ़ारसी पर्याय ढूंढ निकाले गये हैं।

दूसरी किताब 'तारीखे मिस्र' एक हिस्ट्री की प्राइमर है जिसमें पुराने ज़माने के मिस्रियों के रीति-रिवाज, रहन-सहन, आचार-विचार, राज्य-व्यवस्था, धार्मिक विश्वास, उत्थान और पतन के कारण इत्यादि का संक्षिप्त विवरण दिया गया है। मिस्र का पुराना इतिहास इंजील के अनुसार नूह के तूफ़ान के बाद ही से शुरू होता है। इस किताब में लेखक ने नये ऐतिहासिक अनुसंधानों को ध्यान में रक्खे बिना, बाइबिल के बयान का समर्थन कर दिया है। मगर मिस्र के धार्मिक विश्वासो और रीति-रिवाज का हाल पढ़कर यह विचार पक्का हो जाता है कि मिस्रियो की सभ्यता आर्यों की सभ्यता का अनुकरण थी। मसलन् मिस्र वाले आवागमन को मानते थे और जात-पाँत के पावंद थे जो आर्य सभ्यता की विशेषताएँ है। यह किताब बहुत ही संक्षिप्त है मगर तो भी सिर्फ बादशाहों की लड़ाइयों का ज़िक्र करके खतम नहीं हो जाती, सांस्कृतिक स्थितियों पर भी थोड़ा-बहुत प्रकाश डालती है जिसको इतिहास-लेखन की कला का प्रधान उद्देश्य कहना चाहिए।

तीसरी किताब 'सरगुज़श्ते रॉबिन्सन क्रूसो' है। यह एक निहायत मशहूर अंग्रेज़ी किस्से का तर्जुमा है जिसमें एक अंग्रेज़ी मल्लाह के जहाज़ के टूटने और सुनसान वीरान जंगलों में लम्बी मुद्दत तक रहने के बाद अपने देश को वापस आने का किस्सा ऐसे सरल और मनोरंजक ढंग से बयान किया गया है कि यह किताब हमेशा इरादे के पक्के नौजवानों मे बहुत पसंद की जाती रही है। शायद ही कोई अंग्रेज़ी बच्चा ऐसा होगा जो रॉबिन्सन क्रूसो के नाम से उसी तरह परिचित न हो जितना किसी मामूली दोस्त के नाम से। डानियल डीफ़ो, जो इस किताब का लेखक है, मलिका एन के ज़माने का एक बड़ा लेखक हुआ है जिसने बहुत दिनो तक अपने वक्त के सवालो पर किताबें लिखने के बाद यह क़िस्सा लिखा और सच तो यह है कि अपनी अमर कीर्ति की नींव डाल गया। हमारी भाषा

शरर और सरशार

हकीम बरहम साहब गोरखपुरी ने अगस्त-सितम्बर के 'उर्दुए मुअल्ला' में अद्भुत योग्यता और बारीकी से शरर और सरशार की तुलना की है जिसमें आपने हजरत शरर को ऐसा आसमान पर चढाया है कि बेचारे सरशार का नाम तक उनके मुकाबले मे लिया जाना ठीक नहीं समझते। उनके लेख का सारांश यह है कि सरशार का उर्दू लिटरेचर की गर्दन पर कोई एहसान नही है। अच्छा होता कि ऐसा लेख लिखने के पहले हकीम साहब ने यह भी देख लिया होता कि उनसे ज्यादा योग्य आलोचकों ने जिनमें शेख अब्दुल क़ादिर बी० ए० भी हैं, उर्दू जबान में सरशार को क्या जगह दी है। यह ध्यान रखना जरूरी है कि उर्दू शायरों या उनकी शायरी पर हर सुरुचि-सम्पन्न उर्दूदाँ राय दे सकता है मगर उर्दू नाविल पर कुछ लिखने को जवाबदेही वही आदमी ले सकता है जो कम से कम अंग्रेजी भाषा के मशहूर उपन्यासकारों की कृतियों से परिचित हो। इस लिहाज़ से शेख साहब की आलोचना हकीम साहब के मुकाबले में कही ज्यादा वजन रखती है।

मिस्टर चकबस्त का लेख आलोचनात्मक था। उसमें सरशार के गुणो के साथ-साथ उनके दोषो पर प्रकाश डाला गया था। मगर हकीम साहब ने सरशार की त्रुटियाँ तो सब की सब दिखा दी, चाहे काल्पनिक ही सही, मगर शरर को बिलकुल निर्दोष समझा हालाकि सब लोग जानते है कि आज तक कोई आदमी ऐसा नही हुआ जिसमे खूबियों के साथ-साथ बुराइयाँ न पाई जायं।

हम हकीम साहब के कहने से इस बात को मान लेते है कि हजरत शरर अरबी के फाजिल, फारसी के बहुत बड़े आलिम और अपने वक्त के बहुत बडे विद्वान है। बहुत सी योरोपीय भाषायें भी अच्छी तरह जानते है। डिक्शनरी की मदद से तर्जुमे कर सकते है और उर्दू गद्य में तो एक नये रंग के प्रवर्तक और आधुनिक साहित्य के जन्मदाता है। इसके विपरीत बेचारा सरशार फारसी में कच्चा और अरबी मे नादान बच्चा है। इतिहास-भूगोल से उसको जरा भी लगाव नही, योरप की भाषाओं का क्या जिक्र उर्दू मे भी काफ़ी योग्यता नही रखता। मगर हमको इस वक़्त इन बड़े लोगों की निजी योग्यताओं से बहस

मे देखिए तो रेनाल्ड्स के नाविलों के तर्जुमे भरे पड़े हैं मगर अब तक इस हौसलामंद और उमंग पैदा करनेवाली किताब की किसी ने बात भी न पूछी थी। कुछ बर्षा हुआ हिन्दी में इसका अनुवाद प्रकाशित हुआ था। अब इस सोसाइटी के सत् प्रयत्नों से उर्दू में भी प्रकाशित हो गया। अनुवाद सरल और सुबोध भाषा में है मगर तस्वीरों के बिना यह किताब कुछ फीकी मालूम होती है।

'ताजो निशा' और 'गजे शायर्गा' के लेखक मुहम्मद रफी रिजवी साली ने इसी सिलसिले मे एक और किताब छापी है जिसमें विभिन्न देशों और राष्ट्रों की पगड़ियों और टोपियों की तस्वीरें दिखाने की कोशिश की गई है। ऐसे संग्रहों का महत्व अब केवल इस कारण से है कि उनसे संस्कृति के इतिहास की व्याख्या में सहायता मिलती है मगर उनसे यह फायदा उठाने के लिए विषय को जिस तरह से सजाने-सँवारने की जरूरत है वह इसमें नहीं है। अगर लेखक ने अंग्रेजी टोपियों का क्रम इस प्रकार दिया होता कि पहले उनका क्या ढंग था फिर उसमें क्या परिवर्तन हुआ और अब उनकी क्या शक्ल है तो देखनेवाले को खास दिलचस्पी होती। इसके अलावा ऐसी किताबें किसी काम की नहीं होती जब तक कि तस्वीरें साफ और असल से हूबहू मिलती-जुलती न हों। अफसोस है कि इस हैसियत से यह किताब बहुत कम महत्व रखती है। तस्वीरें ज्यादातर गलत हैं जिनको देखकर असल चीज़ की तस्वीर दिमाग मे नहीं आती। तस्वीरें रंगीन हो सकती तब भी गनीमत होता।

ऐसे अच्छे वक्त मे जब कि हिन्दुस्तान हुजूर शहजादे और शहज़ादी वेल्स के शुभ आगमन से दूसरा स्वर्ग हो रहा है, इस चर्चा का प्रकाशित होना अवसर के बहुत अनुकूल और उचित है। काजी अजीजउद्दीन अहमद साहब ने, जो इस किताब के लेखक हैं और जिनके नाम से उर्दू लिटरेचर बहुत बार परिचित हो चुका है, शहज़ादा साहब के पूरे हालात मुख्तलिफ जरियों से जमा करके इकट्ठा कर दिये हैं मगर लेखक ने सिर्फ संग्रह और संपादन का कष्ट नहीं उठाया है बल्कि पुस्तक की भाषा और लेखन-शैली से उस भक्ति और सच्ची वफादारी का पता चलता है जो हिन्दुस्तानियों को अपने शाही मेहमानों से है। खासकर वे अध्याय, जिनमे शहज़ादे के निजी गुणों की चर्चा की गई है, बहुत खूबी से लिखे गये हैं और मौके-मौके पर ऐसी जनश्रुतियाँ उद्धृत की गई हैं जो शहज़ादे की नेक तबीयत, दानशीलता और गरीबों की मदद करने के गुण का प्रमाण देती है।

—ज़माना, फरवरी १६०६

शरर और सरशार

हकीम बरहम साहब गोरखपुरी ने अगस्त-सितम्बर के 'उर्दुए मुअल्ला' मे अद्भुत योग्यता और बारीकी से शरर और सरशार की तुलना की है जिसमें आपने हजरत शरर को ऐसा आसमान पर चढ़ाया है कि बेचारे सरशार का नाम तक उनके मुकाबले में लिया जाना ठीक नहीं समझते। उनके लेख का सारांश यह है कि सरशार का उर्दू लिटरेचर की गर्दन पर कोई एहसान नही है। अच्छा होता कि ऐसा लेख लिखने के पहले हकीम साहब ने यह भी देख लिया होता कि उनसे ज्यादा योग्य आलोचकों ने जिनमे शेख अब्दुल कादिर बी० ए० भी है, उर्दू जबान में सरशार को क्या जगह दी है। यह ध्यान रखना जरूरी है कि उर्दू शायरों या उनकी शायरी पर हर सुरुचि-सम्पन्न उर्दूदाँ राय दे सकता है मगर उर्दू नाविल पर कुछ लिखने की जवाबदेही वही आदमी ले सकता है जो कम से कम अंग्रेजी भाषा के मशहूर उपन्यासकारों की कृतियों से परिचित हो। इस लिहाज से शेख साहब की आलोचना हकीम साहब के मुकाबले में कही ज्यादा वजन रखती है।

मिस्टर चकबस्त का लेख आलोचनात्मक था। उसमें सरशार के गुणो के साथ-साथ उनके दोषो पर प्रकाश डाला गया था। मगर हकीम साहब ने सरशार की त्रुटियाँ तो सब की सब दिखा दीं, चाहे काल्पनिक ही सही, मगर शरर को बिलकुल निर्दोष समझा हालाकि सब लोग जानते है कि आज तक कोई आदमी ऐसा नही हुआ जिसमें खूबियो के साथ-साथ बुराइयाँ न पाई जायं।

हम हकीम साहब के कहने से इस बात को मान लेते है कि हजरत शरर अरबी के फाजिल, फारसी के बहुत बड़े आलिम और अपने वक्त के बहुत बडे विद्वान हैं। बहुत सी योरोपीय भाषायें भी अच्छी तरह जानते है। डिक्शनरी की मदद से तर्जुमे कर सकते है और उर्दू गद्य मे तो एक नये रग के प्रवर्तक और आधुनिक साहित्य के जन्मदाता हैं। इसके विपरीत बेचारा सरशार फ़ारसी में कच्चा और अरबी में नादान बच्चा है। इतिहास-भूगोल से उसको ज़रा भी लगाव नही, योरप की भाषाओं का क्या ज़िक्र उर्दू में भी काफ़ी योग्यता नही रखता। मगर हमको इस वक्त इन बड़े लोगो की निजी योग्यताओ से बहस

नहीं। हम सिर्फ यह देखना चाहते हैं कि कहानी लिखने के मैदान में किसका कलम उड़ानें भरता है और इस कला में कौन अधिक कुशल है।

स्पष्ट है कि उपन्यास लिखना और बात है, आलिम-फ़ाज़िल होना और बात। बिलकुल उसी तरह जैसे शायरी का हाल है। गोल्डस्मिथ, शेली, बायरन जैसे बड़े बड़े कवि अपने कालेज के भगाये हुए लोगों में से थे। उसी तरह थैकरे और डिकेन्स पांडित्य की दृष्टि से अपने समय के दूसरे विद्वानों से कहीं घटकर थे मगर कहानी के आसमान पर यही दोनों नाम तारे बनकर चमके।

'फ़साना' और 'नाविल' हमको उस अनोखे भेद की याद दिलाते हैं जो हकीम साहब ने उनके बीच रक्खा है। हकीम साहब को मालूम होगा कि 'नाविल' अंग्रेज़ी शब्द है और अगर उसका अनुवाद हो सकता है तो वह 'फ़साना' है। शाब्दिक रूप मे दोनों में कुछ अंतर नहीं है किन्तु आशय की दृष्टि से दोनों का अंतर काफी स्पष्ट है। नाविल उस किस्से को कहते हैं जो उस ज़माने को, जिसका कि वह ज़िक्र कर रहा है, साफ़-साफ़ तस्वीर उतारे और उसके रीति-रिवाज, अदब-क़ायदे, रहन-सहन के ढग वगैरह पर रोशनी डाले और अलौकिक घटनाओं को स्थान न दे या अगर दे तो उनका चित्रण भी इसी खूबी से करे कि जन-साधारण उनको यथार्थ समझने लगें। इसी का नाम है नाविल या नये ढंग का किस्सा। 'फ़सानये अजायब' या 'गुलबकावली' या 'किस्सए मुमताज़' या 'तलिस्मे होशरुबा' या 'बोस्ताने खयाल' सब पुराने ढंग के किस्से हैं जिनमे नये किस्से को खूबियों की गंध तक नही। हाँ, मीर अम्मन देहलवी की लोकप्रिय पुस्तक 'बाग़ोबहार' या 'दास्ताने अलिफ़लला' कुछ हद तक ऊपर लिखी गई खूबियाँ रखती हैं यानी अपने जमाने की तहज़ीब पर एक धुँधली रोशनी डालती हैं।

इस कसौटी को अपने सामने रखकर अगर सरशार के क़िस्सों को देखिए तो ऐसी कौन-सी खूबी है जो इनमें भरपूर नहीं। सच तो यह है कि उनकी सब किताबें अपने जमाने की सच्ची तस्वीरें हैं। अगर आज से सौ बरस बाद कोई 'फसानये आज़ाद' को पढ़े तो उसको आज से पचीस बरस पहले की तहज़ीब और सोचने-विचारने के ढंग और साधारण लोगों की साहित्य-रुचि की झलकियाँ साफ नजर आयेंगी जो इतिहास के अध्ययन से, चाहे वह कैसा ही विस्तृत और गंभीर क्यों न हो, हरगिज नजर नहीं आ सकतीं। सांस्कृतिक जीवन का कोई ऐसा पहलू नहीं जिस पर सरशार की ज़बान ने अपने निराले ढंग से फूल न बरसाये हों। यहाँ तक कि मदारियों के खेल, भाँड़ों की नकलें, बाज़ारू शराब पिलानेवालियों के नखरे और ऐसी ही बेशुमार बातों की छोटी-छोटी बारीकियों में भी अद्भुत चित्रकार का कौशल दिखाया है। कहने का मतलब यह है कि'

'ज़माने की तस्वीर' मे जितनी बातें शामिल हैं उन सब पर सरशार के जादू-भरे कलम ने अपना चमत्कार दिखाया है।

इसके विपरीत हज़रत शरर के जो उपन्यास मशहूर हैं उनमें कोई तो सलीबी लड़ाइयों (क्रूसेड) के ज़माने का है, कोई महमूद गज़नवी के हमले के जमाने का, कोई रोम और रूस की लड़ाई के वक्त का, कोई उस ज़माने का जब मुसलमानों के कदम स्पेन से उखड़ चुके थे। मतलब यह कि सभी पाठक को दस-पाच सदियाँ पीछे ले जाते हैं और चूंकि हज़रत शरर को इन बातों का व्यक्तिगत अनुभव नही हैं इसलिए वह उस समय की घटनाओं का ऐसा चित्र हरगिज़ नही खीच सकते जो असल से मेल खाये। उनकी जानकारियों का सबसे उपजाऊ साधन इतिहास है, और ऐतिहासिक ज्ञान चाहे कितना ही व्यापक क्यों न हो, निजी और प्रत्यक्ष निरीक्षण की बराबरी नही कर सकता। ऐलफ्रेड लायल, जो एक जाना-माना अंग्रेज़ी आलोचक है, लिखता है कि आज तक किसी उपन्यासकार को ऐतिहासिक उपन्यास लिखने में सफलता नही मिली और न उसका मिलना सम्भव है। एक ऐसे युग के विचारों और घटनाओं की फ़ोटो उतारना जिसको बीते हुए सदियाँ गुज़र गईं, सरासर कल्पना की चीज़ है। हम यही अन्दाजा कर सकते हैं कि ऐसी हालतो मे ऐसा हुआ होगा, विश्वास के साथ हरगिज़ नहीं कह सकते कि ऐसा हुआ। जार्ज इलियट ने अपनी सारी उम्र में केवल एक ही ऐतिहासिक उपन्यास लिखा जिसमे इटली की एक ऐतिहासिक घटना बयान की और कई महीने तक उन्होने वहाँ की सामाजिक प्रणाली का अध्ययन किया और जितने प्रामाणिक इतिहास वहाँ के पुस्तकालयों में प्राप्त हो सके उनको ध्यान से पढ़ा तब भी 'रमोला' के बारे में लोगो (अंग्रेजों) का खयाल है कि वह घटनाओं के अनुरूप नही। सर वाल्टर स्काट, जिसका शरर साहब ने अनुकरण किया है, ऐतिहासिक उपन्यासकारों का सरताज समझा जाता है मगर इसके बावजूद कि उसकी कल्पना-शक्ति बहुत प्रखर थी और वर्णन-शैली अत्यंत सशक्त तो भी उसके ऐतिहासिक उपन्यास अंग्रेज़ी आलोचकों की आँखों में नही जंचे। उसके रिचर्ड या सुल्तान सलाहउद्दीन बिल्कुल नक़ली मालूम होते हैं। जब स्काट और जार्ज इलियट जैसे क़लम के जादूगर भी ऐतिहासिक उपन्यास सफलतापूर्वक नही लिख सकते तो हजरत शरर अपूर्ण इतिहासों की सहायता से जिस हद तक ऐसे उपन्यासों के लिखने में सफल हो सकते हैं उसका अनुमान किया जा सकता है। यह एक पक्की बात है कि कल्पना कभी निरीक्षण की बराबरी नही कर सकती। सरशार ने पहले ही से इन कठिनाइयों को समझ लिया और जिस प्रलोभन में पड़कर औरों ने अपनी मेहनत अकारथ की उससे बचा

और इस घटना से यह भी प्रकट होता है कि दुष्ट लोग भोली-भाली औरतों को कैसी-कैसी ऊपरी दिखावे की चीजों से अपने धोखे के जाल में फँसाया करते है। डिकेन्स ने भी सर्जेन्ट बजफ़ज़ के परदे में वकीलों की खूब खबर ली है। मगर सरशार की बेधड़क ठिठोली डिकेन्स के गम्भीर व्यंग से अधिक प्रभावशाली है।

इसी तरह बी अलारक्खी का अपने खूसट शोहर के नाम खत लिखवाना उन कामुक बुड्ढो पर हमला है जो क़ब्र मे पाँव लटकाये बैठे है मगर कमसिन औरतों से शादी करने का चाव दिल मे रखते हैं। इसी तरह नवाब के दरबार, घर-बार का जो खाका खींचा है उससे वसीक़ा खानेवालों का बुद्धूपन और उनके मुसाहिबों की ऐयारी दिखाना इष्ट है। और 'जामे सरशार' तो शुरू से आखीर तक शराबखोरी के बुरे नतीजो से लोगों को सावधान करने के लिए लिखा गया है। कामिनी लाजवन्ती, वफादार, पति-परायणा स्त्री का सुन्दरतम उदाहरण है और हुस्नआरा का क़ौमी जोश, जिसने साधारण ऐन्द्रिक इच्छाओं को दबा लिया है, मिस नाइटिंगेल के लिए भी गौरव का कारण हो सकता है। कहने का अभिप्राय यह कि सरशार के जितने उपन्यास है वे मनुष्य के विचारों, उनके अच्छे और बुरे आचरणों और उनकी सुन्दर और नीच भावनाओं के सच्चे चित्र हैं जिन पर हँसी-ठिठोली का शोख रग बेहद खुशनुमा और लुभावना होता है। ऐसी कोई घटना नही जिसको सरशार ने अपनी किताबों में अनावश्यक स्थान दिया हो। यहाँ पर यह कह देना जरूरी मालूम होता है कि बहुधा किसी घटना का वर्णन करना स्वयं एक निष्कर्ष होता है।

मगर गालिबन हकीम साहब ऐसे निष्कर्षों या नतीजों को नतीजा न समझेंगे। उनके नजदीक उस नाविल के शीशे मे निष्कर्ष, उद्देश्य और विचार भरे होते हैं जिस पर इस तरह का कोई लेबुल लगा होता है—

'इस उपन्यास मे पर्दे के बुरे नतीजे दिखाये गये हैं।'

या

'इस उपन्यास में यह सिद्ध किया गया है कि मर्जी के खिलाफ शादियों का हमेशा बुरा नतीजा होता है।'

या

'इस उपन्यास में सलीबी लडाइयों का जोशो-खरोश और आपस के मजहबी झगड़ों के भयानक नतीजे बड़ी खूबी से दिखाये गये है।' आदि आदि

हजरत शरर और उनके शिष्य स्वर्गीय आशिक हुसेन साहब लखनवी और मौलवी मुहम्मद अली साहब के सभी उपन्यासों के टाइटिल पेज पर इस तरह की कोई न कोई इबारत जरूर मिलती है, गोया उपन्यास न हुए कोई दर्शन की

किताब हुई जिसमें किसी न किसी थ्योरी को स्थापित करना ज़रूरी है। इस तरह नतीजा निकालना चाहे ईसप के क़िस्सों के लिए उचित ठहराया जा सके मगर ऊँचे दर्जे के उपन्यासों के लिए हरगिज़ ठीक नहीं है। मज़ा तो जब है कि नतीजा ऊपर से नीचे तक भरा हो और ऐसे सरल, अनायास ढंग से कि पाठक के दिलों में खुब जाय। किसी क़िस्से के ऊपर उसका उद्देश्य लिखा हुआ देखकर हमको उसके पढ़ने की इच्छा बाकी नही रह जाती। अंग्रेज़ी मे शायद ही कोई उपन्यास ऐसा होगा जिसमे ऐसे निकृष्ट ढंग से निष्कर्ष दिखाये गये हों, बल्कि आस्कर ब्राउनिंग ने तो एलानिया कह दिया है कि, 'सबसे निकृष्ट उपन्यास वे हैं जिनमे कोई विशेष समस्या रक्खी जाय।' और उसने बहुत ठीक कहा है। मनुष्य की भावनाओं और स्थितियों व प्रकृति के दृश्यों और संसार के चमत्कारों की तस्वीर खीचना स्वयं एक निष्कर्ष या नतीजा है। विज्ञान या दर्शन की बारीकियों को हल करने के लिए उपन्यासकार बनाया ही नहीं गया है बल्कि सच तो यह है कि दार्शनिक कभी उपन्यास लिख ही नही सकता।

कथानक के बाद जब उन पात्रों को लीजिए जो उपन्यास के स्टेज पर ऐक्ट करते है तो ज़ाहिर होता है कि ऊँचे दर्जे के उपन्यासों में खास-खास पात्रों की आदतें, तौर-तरीक़े और सोचने-विचारने के ढंग में एक न एक विशेषता पाई जाती है और वही विशेषतायें भिन्न-भिन्न अवसरों पर और भिन्न-भिन्न स्थितियों में प्रकट होती हैं। इसके विपरीत निम्न श्रेणी के उपन्यासों मे या तो पात्र साधारण सीधे-सादे आदमी होते है या उनकी विशेषतायें जाति, स्थान, पेशे या कुछ घिसी-पिटी बातों पर आधारित होती हैं और ऐसे ही उपन्यास उर्दू में अधिकांशतः दिखाई पड़ते हैं।

बंगाली जब आयेगा अपने बोदेपन का सबूत देगा। मारवाड़ी हमेशा कंजूस-मक्खीचूस बनाया जाता है। लाला साहब बेचारे हमेशा अपनी घर की बनायी हुई फ़ारसी बोलते सुनाई देते है। राजपूत हमेशा अक्खड़ और उग्र स्वभाव का होता है। ननद-भौजाई मे आठों पहर दाँता-किलकिल हुआ करती है। मौलवी साहब हमेशा अपनी जुमेराती की फ़िक्र में परीशान रहते हैं।

मगर यह हरगिज न ख़याल करना चाहिए कि बडे उपन्यासकार इस तरह के पात्रों से काम नहीं लिया करते बल्कि सचमुच अच्छे उपन्यासों मे दोनों तरह के पात्र मौजूद होते हैं। मसलन् डिकेन्स के 'पिकविक' को ले लीजिए। उसमें पिकविक, विन्कल, स्नाडग्रास, टपमैन, वार्ड और विलियर में जो विशेषतायें हैं वह सरासर उनकी अपनी हैं। और परकर, बजफ़ज, डॉडसन और स्टिगिन्स आदि में जो भेद किया गया है वह किसी खास पेशे का मजाक़ उड़ाने के लिए।

॥ शरर और सरशार ॥

इसी तरह और भी उदाहरण दिये जा सकते हैं।

चार्ल्स डिकेन्स की तरह हज़रत सरशार ने भी अच्छे और बुरे दोनों प्रकार के पात्रो से सहायता ली। यह बिल्कुल ठीक है कि सब पात्र लखनवी हैं। मगर जब उसने सारे किस्से लखनऊ ही के लिखे तो पात्र क्या लन्दन से लाता? हाँ, यह देखना चाहिए कि उनमें लखनऊ के बेफ़िक्रों की ऐसी विशेषतायें जो उन्हें दूसरो से अलग करती है, किस नफ़ासत से दिखाई है। मिर्ज़ा हुमायूँफ़र भी लखनवी है और आज़ाद भी लखनवी मगर दोनों के स्वभाव में बहुत स्पष्ट अंतर रक्खा गया है। अगर आज़ाद की जगह पर हुमायूँफ़र को रख दीजिए तो किस्सा बिलकुल पलट जायेगा। नवाब साहब भी लखनवी हैं मगर हुमायूँफ़र से बिल्कुल अलग-थलग। मिर्ज़ा असकरी भी लखनवी हैं मगर हुमायूँफ़र या आज़ाद से उनको मिलाइये तो ज़रा भी मेल नहीं खाते। उसी तरह हुस्नआरा, जहानआरा, सिपहआरा, गेतीआरा, बहारुन्निसा सब लखनऊ की शरीफज़ादियाँ हैं मगर सबों के स्वभाव में सूक्ष्म और गंभीर विशेषतायें पाई जाती हैं। बहारुन्निसा को भूल कर भी हुस्नआरा का अक्स नहीं समझ सकते और न सिपहआरा को हुस्नआरा से मिला सकते हैं। इसी को उच्चकोटि की उपन्यास-कला कहते हैं।

निम्न कोटि के पात्र भी बहुत से मौजूद हैं। मौलवी साहब, नये जंटिलमैन, बी अलारक्खी और बी अब्बासी, हकीम साहब और रेवेन्यू एजेन्ट वगैरह-वगैरह हज़ारों लोग हैं जो किसी ख़ास फ़िरके या पेशे का मज़ाक उड़ाने के लिए लाये गये हैं।

मगर इसके साथ ही यह भी ख़याल रहे कि सरशार जब कभी अपने पात्रो को लखनऊ से बाहर, दूर-दराज़ की जगहो पर ले गया है तो वहाँ उनको ग़ैर-लखनवी बनाने का खूब ध्यान रक्खा है। मिस मीडा या मिस रोज़ या पोलैण्ड की शहज़ादी लखनऊ की शरीफ़ज़ादियाँ नहीं कही जा सकतीं। अलीकूपाशा या कुस्तुनतुनिया के होटल का सौदागर लखनऊ के आवारा और बाज़ारी बेफ़िक्रे नहीं हैं।

हकीम साहब ने जो कमज़ोरियाँ सरशार में दिखाई थीं वह सब की सब शरर के पात्रों मे पाई जाती हैं। इसमे कोई शक नहीं कि उन्होंने पात्रों का चुनाव बड़ी खूबी से किया—किसी को रोम से बुलाया, किसी को अरब से, किसी को मिस्र से, किसी को फ़ारस से, मगर न तो उनकी जातीय विशेषताओं को और न उनको अपनी निजी विशेषताओं को सफलतापूर्वक दिखा सके। उनके जितने नायक है वह सब मनचले, स्वाभिमानी, सुन्दर, लंबे-तड़ंगे और सुसंस्कृत हैं। लिहाज़ा अगर हसन की जगह मलिकुल अज़ीज़ चला आये तो वह भी

अपना हिस्सा इसी खूबी से अदा करेगा। इसी तरह उनके स्त्री पात्रों में भी यही दोष मिलता है। अज़रा, वर्बीना, एंजेलिना, फ़्लोरिन्डा सब की सब हर हालत में बिलकुल एक-सी हैं, उनमें अंतर है तो इतना ही कि वह अलग-अलग कौमों की बताई गई हैं। हम एक को दूसरी से अलग नहीं पहचान सकते। अगर अज़रा का हिस्सा एंजेलिना को दे दिया जाय तो भी अस्ल क़िस्से पर कुछ असर न पड़ेगा। यह त्रुटि शरर के सब उपन्यासों में पाई जाती है और जैसा कि हम पहले कह चुके हैं जिस उपन्यास में ऐसे साधारण पात्र पाये जाते हैं उसकी गिनती निम्न कोटि के उपन्यासो में होती है।

सरशार पर यह अभियोग लगाया गया है कि उसके सब पात्र लखनऊ ही के स्त्री-पुरुष हैं। फिर इसमें हर्ज ही क्या है? एक शहर तो क्या एक मुहल्ले और एक परिवार मे अलग-अलग स्वभावों और तौर-तरीकों के लोग हो सकते हैं और एक सचमुच कला का धनी उपन्यासकार उन्हीं की रोजमर्रा जिन्दगी मे जादू का-सा असर पैदा कर सकता है। इसके अलावा एक खास जगह के दृश्यों और संस्कृति का विस्तृत चित्र दिखाना कहीं ज्यादा अच्छा है बजाय इसके कि सारी दुनिया के भौगोलिक नक़्शे दिखाये जायें।

मगर इसका हमेशा खयाल रखना चाहिए कि उपन्यास लिखने की सफलता यही नहीं है कि पात्रो मे केवल विशेषतायें पैदा कर दी जायें। यह तो कुछ ऐसा मुशकिल काम नहीं। सच्ची कारीगरी तो इसमे है कि पात्रो में जान डाल दी जाय, उनकी जबान से जो शब्द निकलें वह खुद ब खुद निकलें, निकाले न जायें, जो काम वह करें खुद करें, उनके हाथ-पांव मरोड कर जबर्दस्ती उनसे कोई काम न कराया जाय। इस कसौटी पर सरशार के पात्रों को कसिये तो वह आमतौर पर खरे निकलेंगे। उनमें वही चलत-फिरत है जो जीते-जागते आदमियों में हुआ करती है। उनमे वही छेड़-छाड़, वही हँसी-मज़ाक, वही गुप-चुप इशारे, वही गुल-ग़पाड़े होते हैं जो हम अपनी बेतकल्लुफी की मजलिसों में किया करते हैं। उनकी एक-एक बात से हमको हमदर्दी हो जाती है। वह हमको हँसाते हैं, रुलाते हैं, चिढ़ाते हैं, सताते हैं, उनके कहकहे की आवाजें हमारे कान में आती है, हमारे दिल में गुदगुदी पैदा होती है और हम खुद ब खुद खिलखिला पड़ते हैं। उनके रोने की दिल हिला देनेवाली आवाज़ें हम सुनते है और हमारी आँखों में बरबस आँसू भर आते हैं। कौन ऐसा गंभीर आदमी है जो मुग्रा ज़ाफ़रान और ख्वाजा बदीया की लगावट-बाज़ियों पर हँस न पड़े। ऐसा कौन संगदिल होगा जो शहज़ादा हुमायूँफर की हत्या के समय प्रभावित न हो जाये या कामिनी को रँडापे का बिलाप करते देखकर रोने न लगे। और पात्रों को जाने दीजिए, सरशार

का खोजी ही एक ऐसी अमर सृष्टि है जो दुनिया की किसी जवान में उसको जबर्दस्त शोहरत का सिक्का बिठाने के लिए काफी है। माशा अल्लाह कैसा हँसता-बोलता आदमी है। सुबह हुई, आप उठे, अफ़ीम घोली, हुक्के का दम लगाया, दाढ़ी फटकारी, और अपने भुजदंड को देखते अकड़ते अपने जोम में मस्त चले जा रहे हैं। ज्योंही रास्ते में किसी चंद्र-वदन सुन्दरी को धीमे-धीमे आते देखा वहीं आपकी बाँछें खिल गईं। जरा और अकड़ गये। उसने जो कहीं आपके रंग-ढंग पर मुस्करा दिया तो आप फूल गये। गुमान हुआ मुझ पर रीझ गई। फौरन मूछों पर ताव दिया और मुस्कराकर तीखी-बाँकी चितवनो से आस-पास के लोगों को देखने लगे, कि पाँव में ठोकर लगी और चारों खाने चित्त। यारों ने क़हक़हा लगाया मगर क्या मजाल कि हजरत के चेहरे पर जरा भी मैल आने पाये। गर्द झाड़ी, उठ खड़े हुए और बस 'ओ गीदी' का नारा लगाया, करौली म्यान से निकल पड़ी और चारों तरफ सुथराव हो गया, सर धड़ों से अलग नजर आने लगे और लाशें फड़कनें लगी। शाबाश खोजी! तुमको खुदा हमेशा जिन्दा सलामत रक्खे। तेरे एहसानों से एक दुनिया का सर झुका हुआ है। तेरी क़रौली ऐसे मीठे घाव लगाती है कि किसी की अधखुली शर्बती आँखो का तीर भी ऐसी प्यारी चुभन नही पैदा कर सकता, और तेरे तेवर बदलने में वह मजा आता है जो किसी सजीले माशूक के रूठने मे भी नही आ सकता। बेशक तू हँसी का पुतला और दिल्लगी की जान है।

हजरत शरर ने भी बहुत से पात्रों की सृष्टि की और उनके उपन्यास पसन्द भी किये गये मगर उनके मानस-पुत्रो मे से किसी ने भी ऐसी ख्याति प्राप्त न की कि उसका नाम हर आदमी की जबान पर हो। सच तो यह है कि उनके स्वभाव मे वह मौलिक सृजन की शक्ति ही नही जो अमर पात्रों को जनम देने के लिए आवश्यक है। इसमें कोई संदेह नही कि जब वह किसी नये पात्र को बुलाते हैं तो पहले उसका स्वागत बड़ी धूम-धाम से करते हैं और पाठको से उसका परिचय कराते हुए फ़रमाते हैं कि यह हजरत ऐसे हैं और वैसे हैं, आप आंतरिक और बाह्य सद्गुणों की खान हैं आदि-आदि। मगर केवल उनकी भूमिकाओं से पात्र मे जान नहीं पड़ती क्योंकि वह बोलते हैं तो शरर की जबान से और उनकी एक-एक हरकत, उनकी एक-एक अदा, उनकी एक-एक बात साबित करती है कि लेखक परदे की आड़ में बैठा हुआ कैरेक्टर का पार्ट अदा कर रहा है। हमारे दिल में खुद ब खुद यह खयाल नही पैदा होता कि हम कुछ आत्मीय मित्रों की संगत का मजा ले रहे हैं। वह रोयें हमको परवाह नहीं, वह हँसें हमको खबर नहीं, हम जानते हैं कि यह काल्पनिक हैं।

शरर ने अरब, अजम, फ़ारस, तुर्किस्तान, रूस, रोम, अलीगढ़, लखनऊ, और खुदा जाने कितनी जगहों के दृश्य दिखाये मगर उनके किसी उपन्यास से वहाँ के जन-साधारण के रहन-सहन और सोचने-विचारने के ढंग का पता नहीं चलता।

सरशार के जादू-भरे कलम ने हमको गली-कूचों, मेलों-ठेलों, और बाग-बगीचों की सैर ऐसी खूबी से करा दी कि शायद हम वहाँ जाकर खुद उनको देखते तो इतना लुत्फ़ न उठा सकते। हमको क़दम-क़दम पर लखनऊ के अमीर-फ़कीर, गँवार, ऐय्यार, भांड, दिल्लगीबाज, मसखरे, तिरछे, बांके, कुलीन-नीच, सभ्य-असभ्य, बूढ़े-जवान गरज़ हर रंग और हर तरह के आदमी नजर आते हैं। वह हँसते-बोलते है, दिल्लगी-मज़ाक करते है, नाचते-गाते हैं मगर इसलिए नहीं कि हम देख रहे हैं बल्कि यह उनका रोजमर्रा का तरीका है, हमारा जी चाहे तो हम भी देख लें।

आस्कर ब्राउनिंग ने लिखा है कि उपन्यासकार में इन चार मानसिक गुणों का होना उपन्यास के लिए नितांत आवश्यक है—

१—सशक्त वर्णन-शैली २—हँसी-मज़ाक़ कर सकना ३—दर्शन ४—ड्रामा या किसी घटना में अनायास प्रभाव उत्पन्न कर देना। अब सरशार को देखिए तो उसमें दर्शन को छोड़कर और तीनों गुण खूब मिलते हैं और हज़रत शरर अगर इन गुणों में से कोई रखते हैं तो वह एक हद तक दर्शन है मगर वह दर्शन जो धर्म और जाति से संबंध रखता है और दिलों मे फूट डाल देना जिसका खास, सबसे खास काम है।

यहाँ पर एक ऐसी बात की चर्चा करना भी आवश्यक मालूम होता है जो कुछ लोगो को शायद बुरी लगे। सरशार ने जितनी किताबें लिखीं उनमें एक भी ऐसी नही कि जिसको मुसलमान या ईसाई एक-सी दिलचस्पी से न पढ़े। वे सब धार्मिक विद्वेष से मुक्त हैं। इसके विपरीत हज़रत शरर के हीरो तो हर हालत में मुसलमान होते हैं मगर हीरोइन कभी हिन्दू होती है और कभी ईसाई। हज़रत शरर तो फिलासफर है, कम से कम उन्हें इतनी समझ होनी चाहिए कि वह उस भड़कावे का अनुमान कर लें जो हिन्दू और ईसाइयों के दिल में उनकी इस गलती से पैदा होता है। क्या मुसलमानों में इतनी सुन्दर, सुशील स्त्रियाँ नहीं है जिनको हीरोइन बनने का गौरव मिल सके? शायद कोई साहब फ़रमायेंगे कि कुछ हिन्दू लोगों ने भी हिन्दू हीरो से मुसलमान हीरोइन का जोड़ा मिलाया है। मगर क्या जरूरत है कि हज़रत शरर भी वही गलती करें। हमने खुद देखा है कि अक्सर हिन्दू लोग मन्सूर और मोहना को घृणा की दृष्टि से देखते है, उसी

तरह जैसे कि कुछ मुसलमान दुर्गेशनन्दिनी को देखते हैं। प्रेम का यह ढंग बहुत बुरा है। कमजोर दिमागवाले चाहे इन विद्वेषों का शिकार हो जायें मगर एक जिम्मेदार आदमी की तरफ़ से उनका प्रकाश में आना अनुचित है। हिन्दुस्तान मे यह आम रिवाज है कि लड़की के जातिवालों या रिश्तेदारों या भाई-बन्दो का महत्व लड़केवालो के रिश्तेदारो से कम हुआ करता है और साधारण लोगों मे भोंडी रुचि के लोग दूसरों को अपना साला कह कर खुश होते है कि जैसे पति का तरफ़दार होना पत्नी के तरफ़दारों पर हावी होना है। बहुत बार यह भी देखने मे आता है कि बेहूदा बकनेवाले शोहदे अपनी मस्तरंगी मुहब्बत का बड़े घमंड से जिक्र किया करते है। हजरत शरर इन्हीं ओछी से ओछी भावनाओ का शिकार हो गये। बहुत कम ऐसे हिन्दू होंगे जो उनके प्रशंसक हों हालांकि सरशार के सामने इज्जत से सर झुकानेवालो में अक्सर मुसलमान साहबान है। यहाँ उन लोगो का ज़िक्र नही है जो कौमी एकता की आड़ मे फूट का बीज बोते है।

उपन्यासकार के लिए रसीली, रंगीन, चुलबुली, शौकीन तबीयत का होना जरूरी है। इसके बजाय हजरत शरर को जिहादियों का जोश और मुल्लाओ का दिल मिला है जो इस काम के लिए ठीक नहीं। किसी आदमी की काबलियत की एक दलील यह भी है कि वह समझ जाये कि मै कौन-सा काम सबसे अच्छी तरह कर सकता हूँ। सरशार ने अपने दिल को समझा, हजरत शरर न समझ सके।

मगर सबसे बड़ा जुल्म जो हकीम बरहम ने सरशार पर किया है वह उसकी लेखन-शैली पर है। हम यह कहने पर मजबूर है कि इस मौके पर बडी बेरहमी से इंसाफ़ का गला घोंटा गया है। अब आज उस चोटी के कलाकार के उन अधिकारों को झुठलाना जो उर्दू ज़बान पर कयामत तक रहेंगे सरासर धार्मिक विद्वेष और संकीर्ण-हृदयता का प्रमाण है। कोई कितनी ही लंबी-चौड़ी बघारे मगर इस सच्चाई को नही झुठला सकता कि सरशार ही वह पहला जोरदार लिखनेवाला है जिसने नये अंग्रेजी ढंग की कहानियाँ उर्दू में लिखनी शुरू की। उसके साथ ही अनुकरण के जोश में आकर यहाँ तक नहीं बढ़ा कि उर्दू ज़बान और उसके लिखने के ढंग को बिगाड़ दे। सिर्फ तर्ज अंग्रेजी से लिया या यों कहो कि खाका अंग्रेजी लिया उस पर हिन्दुस्तानी रंग चढ़ाये। अंग्रेजी उपन्यास की कोई खूबी ऐसी नहीं जो सरशार की कृतियों में न पाई जाय।

बरहम साहब कहते है कि 'फसानये आज़ाद' और 'फसानये अजायब' की शैली में कोई अंतर नहीं है। हमको यकीन नही आता कि हकीम साहब के क़लम से यह रिमार्क निकला। 'जामे सरशार' से जो दो उद्धरण लिये गये हैं वह खुद

इस दावे का खंडन करते हैं। इसमे कोई शक नहीं कि कहीं-कहीं पंडितजी ने 'सुरूर' के रंग में लिखा है मगर यह उनका खास रंग नहीं है बल्कि जहाँ कही तिरछे-बाँके छैलों की बातचीत लिखी है वहाँ जबान की रंगीनी और क़ाफ़ियेबंदी पर ज्यादा जोर दिया है और इसकी उनको दाद देनी चाहिए कि बेफ़िकरों से बहुत गंभीर नपी-तुली बातचीत नही कराई जो उनके मुँह से बिलकुल पराई मालूम होती। यह भी खयाल रहे कि यद्यपि उपन्यासकार का खास रंग एक ही होता है मगर चूँकि वह हर ढंग और फ़ैशन के आदमियो को बनाता-बिगाड़ता रहता है इसलिए उसकी जबान भी हर मौके पर रंग बदलती रहती है। 'फसानये आजाद' में जब कभी हकीम साहब तशरीफ लाते हैं तो पश्तो में बातें किया करते हैं। अब अगर कोई उनकी जबान को सरशार की जबान बतलाये तो इसका जवाब चुप रह जाने के सिवा और क्या हो सकता है। हकीम साहब ने मौलिकता के अर्थ समझने में भूल की। मौलिकता इसका नाम नही कि अंग्रेजी की अजनबी-सी तरकीबों, बंदिशो, उपमाओं और रूपकों के बेजोड़ रूखे अनगढ़ अनुवाद कर दिये जायँ जैसा कि हजरत शरर ने किया है। इसी का नाम तो नक्काली है। उस पर तुर्रा यह कि बेचारे सरशार पर नक़्क़ाली का इल्जाम इसलिए लगाया है कि वह अपने पात्रों से मौके के हिसाब से बातें करवाता है। हकीम साहब को जानना चाहिए कि उर्दू कहानी कला मे इसी को मौलिकता कहते हैं।

हजरत शरर जब किसी उपन्यास का आरंभ करते है तो पहले सीनरी का बहुत लंबा-चौड़ा बयान करते हैं और इसके बाद हर अध्याय के आरंभ मे ऐसे ही बयान होते है जो कहानी के प्रवाह में बाधा उपस्थित करते हैं और साधारण पढ़नेवाला घबराकर उनको छोड़ देता है। हकीम बरहम साहब ने भी हाल ही मे एक उपन्यास लिखा। उसमे शरर का अनुकरण इस सीमा तक किया कि नब्बे पन्नों के उपन्यास में पचीस पन्नों से ज्यादा सिर्फ सीनरियों पर ही खर्च कर दिये थे। यही कला का दोष है। यहाँ पर इतना कहना और जरूरी मालूम होता है कि पश्चिमी हीरोइन की तस्वीर जो हकीम साहब ने हमारे सामने बड़ी शान से पेश की है काट-छाँट कर थोड़े से शब्दों मे बयान की जा सकती है। यह बात मान ली गई है कि लेखक किसी पात्र के नाक-नक्शे, चेहरे-मोहरे का बयान कैसी ही खूबी से क्यो न करे मगर पढ़नेवाले के सामने जैसी तस्वीर खीचना चाहता है हरगिज नही खीच सकता। जितने नये अंग्रेज़ी उपन्यास हैं उनमें शरीर-संबंधी बातों का बयान थोड़े से शब्दो में समाप्त हो जाता है और मानसिक गुणों को पहले से प्रकट करना तो अपने आप को उपन्यास-रचना के सिद्धान्तों से नितांत अपरिचित सिद्ध करना है।

॥ शरर और सरशार ॥

यह भी ग़ौर करने की वात है कि हज़रत सरशार के रंग में लिखने को बहुतों ने कोशिश की मगर किसी को सफलता न मिली। जैसे ग्राज़ाद का ग्रनुकरण कठिन है उसी तरह सरशार के भी रंग में लिखना मुशकिल है, हालांकि कुछ उपन्यासकारों ने शरर से पाला मार लिया है। यही वजह है कि उनके उपन्यासों की जितनी क़द्र मुल्क ने की उसकी ग्राधी भी शरर के किसी उपन्यास की नहीं हुई।

—उर्दुए मुग्रल्ला सन् १९०६

कुछ नया किताबें

आसारे अकबरी

हाल की कुछ नयी किताबों मे मौलवी सईद अहमद साहब मारहरवी की ताजा किताब 'आसारे अकबरी' यानी 'फ़तेहपुर सीकरी का इतिहास' बड़ी आसानी से दूसरी सब किताबों से बाजी मार ले जाती है। यह ऐसी अनमोल किताब है जैसी बहुत अर्से से उर्दू ज़बान में देखने में नही आई, जिसे एक दो तीन बार पढ़िये मगर फिर भी पढने की हवस बाक़ी रह जाती है। गहरी छान-बीन की दृष्टि से देखिए तो, घटनाओं की मनोरंजकता और महत्व की दृष्टि से देखिए तो और भाषा की खूबी की नज़र से देखिए तो यह किताब उर्दू की अच्छी से अच्छी किताबों के बराबर रखे जाने के योग्य है।

लेखक ने इस पुस्तक को नौ अध्यायों में बांटा है। पहले अध्याय में फ़तेहपुर सीकरी की आबादी, उत्थान और पतन का संक्षिप्त इतिहास लिखा गया है। मुगलिया खानदान के साथ इसकी भी बुनियाद पड़ी, उसके उत्थान के साथ उसका भी उत्थान हुआ और उसके पतन के साथ उसकी भी तबाही आ गई। बुनियाद की वजह शायद पाठकों को मालूम होगी। जहाँगीर ने अपने तुज़ुक में इसका ज़िक्र यों किया है—

'जिन दिनों वालिद बुज़ुर्गवार को बेटे की बड़ी आरज़ू थी एक पहाड़ में सीकरी इलाका आगरे के पास शेख सलीम चिश्ती नाम के एक पहुँचे हुए फ़कीर रहते थे जो उम्र की बहुत मंजिलें तय किये हुए थे। उधर के लोगों को उनसे बड़ी भक्ति थी। मेरे वालिद जो फ़कीरों की बड़ी इज़्ज़त करते थे, उनके पास गये। एक दिन ऐसे वक़्त जब कि फ़कीर साहब अपने ध्यान में मग्न बैठे थे उनसे पूछा—हज़रत, मेरे बेटे होंगे ? फ़रमाया कि खुदा तुम्हें तीन बेटे देगा। वालिद ने कहा, मैंने मन्नत मानी कि पहले बेटे को आपकी देख-रेख में रक्खूँगा। शेख की ज़बान से निकला कि मुबारक हो। मै भी उसे अपना नाम दूँगा।'

थोडे ही दिनों में शेख की भविष्यवाणी सच हुई। शाहज़ादा जहाँगीर सीकरी ही मे पैदा हुआ। बादशाह खुद वहाँ गये। शेख के वास्ते आलीशान खानकाह (आश्रम) बनवानी शुरू की और अपने रहने के वास्ते भी रंग-महल

बनाने का हुक्म दिया। फिर क्या था, जिसे जी चाहे वहीं गुहागिन। शहर की रौनक रोज-ब-रोज बढ़ने लगी। दरबारियों ने अपने-अपने महल बनवाने शुरू किये। अबुल फज़ल और फ़ैज़ी, बीरबल, मानसिंह, हकीम हम्माम और दूसरे रईसों ने मकान बनवाये। हर साल यहाँ नौरोज का जश्न होने लगा जिसका ज़िक्र लिखनेवाले ने बड़ी खूबसूरती से किया है। दीवाने-आम और खास के चारों तरफ़ एक सौ बीस महल बन गये। इस कस्बे की रौनक और आबादी थोड़े ही दिनों में यहाँ तक बढ़ी कि पूरब से पच्छिम सात मील तक फैल गई और आगरे से निकलते ही उसके मुहल्ले नज़र आने लगे। दोनों शहरों के बीच का फ़ासला बिलकुल आबाद हो गया। यह रौनक और धूम-धाम शाहजहाँ के वक्त तक कमोबेश कायम रही। मगर जब मुगलिया खानदान का सितारा डूबने लगा, सल्तनत में कमजोरी पैदा हुई और मुगल बादशाहों को तख्त के लाले पड़ गये तो फतेहपुर की खबर कौन लेता। चूरामन और सूरजमल जाट की लूट-खसोट शुरू हुई। मुहल्ले के मुहल्ले, कूचे के कूचे वीरान हो गये। अक्सर इमारतें जमीन के नीचे दबे हुए खजाने की तलाश में खोद डाली गईं। कीमती पत्थर, देग, खम्भेर और भरतपुर पहुँचा दिये गये। आखिर जो कुछ रही-सही आबादी थी उसका बड़ा हिस्सा सन् सत्तावन के भयानक गदर में तबाह हो गया। उसकी मौजूदा हालत का जो नक्शा लेखक ने खींचा है वह बहुत दुख देनेवाला है—'अब यह हालत है कि आगरे दरवाजे में घुसते ही खँडहर नजर आना शुरू होते हैं। किसी महल की दीवारों के चिन्ह बाकी हैं, किसी का सिर्फ़ दरवाजा ही खड़ा रह गया है, किसी जगह पत्थर और चूने का ढेर लगा हुआ है, किसी मकान का हम्माम बाकी रह गया है। ग़रज़ कि जिसका जो कुछ हिस्सा बाकी रह गया है, वह एक दुख का घर है जो कि राह चलते मुसाफ़िरों और प्राचीन स्मारकों के प्रेमियों को आठ-आठ आँसू रुलाता है और सराय फ़ानी का नक़्शा आँखों के सामने पेश करता है। शहर की दीवार के अंदर और बाहर जिधर देखो खंडहर ही खंडहर नजर आते हैं। बड़ी-बड़ी सुहानी बारादरियों और आलीशान महलों में आदमी की जगह चील-कौवों का बसेरा और उल्लू का पहरा है।'

बाकी आठ अध्यायों में दक्खिन, उत्तर, पूरब, पश्चिम की लगी हुई इमारतों और पहाड़ों के ऊपर बनी हुई और आस पास की इमारतों का ज़िक्र किया गया है। इसके पढ़ने से पता चलता है कि जिस वक्त यह शहर अपनी पूरी रौनक पर होगा उस वक्त सचमुच बहिश्त का नमूना होगा। खुशनुमा बागों, हरे-भरे मैदानों, और खूबसूरत बावलियां, तालाबों और नहरों के बार-बार ज़िक्र

आते हैं जिससे इस जमाने की सुथरी रुचि और सफ़ाई का सबूत मिलता है। हर इमारत की लम्बाई-चौड़ाई, ऊँचाई, नक्काशी, गुलकारी और दूसरे गुणों का बड़े विस्तार के साथ उल्लेख किया गया है बल्कि कहीं कहीं उनके निर्माण की तिथि, कारीगरों के नाम और निर्माण का खर्च भी लिख दिया है गो यह खूबी सब जगह नहीं पाई जाती।

उर्दू लिटरेचर में 'आसारुस्सनादीद' के बाद कोई ऐसी किताब नहीं छपी जिसमें इमारतों के अलग-अलग हिस्सों की चर्चा इस विस्तार और खूबी से की गयी हो जैसी कि आलोच्य पुस्तक में। इमारतों के बारे में हमारा अज्ञान और ध्यान न देना यहाँ तक बढ़ गया है कि बहुत कम लोग ऐसे होंगे जो बेधड़क इमारत के अलग-अलग हिस्सों के नाम भी बतला सकें। लेखक ने यह बातें बेमज़ा और रूखी-फीकी ज़बान में नहीं लिखी हैं बल्कि अक्सर ज़बान ऐसी अच्छी है कि मज़ा ले-ले कर पढ़ने के काबिल है। दरगाह शरीफ़ के बुलंद दरवाज़ों को इस तरह बयान किया गया है—

'बुलंद दरवाजे की बुलंदी एक सौ उन्तीस फ़ीट है। पढ़नेवाले खुद अंदाज़ा कर सकते हैं कि पहाड़ की ऊँची चोटी पर इतना बुलंद दरवाज़ा कैसा शानदार, अजीबो-गरीब और खूबसूरत नज़र आता होगा। बाहर से देखिए तो इसके बड़े दरवाज़े और इर्द-गिर्द दरों की बनावट, उनके बीच की नफ़ीस संगमरमरी पच्चीकारी, खूबसूरत बेलें, तरह-तरह की सजावट, खुशनुमा मीनारें, गुलदस्ते, कतबे के बड़े-बड़े हरूफ़, बीच की हवादार शहनशी, ऊपर की प्यारी प्यारी बुर्जियाँ हैरत में डाल देती हैं। अंदर की तरफ़ से देखिए तो हर मंजिल के बुर्ज और बुर्जियाँ, कंगूरे, मीनारें, गुलदस्ते एक दूसरे से मिले हुए खूबसूरती का अजीबो-ग़रीब नज़्ज़ारा पैदा करके इन्सान को हैरत में डाल देते हैं। ऊपर का हवादार सुहाना मुकाम जहाँ से न सिर्फ़ कुल शहर बल्कि कोसों तक का दृश्य अच्छी तरह दिखाई देता है ऐसा सुन्दर और मोहक है कि उसकी असली हालत का शब्दों में फ़ोटो उतारना असंभव है।'

इसी तरह ख्वाबग़ाह खास के बालाखाने की जो कैफ़ियत दिखाई है, बेमिसाल है—

'महल खास की दक्खिनी इमारत की छत पर वह छोटा सा खूबसूरत और तिलस्माती कमरा है जो ख्वाबगाह के नाम से जाना जाता है। चूंकि यह खास बादशाह के सोने के वास्ते बनाया गया था इस वजह से अच्छे-अच्छे कारीगरों और चित्रकारों ने इसको सुन्दर बनाने में कोई ऐसी तदबीर नहीं उठा रक्खी थी जो इंसान के काबू के बाहर न हो। रंगसाज़ी के आला दर्जे के कारीगरों ने

अंदर-बाहर, नीचे-ऊपर तमाम दरो-दीवार को रंग-बिरंगे बेल-बूटों और तरह-तरह की गुलकारी से अलंकृत करके स्वर्ग का नमूना बना दिया था। चित्रकारों ने अपनी चित्रकला का कमाल दिखा कर तरह-तरह की तस्वीरों और भांति-भांति के दृश्यों से तमाम कमरे को एक अनूठी चित्रशाला बनाकर तिलस्म की दुनिया को मात किया था। मोती जैसे सुन्दर सजीले अक्षर लिखने वाले कतबा-नवीसों ने तरह-तरह की गुलकारियों के बीच में ऐसी नज़ाकत और सफ़ाई से कतबों को लिखा था कि उनके देखने से आँखों में रौशनी पैदा होती थी। ग़रज़ कि इस जगह पर हर क़िस्म के बड़े-बड़े कारीगरों ने अपनी कारीगरी को कमाल के दर्जे पर पहुँचा दिया था मगर अफ़सोस और सख्त अफ़सोस है कि यह बेजोड़ कमरा इस तमाम सज-धज और रंग-रूप के बदले अब एक खँडहर है जिस पर उदासी बरस रही है। इसके तमाम सुनहरे बेल-बूटे और गुलकारियाँ न मालूम किन ज़ालिम हाथों से खत्म हो गईं, यहाँ तक कि कोई दौलत का भूखा दरवाज़ों के किवाड़ तक उतार ले गया। अफ़सोस!'

बात ज़रा नमक-मिर्च लगा कर कही गई है मगर कैसे चुस्त और सुथरे ढंग से! अफ़सोस कि इन महान चित्रकारों के बारे में अब कुछ भी पता नहीं चलता। उनकी कारीगरी के नमूने भी जो उनके ताज़ा यादगार होते धीरे-धीरे वक्त के हाथों बरबाद हुए जाते हैं। हाँ, पुराने विवरणों में उनके नाम अलबत्ता मिलते हैं जिनमें खास-खास ये हैं—मीर सैयद अली तबरेज़ी, ख्वाजा अब्दुस्समद शीरीं-रक़म, विश्वनाथ कुम्हार, बसावन, केशव, लाल, मुकुन्द, मिस्कीन, फर्रुख, माधो, जगन, महेश, खेम करन, तारा, सांवला, हरबंस। इन सब का सरदार उस्ताद बहज़ाद था जो पहले इस्माइल शाह सफ़वी ईरान के बादशाह का चित्रकार था फिर अकबरी दरबार में हाज़िर होकर ऊँचे मनसब पर पहुँचा। मरियम के ज़नाना बाग का जो ज़िक्र किया गया है वह किताब के बेहतरीन हिस्सों में है—

'अकबरी ज़माने में इस बाग़ के अन्दर जन्नत के बाग का जलवा नज़र आता था। पत्थर की पक्की रविशों में रंग-बिरंगे फूल इतर छिड़का करते थे। क्यारियों में हर तरह के दुर्लभ, अच्छे और स्वादिष्ट मेवे शाखों में झूमा करते थे। हमेशा साफ़-शफ़्फ़ाफ़ पानी बड़े अदब के साथ धीरे-धीरे खूबसूरत नालियों में चलता रहता था। जिस वक्त मौसमे बहार में लाजवंती नारियाँ अपने-अपने ऐश महल से निकलकर बाग की रविशों पर हौले-हौले सैर करती फिरती होंगी उस वक्त क़िस्म-क़िस्म के फूलों की महक, सुम्बुल का बाल बिखेरना, रैहान का प्यारी-प्यारी आँखों से तकना, इत्र में बसी हुई हवा का चलना, मछली-ताल में

रंग-विरंगी मछलियों का तैरना, सुरीले पंछियों का चहचहाना, ज़मुर्रद जैसे हरे फर्श का लहलहाना कैसा प्यारा, सुहाना दृश्य प्रस्तुत करता होगा।'

ऐसे मोती इस किताब में बड़ी उदारता से लुटाये गये हैं। मगर राजा बीरबल के महल पर लेखक ने फूल बरसाये हैं। कहते हैं —

'जिस तरह अकबर के नौरतन में निकटता की दृष्टि से कोई आलीजाह अमीर और शानो-शौकतवाला सरदार बीरबल के रुतबे का नहीं पहुँचता उसी तरह शाही महल की निकटता, कारीगरी और खूबसूरती में किसी अमीर का महल इस बेमिसाल मकान का मुकाबला नहीं कर सकता। फ़रगुसन साहब अपनी 'इमारातें मशरिक़' में कहते हैं कि बीरबल और तुर्की सुल्ताना का मकान सबसे ज्यादा बेशक़ीमत और सबसे खूबसूरत और अकबर की दूसरी तमाम इमारतों में सबसे ज्यादा कारीगरीवाली इमारतें हैं। ये इमारतें छोटी जरूर हैं लेकिन कहीं ऐसे खूबसूरत बेल-बूटे और ऐसी तस्वीरें देखना नामुमकिन है। यहाँ कोई जगह ऐसी नहीं कि जहाँ कुछ न कुछ सजावट मौजूद न हो या भद्दे तौर से की गई हो।'

एक ख़ास गुण इस किताब में यह है कि अमीरों के मकानों के साथ साथ उनके जीवन का हाल बताने का भी ढंग रक्खा गया है। शेख़ फ़ैजी, अबुल फ़ज़ल, बीरबल, टोडरमल, हकीम शीराज़ी और दूसरे बुज़ुर्गों के अलग अलग हालात लिखे गये हैं जिनको पढ़ कर मालूम होता है कि 'दरबारे अकबरी' की नकल की है। इन चर्चों में कहीं-कहीं मज़ेदार छेड़-छाड़ की चाशनी भी दी गई है। जोधा बाई के बारे में लिखते हुए कहते हैं—

'एक रात जब कि चाँदनी छिटकी हुई थी, नूरजहाँ सफ़ेद कपड़े पहने हुए जहाँगीर के पास बैठी थी। इत्रे जहाँगीरी की खुशबूदार लपटों से तमाम दरो-दीवार और कपड़ों पर छिड़काव हुआ था। बादशाह और बेगम दोनों का दिमाग़ इत्र से बसा हुआ था। बादशाह ने इसी हालत में जोधा बाई को भी याद फ़रमाया। लौंडियाँ दौड़ीं और थोड़ी ही देर में यह भी सुर्ख़ कपड़े पहनकर आ मौजूद हुई और बादशाह के बराबर बैठ गई। बादशाह ने उनकी तरफ़ ध्यान दिया। नूरजहाँ बेगम को ईर्ष्या हुई। बादशाह की तरफ़ देखकर बोलीं कि आख़िर को जोधा बाई ज़मीन्दार ही की बेटी है। ऐसे वक्त में जब कि फ़व्वारों से रोशनी का छिड़काव हो रहा है और चमेली व सेवती का फ़र्श बिछा हुआ है और चाँदनी छिटकी हुई है, सुर्ख़ लिबास क्या मतलब रखता है! जोधाबाई ने फ़ौरन जवाब दिया कि मेरा सुहाग क़ायम है इस वजह से मैंने सुर्ख़ लिबास

पहना है, तुम्हारा सुहाग उठ चुका है इस शोक में तुमने सफ़ेद कपड़े पहने हैं और यह दोहा पढ़ा—

'जारूँ नार तास का हिया ।
एक छोड़ जिन दो जा किया ।'

गरज कि किताब मे इस तरह के गुण भरे हुए हैं। हम इससे ज़्यादा उद्धरण देना उचित नही समझते। शौक़ीन लोग खुद मँगायें, लेखक की मेहनत की दाद दें और दूसरी किताबो के लिए हौसला बढ़ायें। किसी साहित्य-प्रेमी का पुस्तकालय इस किताब से ख़ाली न रहना चाहिए। अफ़सोस है कि उर्दूदाँ पब्लिक की नाक़दरियों ने लेखक को यह हिम्मत नहीं दिलाई कि वह इस किताब को इमारतों की फोटो से सुशोभित कर सकते जिससे इसका महत्व और भी दुगना हो जाता। इस सुन्दर लिखाई और छपाई के साथ कलम से बनाई हुई तस्वीरों का जोड़ अच्छा नही मालूम होता।

सुघड़ बेटी

जब से स्त्री शिक्षा की समस्या उठ खड़ी हुई है और गवर्नमेंट ने उसके प्रति व्यावहारिक सहानुभूति दिखाना शुरू किया है, लड़कियों की शिक्षा की ज़रूरतो को पूरा करने के लिए खूब कोशिशें की जा रही हैं। आख़िरी बार नई किताबो पर रिव्यू करते हुए 'तालीमे निस्वाँ' का ज़िक्र किया गया था जो पाँच जिल्दों में ख़त्म हुई थी। वह किताब कुँवारी और ब्याही सबके लिए यकसाँ फ़ायदेमंद थी। मगर 'सुघड़ बेटी' जो मुहम्मदी बेगम साहिबा की दिलचस्प किताब है सिर्फ़ कमसिन लड़कियों के लिए लिखी गई है। इसमे लेखिका ने सरल भाषा में लड़कियों को तरह-तरह की बातो पर सीख दी है। किफ़ायतशारी का ज़िक्र करते हुए 'कौड़ियों से घर चलाया' नाम की जो कहानी है वह कम-उम्र लड़कियों के लिए बहुत दिलचस्प साबित होगी। इसके अलावा कपड़े-लत्ते, उनके इस्तेमाल, चिट्ठी-पत्रों, खेल-कूद, पढ़ने-लिखने के बारे में नसीहत-भरी बातें लिखी हैं। यह ऐसी किताब है जो किसी लड़की के हाथ में शौक़ से [illegible] है और चूँकि

आचरण के संबंध में नसीहत भरी बातें लिखी है, जो सब लड़कियों के लिए समान रूप से लाभकारी हैं। मगर हमारी समझ में नही आता कि झूठ-सच, पर्दा, खाने-पीने का इंतजाम वगैरह विषयों के साथ किताब के शुरू के हिस्से में 'गवर्नमेण्ट के अधिकार' या 'हमारे अधिकार' जैसे प्रश्नों पर उपदेश देने की जरूरत क्यों आ पड़ी। ये प्रश्न न तो नीति और आचार से संबंध रखते है न साहित्य से। ऐसे विभिन्न विषयों को एक मे मिला देना भानमती के पिटारे मे जायज़ हो तो हो मगर ऐसी तालीमी किताब में हरगिज जायज़ नही। ऐसी बातें भूगोल का अंग है और उनके लिखने की जगह आखिरी अध्याय है जहाँ संसार के महाद्वीपों पर लेखक ने बड़ी तेज़ी से यात्रा की है। मगर इसमें भी बजाय इसके कि सरकार और प्रजा, उनके आपसी संबंध, उनकी आपसी आवश्यकताओं आदि प्रश्नों पर सामान्य रूप से विचार किया जाय, लेखक ने अंग्रेज़ी सरकार के उन एहसानों की बडाई गाई है जिससे हिन्दुस्तानियो का सिर झुका हुआ है। इसी हिस्से में आंकड़े और हिसाब, गृहस्थी की बातें, खाना-पकाने की विधि और दूसरी बहुत सी बातें दर्ज है। दूसरे हिस्से में लेखक ने औरतों को वे बातें बताई है जिनकी उनको स्वास्थ्य रक्षा के लिए सख्त जरूरत है। इनमें से अधिकांश लाभकारी बातें है मगर असंस्कृत शब्द इतने ज्यादा इस्तेमाल किये गये है कि कोई पंक्ति उनसे खाली नहीं। बेहतर होता अगर किताब के कई हिस्से होते या कम से कम जो बातें खासतौर पर औरतो के जानने की होती वह अलग किताब मे बतलाई जाती। इस दृष्टि से यह किताब हरगिज इस क़ाबिल नही कि किसी कुंवारी लड़की के हाथ में रखी जाय।

नौजवानों का रहनुमा

नवयुवतियों को नेक सलाह और मशविरों की जितनी जरूरत है शायद नवयुवकों के लिए उससे ज्यादा रहनुमाई को ज़रूरत होती है क्योंकि उनके चरित्र-भ्रष्ट होने के मौके कहीं ज्यादा होते है। इस ज़रूरत को पूरा करने के लिए पंजाब रिलीजस बुक सोसाइटी ने इस नाम का एक अच्छा अनुवाद प्रकाशित किया है। मूल पुस्तक अमरीका के एक मशहूर डाक्टर की लिखी हुई है। मिस्टर हर सरन ने उसका अनुवाद किया है और सच तो यह है कि अनुवाद में मूल का मज़ा पैदा करने की कोशिश की है। अपरिचित मुहावरे और वाक्य बहुत कम है और पुस्तक आदि से अंत तक मनोरंजक है। कौन नहीं जानता कि हमारी कौम के हज़ारों नौजवान अपनी नातजुर्बेकारियों का दंड भोग रहे है और कितने ही भोग-विलास के गड्ढे में ऐसे औंधे गिरे है कि इस जिन्दगी मे उभरना

मुहाल है। देश की जनता की पस्तहिम्मती, नाटा कद और शारीरिक दुर्बलता उसी संयमहीनता का परिणाम है जिसके शिकार लोग अपनी नातजुर्बेकारी के कारण होते हैं। लेखक ने बड़े स्पष्ट और विशद ढंग से उन रोगों, उनके लक्षणों, उनके घातक परिणामों का उल्लेख किया है जिनका नाम लेना भी अशोभन है। उनसे बचने के लिए लेखक ने व्यावहारिक बातें बतलायी हैं। अगर युवक समाज जिसके लिए यह किताब लिखी गई है इसको पढ़ेगा और इसकी हिदायतों पर अमल करेगा तो बेशक बहुत सी बुराइयों से बचा रहेगा। 'बीवी का चुनाव', 'विवाह और उसका उद्देश्य' आदि प्रश्नों पर लेखक ने बहुत अनुभव की बातें सिखाई हैं। किताब के आखिरी हिस्से में साधारण सभ्यता और सुरुचि के बारे में भी सीखें दी गई हैं मगर हम लेखक की इस बात से सहमत नहीं हैं कि उपन्यासों का पढ़ना सरासर हानिकर है। उपन्यासों में अच्छे भी होते हैं और बुरे भी। अच्छे उपन्यास पढ़ने की मनाही करना गोया आदमी को जिन्दगी की एक बड़ी नेमत से वंचित करना है। हाँ, बुरे और चरित्र को भ्रष्ट करने वाले उपन्यास हरगिज़ न पढ़ना चाहिए और उपन्यास ही क्यों कवितायें, इतिहास, यात्रा-विवरण, अखबार सभी चरित्र को भ्रष्ट करने वाले हो सकते हैं अगर उनमें गंदी भावनाओं को उभारनेवाली बातें लिखी जायें। ऐसी किताबों से जवानों को जरूर बचना चाहिए। कुछ रईस लोग अपने सोने के कमरों में नंगी तस्वीरें लटकाया करते हैं। कोई किताब शायद इससे ज्यादा रुचि को गंदा करनेवाली और तबियत को बिगाड़नेवाली न होगी।

बच्चों को आचार की शिक्षा

ऐसे समय जबकि शिक्षा का प्रश्न जीवन का एक सबसे महत्वपूर्ण प्रश्न हो रहा है इस पुस्तक का प्रकाशित होना बहुत शुभ है। विशेषतः इस कारण से कि इसके लेखक लाला गोकुल चंद एम० ए० जैसे अनुभवी विचारशील व्यक्ति हैं। बच्चों की शिक्षा हर सभ्य देश में मुफ्त दी जाती है और उसका प्रबंध और उसकी व्यवस्था देश के सबसे अच्छे दिमागों की कोशिशों का नतीजा हुआ करती है। हिन्दुस्तान में ऊँची शिक्षा का प्रश्न तो छिड़ा और गवर्नमेंट ने उसमें सच्ची हमदर्दी जताई मगर बच्चों की शिक्षा का प्रश्न अब तक गफ़लत में पड़ा हुआ है। अभी तक इसके सिवाय कि देहाती मदरसों के लिए सब-डिप्टी-इन्सपेक्टरों की तादाद बढ़ा दी गई है, इस मामले में और ज्यादा उत्साह नहीं दिखाई पड़ता और सच तो यह है कि अकेले गवर्नमेंट की कोशिशें कभी इस बड़े काम को पूरा कर ही नहीं सकती जब तक कि माँ-बाप सजग होकर इसमें उत्साह और

तत्परता न दिखायें। हमको विश्वास है कि यह छोटी-सी किताब इस काम मे माँ-बाप का हाथ बटा सकती है, शर्त यही है कि वह इससे मदद लेना चाहे। मगर रोना तो इसका है कि लोग ऊपरी दिखावे और सजधज की बातो मे तो अनुभवी, जानकार और हुनरमंद लोगों की तलाश करते है मगर बच्चों की शिक्षा-दीक्षा जैसे महत्वपूर्ण प्रश्न पर ऐसी उदासीनता दिखाते हैं जिसको गुनाह कहा जा सकता है। यही वजह है उनके लालन-पालन के बारे में बहुत से गलत खयाल फैल गये हैं। मसलन् जब बच्चा जरा भी रोने लगता है तो माँ उसको गोद में लेकर जोर-जोर से लोरियाँ सुनाने लगती हैं। लेखक महोदय की सलाह है कि जिस कमरे में बच्चा लेटा हो वहाँ बिल्कुल शोर न हो, खासकर जब वह सोता हो उस वक्त बिल्कुल खामोशी चाहिए। कुछ माँ-बाप मारे प्यार के अपने सोते बच्चों से बातें करते रहते हैं। यह हानिकर है। इससे बच्चे की श्रवण शक्ति पर बुरा प्रभाव पड़ता है।

एक आम खराबी जो लड़कों के लालन-पालन में पाई जाती है वह यह है कि हम उनको अपनी ही गलती से आज्ञा न मानना और अनुचित हठ करना सिखाते है। जरूरत इसकी है कि बच्चे से जो बात कही जाय वह ज़ोर देकर उनसे कही जाय 'क्योंकि प्रकृति ने बच्चों को ऐसी शक्ति दी है कि वे फौरन ताड़ जाते हैं कि जो बात उनसे कही गई है यूँही कही गई है या गंभीरता से। अगर माँ बच्चे को कोई शरारत करते हुए देखकर नज़र उधर कर लेती है या मुस्करा पड़ती है तो बच्चा समझ जाता है कि दिल्लगी है।' उसी तरह बच्चों को भूत, काटू वग़ैरह चीज़ों से डराने से जो खराबियाँ पैदा होती है लेखक ने उनका भी ज़िक्र किया है। कभी-कभी बच्चे रूठ जाते है उस वक़्त मार-पीट, घुडकी-धमकी बिल्कुल बेकार होती है। लेखक की सलाह है कि ऐसी हालतों मे बच्चे की तरफ ध्यान न देना चाहिए। उसकी तबियत ऐसी नर्म होती है कि जरा-सा ध्यान न देने पर हँसने-खेलने लगता है। मगर बड़े, होशियार लड़कों के साथ यह बर्ताव करना नुकसानदेह है क्योंकि ध्यान न देने से उनको और गुस्सा आने का डर है।

हमारे यहाँ बच्चों के पालन-पोषण में उनकी कलात्मक चेतना के संस्कार की ओर कोई ध्यान नही दिया जाता। ज़रूरी है कि बच्चों के सामने अच्छी-अच्छी तस्वीरें पेश करके उनमें सुरुचि की बुनियाद डाली जाय। उसी तरह बच्चे के सामने भद्दी आवाज मे गाना अनुचित है।

हमारे यहाँ हर आदमी अपने लड़के को यूनिवर्सिटी की शिक्षा दिलवाना चाहता है। उसके स्वाभाविक रुझान की छान-बीन करने की जरा भी कोशिश नहीं की

जाती जिसका बुरा नतीजा यह है कि बहुत से लड़के जो शिक्षा के किसी दूसरे क्षेत्र में उन्नति करते वह अपनी तबियत के खिलाफ किताबें रटने पर मजबूर किये जाते हैं। मगर सवाल यह है कि तबियत के रुझान का अंदाज़ा कैसे किया जाय। बचपन में इंद्रियाँ बहुत दुर्बल होती हैं और किसी विशेष रुझान का पता नहीं चलता। अतः तेरह बरस की उम्र तक जरूरी है कि बच्चे को स्कूल की साधारण शिक्षा दी जाय। उसके बाद जिस तरफ उसका रुझान देखें उसी डगर पर लगा दें। अगर लेखक ने थोड़े से शब्दों में 'किंडरगार्टन' शिक्षा-प्रणाली का उल्लेख कर दिया होता तो पुस्तक और भी लाभप्रद हो जाती। प्राचीन स्पार्टा या प्राचीन भारतवर्ष की शिक्षा-प्रणाली की चर्चा करने में, जो अब बिल्कुल गई-गुज़री बातें हो गई हैं, किंडरगार्टन की चर्चा करना कहीं ज़्यादा गुणकारी होता।

मसलए तालीम पर चंद खयालात

हमारे देश-गौरव लाला लाजपत राय साहब की तालीम के मामलों से दिलचस्पी बहुत बार ज़ाहिर हो चुकी है। हाल में आपने इस नाम से एक पैम्फलेट प्रकाशित किया है जिसमें हमारे मौजूदा तालीमी मसलों पर बड़ी छान-बीन और खूबी से विचार किया गया है और दावत दी गई है कि जो दूसरे लोग इस मसले से हमदर्दी रखते हों वह भी इस विचार-विमर्श में योग दें और अपने अनुभवों और विचारों को व्यक्त करें ताकि विचार-विनिमय से हम सही तरीक़े पर पहुँच जायें। लाला साहब ने अपने लेख में भारतीय शिक्षा-प्रणाली की यूरोपीय शिक्षा-प्रणाली से तुलना की है जिससे प्रकट होता है कि हम जीवन-संघर्ष की दौड़ में दूसरों से कितना पीछे हैं। हमारे यहाँ की शिक्षा अभी तक अव्यावहारिक है और उसके सांस्कृतिक पक्ष पर अधिक ज़ोर दिया जाता है। यूरोप और अमरीका में शिक्षा की कसौटी बिल्कुल बदल गई है। वहाँ शिक्षा एक पूँजी है जिसके ज़रिये से शिक्षा पाया हुआ लड़का या लड़की राष्ट्र और देश की सम्पत्ति बढ़ाते हैं यानी हमारी शिक्षा बौद्धिक है और उनकी भौतिक।

हिन्दुस्तान में तो अनिवार्य शिक्षा का क्या ज़िक्र, हर चार गाँव में मुश्किल से एक गाँव में कोई मदरसा है। यूरोप और अमरीका में शिक्षा न केवल अनिवार्य है बल्कि अंधों, लूलों, लंगड़ों और अलग-अलग पेशों के लिए अलग-अलग मदरसे क़ायम हैं। लड़कों को स्वस्थ रखने और उनको मज़बूत और तन्दुरुस्त बनाने के लिए बड़ी कोशिश की जाती है। मसलन् 'हर स्कूल में डाक्टरी जाँच

का ख़ास इन्तज़ाम है। लड़कों की आँख, कान, कमर, छाती, हाथ, पैर, सिर इत्यादि सब अंगों की समय-समय पर परीक्षा की जाती है और जो लड़के उन अंगों में किसी कमज़ोरी या कमी के कारण साधारण कक्षाओं के साथ काफ़ी उन्नति नहीं कर सकते उनके वास्ते ख़ास कक्षायें खुली हुई हैं।' हमारे यहाँ अभी तक प्रायमरी शिक्षा भी मुफ़्त नहीं हुई। लड़का मुश्किल से शुरू की मंज़िल तक पहुँचता है कि माँ-बाप पर पढाई के ख़र्चों का बोझ पड़ने लगता है। यूरोपीय देशों और अमरीका में प्रारंभिक और माध्यमिक शिक्षा हाई स्कूल के दर्जे तक बिला फ़ीस, मुफ़्त और बिला किसी किस्म के ख़र्च के दी जाती है। यहाँ तक कि कागज़, क़लम, दावात वग़ैरह का ख़र्चा भी राज्य की ओर से दिया जाता है।

हमारे यहाँ अब तक यह ख़याल फैला हुआ है कि यूरोप मे ऊँची शिक्षा बहुत मँहगी है। लाला साहब इसका खंडन करते है। कहते हैं—

'अगर इस देश की औसत आमदनी का मुकाबला दूसरे यूरोपियन देशों की औसत आमदनी से किया जाये तो मालूम होगा कि हमारे देश में हर तरह की शिक्षा मँहगी है। हमारे देश में सरकारी हिसाब से औसत आमदनी फ़ी आदमी तीस रुपया सालाना है। ग़ैर-सरकारी हिसाब से सिर्फ़ अठारह रुपये सालाना है। इंगलैण्ड में औसत आमदनी फ़ी आदमी ६७५ रुपये सालाना है। जिस हिसाब से इंगलिस्तानवालों की औसत आमदनी हिन्दुस्तानवालों की औसत आमदनी से साठ गुना ज़्यादा है, क्या कोई व्यक्ति यह कह सकता है कि हमारे देश में जो फ़ीस गवर्नमेण्ट कालेजों में सरकार लेती है या जिस फ़ीस के लेने पर इमदादी कालेजों को मजबूर करती है उसका इंगलिस्तान के कालिजों की फ़ीस से वही संबंध है जो हमारी औसत आमदनी का इंगलिस्तान की औसत आमदनी से है? गवर्नमेण्ट कालेज लाहौर मे बी० ए० क्लास में १० रुपया फ़ीस सिर्फ़ शिक्षा की है। क्या कोई आदमी हमको बता सकता है कि आक्सफ़ोर्ड या केम्ब्रिज के किसी कालिज में केवल शिक्षा की फ़ीस २२५ रुपया माहवार तक पहुँचती है। हरगिज़ नही। हालाँकि दोनों जगहों की शिक्षा में आकाश-पाताल का अंतर है।' यही कारण है कि इन देशों में हर विद्यार्थी पर औसतन एक सौ पैंतीस रुपया ख़र्च पड़ता है और राज्य को अपनी कुल आमदनी का एक तिहाई हिस्सा केवल शिक्षा की मद में खर्च कर देने में संकोच नहीं होता।

घास-चारा

मुंशी देवी दयाल साहब ने इससे पहले 'फूल' 'दरख़्त' वग़ैरह पर छोटी-

छोटी और फायदेमंद किताबें लिखकर ज़बान की ख़िदमत की है। हाल में उन्होंने 'घास-चारा' और 'दूध' और 'शहद' तीन और किताबें तैयार की हैं। 'घास-चारा' में तरह-तरह की घासों के नाम और थोड़े शब्दों में उनके फ़ायदे और इस्तेमाल बयान किये गये हैं। यह भी बतला दिया गया है कि कौन सी घास मवेशियों की ख़ूराक के वास्ते ज़्यादा फायदेमंद है और कौन नुकसानदेह। इस किताब में उन लोगों के लिए, जो बहुत से घोड़े वग़ैरह रखते हैं, काम की सलाहें मिल सकती हैं।

—ज़माना, अक्तूबर सन् १९०६

चित्रकला

कविता की तरह चित्रकला भी मनुष्य की कोमल भावनाओं का परिणाम है। जो काम कवि करता है वही चित्रकार करता है, कवि भाषा से, चित्रकार पेंसिल या क़लम से। सच्ची कविता की परिभाषा यह है कि तस्वीर खींच दे। उसी तरह सच्ची तस्वीर का यह गुण है कि उसमें कविता का आनंद आये। कवि कान के माध्यम से आत्मा को सुख पहुँचाता है और चित्रकार आंख के द्वारा और चूंकि देखने की शक्ति सुनने की शक्ति की अपेक्षा अधिक कोमल और संवेदनशील होती है इसीलिए जो बात चित्रकार एक चिह्न एक रेखा या ज़रा से रंग से पूरा कर देगा वह कवि की सैंकड़ों पंक्तियों से न अदा हो सकेगी। कवि जब अपनी कविता पढ़ने लगता है तो केवल भाषा को भाव की अभिव्यक्ति के लिए काफ़ी न समझकर आँखों, भँवों और उंगलियों से ऐसे इंगित करता है जिनसे उसकी कविता का आनन्द दुगना हो जाये, गोया उसे अपना मतलब अदा करने के लिए चित्रकला की आवश्यकता होती है मगर चित्रकार की तस्वीर ही उसका भाव व्यक्त करने के लिए काफ़ी होती है।

मगर जिस कला की हम चर्चा कर रहे हैं वह उस सच्ची चित्रकला की नकल है। चूंकि कवि का संबंध वाणी या भाषा से है इसलिए उसके दिल में बात पैदा हुई और उसने वाणी से उसे व्यक्त किया। चित्रकला के लिए निगाह का ठीक होना, हाथ की सफ़ाई और रंगों की मिलावट का ज्ञान बेहद ज़रूरी है। इसलिए चित्रकार ऐसी आसानी से अपना भाव व्यक्त नहीं कर सकता जैसे कि कवि। हर देश के इतिहास में कविता के बहुत दिनों बाद चित्रकला का उदय होता है। इटली में कविता ईसवी सन् से पहले अपने उच्चतम, शिखर पर पहुँच गई थी मगर चित्रकला का उदय चौदहवीं सदी में हुआ। उसी तरह इंगलिस्तान में मिल्टन और शेक्सपियर के लगभग दो सदी बाद चित्रकला ने ज़ोर पकड़ा।

हिन्दुस्तान में अन्य कलाओं की तरह चित्रकला भी अपने शिखर पर पहुँची हुई थी। यद्यपि आजकल उस ज़माने की तस्वीरें नहीं मिलतीं मगर जिन हाथों ने एलोरा और अजंता के मंदिरों मे जादूगरी की, उनकी उन्नत चित्रकला में कोई संदेह नहीं हो सकता। पुराने देशों की चित्रकला का अंदाज़ा करने के लिए ज़रूरी है कि उसकी पुरानी इमारतें देखी जांय क्योंकि तस्वीरें बहुत अर्से तक

असली आबो-ताब पर क़ायम नहीं रह सकतीं बल्कि बहुत समय बीत जाने पर वह आप ही आप खत्म हो जाती हैं।

अकबरी दौर या उसके बाद के भारतीय चित्रों से भी यहाँ की उन्नत चित्रकला का कुछ अनुमान किया जा सकता है। गो वह ज़माना हिन्दुस्तान के लिए तरक़्क़ी का युग न था तो भी उस वक़्त की तस्वीरें बहुत ही अनमोल हैं। निस्संदेह आकृति-चित्रण में वह बेजोड़ थे। हाँ, चित्रकला की अन्य विधाओं में वह बहुत सिद्धहस्त न थे और दृष्टि-क्रम के नियमों से भी वह बहुत परिचित न थे। 'आइने अकबरी' की तस्वीरों में अगरचे चलत-फिरत, जिन्दादिली, अनुपात का ज्ञान, सब कुछ मौजूद है मगर दृष्टि-क्रम का बिल्कुल लिहाज़ नहीं किया गया। दरवाज़े के सामने सहन में जिस क़द-क़ामत की शक्लें नज़र आती हैं उतनी ही बड़ी महलसरा के अंदर भी दिखाई देती हैं और यह आधुनिक चित्रकला की दृष्टि से बहुत बड़ा दोष है। इसके अलावा धूप-छाँव के लिहाज़ से भी उन तस्वीरों में अक्सर दोष दिखाई देते हैं। सहन और महलसरा के अंदर एक ही अंदाज़ और वज़न की रोशनी पाई जाती है। ये दोष शायद इस कारण से पैदा हुए कि हिन्दुस्तान में चित्रकला भवन-निर्माण के समान पेशेवर लोगों के हाथों में थी और वे पढ़े-लिखे न होने के कारण अपनी कला की उपलब्धि में दृष्टि-क्रम के ज्ञान की सहायता नहीं ले सकते थे। इसलिए जहाँ तक हाथ की सफ़ाई का संबंध है उन चित्रों में कोई दोष नहीं मगर विज्ञान की दृष्टि से उनमें बहुत से दोष मौजूद हैं।

यद्यपि चित्रकला पिछली कई शताब्दियों से हमारे शिक्षा-क्रम का कोई उल्लेखनीय अंग नहीं रही है मगर इसमें कोई संदेह नहीं कि उन्नति के युग में यह कला यहाँ अवश्य प्रचलित थी। योरप ने अगर तस्वीरों से मज़हबी इमारतों और कलीसाओं को सजाया तो हिन्दुस्तान ने उन्हें सांस्कृतिक रीति-रिवाज में सम्मिलित कर दिया। शादी-ब्याहों में औरतें अपने हाथों से घर में तस्वीरें बनाती हैं। कैसा ही गरीब आदमी क्यों न हो मगर जब वह अपने बेटे या बेटी का ब्याह करता है तो अपने दरवाज़े पर हाथी, घोड़े, ऊँट, प्यादों की तस्वीरें ज़रूर बनवाता है। ये तस्वीरें एक रुई लपेटे हुए तिनके से बनाई जाती हैं और गेरू, खड़िया या चावल पीस कर रँगी जाती हैं और अगरचे बहुत बेडौल और भद्दी होती हैं मगर इसमें कोई शक नहीं कि वह किसी पुरानी रस्म की बिगड़ी हुई यादगारें हैं। इसी तरह हिन्दुओं में कई ऐसे त्योहार हैं जिन मौकों पर औरतें घरों में दीवारों पर तस्वीरें बनाती हैं और यह तस्वीरें सिर्फ़ जानवरों या फूल-पत्तियों की नहीं होतीं बल्कि एक लंबी कहानी उन्हीं निशानों से अदा की जाती है। इनमें न अनुपात होता है, न धूप-छाँव, न पर्सपेक्टिव या दृष्टि-क्रम का कुछ ध्यान रक्खा जाता है, न रंगों

की मिलावट का। हां, उनसे यह बात यक़ीनी तौर पर साबित हो जाती है कि पुराने जमाने में इस कला की सभी विधाएँ हमारी स्त्रियों के शिक्षा-क्रम में सम्मिलित थी।

योरप मे चित्रकला का आरंभ तेरहवीं सदी के आस-पास हुआ और पन्द्रहवीं सदी तक वहाँ न सिर्फ़ एक से एक अनमोल तस्वीरों का खज़ाना जमा हो गया बल्कि इस कला पर अनेक पुस्तकें भी तैयार हो गईं जिनमें लियोनार्डो डा विन्ची की किताब अभी तक सजग क्षेत्रों में बहुत सम्मान से देखी जाती है। इटली वह पवित्र भूमि थी जहाँ योरोपीय चित्रकला का सूर्योदय हुआ और जहाँ से उसकी किरणें तीन शताब्दी तक दूसरे देशों को आलोकित करती रहीं। यहीं इस कला के जन्मदाता पैदा हुए—रफ़ायल, माइकेलएंजिलो, जोलियो रोमीनो और कोरेजियो जैसे प्रसिद्ध चित्रकार इसी मिट्टी मे पैदा हुए जिनकी तस्वीरें आज के बड़े-बड़े उस्ताद देखते हैं और दाँतो तले उंगली दबाते हैं। इस कला में उनका वही स्थान था और वह उसी तरह अनुकरण से परे है जैसे होमर, वर्जिल, कालिदास या शेक्सपियर। उनकी तस्वीरों के सामने जाते ही ऐसा लगता है कि जैसे किसी तरोताज़ा बाग में आ पहुँचे। हाँ यह आनंद प्राप्त करने के लिए एक विशेष प्रकार का रुचि का संस्कार अपेक्षित है। इसके बगैर अच्छी तस्वीर से आनंद नहीं प्राप्त हो सकता बिल्कुल उसी तरह जैसे कविता के संस्कार के बिना कविता की खूबियों का आनंद उठाना असंभव है।

इटली केवल आकृति-चित्रण से संतुष्ट नहीं हुआ बल्कि उसने चित्रकला की हर विधा में ऊँचा स्थान प्राप्त किया। प्राकृतिक दृश्य, धार्मिक किंवदंतियाँ, कविता के विषय आदि विधाएँ उसने पैदा की और उन्हें पाला-पोसा। उनमें के कुछ चित्र ऐसे लोकप्रिय हो गये है कि दुनिया का कोई कोना उनसे खाली नहीं है। रफ़ायल की बेजोड़ तस्वीर 'मरियम का बेटा' हिन्दुस्तान के हर शहर में शरीफ़ों के कमरों में और तम्बोलियों की दूकानों पर समान रूप से शोभा देती है। उसकी रंगत की सादगी और विचारो की पवित्रता ऐसी आनंददायक है कि रुचिहीन व्यक्ति भी उसे देखकर कुछ न कुछ आत्मिक आनंद पा लेता है। यह तस्वीरें इस तरह संभाल कर रक्खी हुई है और उन पर रौगन ऐसे पक्के और ठहरनेवाले दिये हुए हैं कि तीन सदियाँ गुज़र जाने के बावजूद अभी तक उनकी ताज़गी और आबो-ताब मे फ़र्क नहीं आया। हाँ, कुछ तस्वीरें जिनकी काफ़ी एहतियात न हो सकी, अलबत्ता कुछ खराब हो गई हैं। रेनाल्ड्स कहा करता था कि वह जिन उस्तादों की बनाई हुई है वह इन्सान नहीं फ़रिश्ते थे। इटली की शान सारे योरप पर अभी तक ऐसी छाई हुई है कि किसी देश का आदमी अपनी कला का उस्ताद नहीं

माना जाता जब तक कि वह दो-चार बार इटली की चित्रशालाओं को ठीक से देख न ले। खास तौर पर रोम की चित्रशाला वैटिकन तो हमेशा कला-प्रेमियों के लिए एक दर्शनीय स्थान रहा है।

उसकी बुनियाद पोप लियो के मुबारक जमाने में पड़ी थी और उसी वक्त से बड़े-बड़े उस्ताद उसकी मेहराबों और ताकों को अपनी जादू-भरी तूलिका से सुशोभित करने लगे। दुनिया में कोई दूसरी चित्रशाला ऐसी नहीं जो महत्व या महानता की दृष्टि से उसकी बराबरी का दम भर सके। यहाँ तक कि उसकी सैर करने ही से आधुनिक युग के चित्रों पर दावे के साथ कुछ कहने का अधिकार मिल जाता है। योरप में कितने ही ऐसे कला-प्रेमी पड़े हुए हैं जो उनमें की एक-एक तस्वीर के लिए दस-दस लाख पौण्ड तक देने को तैयार हैं। यहाँ बड़े-बड़े उस्तादों ने सौन्दर्य और यौवन, वीरता और पौरुष, पवित्रता और उपासना, तप और साधना, प्रेम और वात्सल्य के अच्छे से अच्छे नमूने अपने जादू-भरे कलम से बनाकर रख दिये हैं जो प्रकृति-चित्रकार की अच्छी से अच्छी कारीगरियों से टक्कर लेते हैं।

सब कलाओं का नियम है कि जब वह आरंभिक दशाओं को पार करके उत्कर्ष को पहुँचती है तो उनमें विभिन्न रंग पैदा हो जाते हैं। हिन्दुस्तान में दर्शन और धर्म-चर्चा के सात रंग मौजूद हैं। उसी तरह उर्दू शायरी में दिल्ली और लखनऊ की शैलियाँ अलग-अलग हैं। उसी तरह इटली में चित्रकला के अलग-अलग रंग हो गये जिनमें रोम, वेनिस, फ्लोरेन्स और मिलान बहुत प्रसिद्ध हैं। हर रंग को अपनी विशेषताओं पर गर्व है। कोई आकृति-चित्रण पर जान देता है, कोई प्रकृति-चित्रण पर, कोई कल्पना की रंगीनी पर। उनकी कला की सूक्ष्मताओं में भी अंतर है और हर रंग के साथ बड़े-बड़े उस्तादों के नाम जुड़े हुए हैं।

रोम से फ्रांस, स्पेन, और डेनमार्क ने सबक सीखा और इन्हीं तीनों देशों के कुछ बड़े चित्रकारों ने इंगलिस्तान में इस कला का प्रचार किया। इटली के बाद चित्रकला में फ्रांस का स्थान है और वहाँ की चित्रशाला 'लूव्र' भी दूसरा वैटिकन है।

जो लाभ मनुष्य को कविता से प्राप्त होते हैं वही लाभ चित्र से भी प्राप्त होते हैं। कविता स्वयं एक मोहक वस्तु है, चित्र का भी यही गुण है। कवि की दृष्टि सौन्दर्य पर लोट-पोट हो जाती है, चित्रकार तड़पने लगता है। श्रेष्ठ कविता मनुष्य के भावों को दिखाती और हमारे हृदय की कोमल स्थितियों को व्यक्त करती है, दिलों को उभारती और हमारे विचारों को हीनता से निकालकर उत्कर्ष पर पहुँचाती है। यानी कवि का श्रेष्ठतम कर्तव्य मनुष्य को सुन्दरतर बनाना

है। श्रेष्ठ चित्रकला भी हमारे सामने मानव समाज के सबसे अच्छे पहलू दिखाती और अच्छे-अच्छे कामों के नमूने पेश करती है। यानी कविता की तरह उसका कर्तव्य भी आदमी को इंसान बनाना है। कभी-कभी कविता की तरह चित्रकला भी ज़माने की बुराइयों पर कोड़े लगाती है। मगर दोनों कलाएँ गुलदस्ते सजानेवाले बागबान हैं न कि घास-पात उखाड़नेवाले माली।

कविता के समान चित्रकला भी व्यक्तियों को राष्ट्रीयता की ओर ले जाती है बल्कि इस वक्त हिन्दुस्तान को कविता से अधिक चित्रकला की ज़रूरत है। ऐसे देश मे जहाँ सैकड़ो विभिन्न भाषाएँ प्रचलित हैं, अगर कोई सर्व-सामान्य भाषा चल सकती है तो वह तसवीर है। यही भाषा कश्मीर से कन्याकुमारी तक हर आदमी की समझ में यकसाँ आ सकती है। स्वर्गीय राजा रवि वर्मा अगर तेलुगू भाषा में कविता करते तो उनके नाम से यह प्रदेश आज परिचित भी न होता और न उससे समग्र राष्ट्र का कुछ भला होता। मगर उनके चित्रों ने सारे देश में एक सामीप्य, एक आत्मीयता की भावना उत्पन्न कर दी है। बंगाली भी शकुन्तला के चित्र से उतना ही आनंदित होता है जितना कि पंजाबी या मरहठा हो सकता है क्योंकि सब हिन्दू समुदायों में कालिदास और उसकी नायिका का नाम बच्चे-बच्चे की ज़बान पर है। उसी तरह अनगिनत ऐसे धार्मिक और सांस्कृतिक विषय हैं जो सब हिन्दुस्तानियों के दिलों मे एक ही विचार, एक ही उत्साह, एक ही भावना उत्पन्न कर सकते हैं और जो चित्र ऐसे पवित्र विषयों को अंकित करता है वह देश में सच्ची राष्ट्रीयता फैलाता है क्योंकि एक ही विचार से प्रभावित हो जाने का नाम राष्ट्रीयता है। कौन ऐसा हिन्दू होगा जो राजा रामचन्द्र के बनवास पर आँसू न बहाये। श्रीकृष्ण की बाँसुरी की मोहक पुकार से कौन विभोर न हो जायगा। दमयन्ती के सतीत्व की क़सम कौन हिन्दुस्तानी न खायेगा। यह तो खैर धार्मिक बातें हैं। सिर्फ एक हिन्दुस्तानी घराने की तसवीर, एक भारतीय पति का अपनी प्यारी पत्नी से विदा लेना, एक हिन्दू औरत का अपने परदेश जाने वाले बालम के घर लौटने के लिए आँचल उठाकर सूरज से प्रार्थना करना, एक हिन्दू लड़के का अपनी माँ की गोद में खेलना—ऐसे विषय हैं जो एक जादू-भरे चित्रकार के हाथों में सच्ची जातीयता के चिन्ह बन सकते हैं।

चित्रकला से हमारा अभिप्राय फ़ोटोग्राफ़ी कदापि नहीं है। फ़ोटोग्राफ़ी सीखना दिनों का काम है, चित्रकला वर्षों का, बल्कि उससे भी कहीं ज्यादा। यद्यपि आजकल चित्रकला की तुलना मे फ़ोटोग्राफ़ी की उसके सस्तेपन के कारण बहुत उन्नति हो रही है लेकिन कला-मर्मज्ञ फ़ोटोग्राफ़ी को कला की श्रेणी में लाते ही

नहीं। इसमे संदेह नही कि फोटोग्राफर बहुत थोड़े समय में असल चीज़ की नक़ल उतार लेता है मगर यह नक़ल बेजान, मुर्दा और बेरंग होती है। प्रकृति की विच-विचित्र रंगारंगी दिन की तरह रोशन है। ऐसी कोई प्राकृतिक वस्तु नहीं जो कोई न कोई रंग न रखती हो। फ़ोटोग्राफर इस बात को बिल्कुल आँख से ओझल कर देता है। मसलन् अगर किसी पहाड़ी दृश्य को तस्वीर उतारेगा तो पहाड़ का दामन, उसकी चोटी, उस पर के हरे-भरे पेड़, उसके दर्रे और गुफाएँ और उसके सामने का विस्तृत और मोहक दृश्य सब एक ही रंग के होंगे। आसमान नीले के बजाय कुछ पीलापन लिये होगा। अगर इस पहाड़ मे कोई झरना होगा तो फोटो में एक सफेद लकीर की तरह दिखाई देगा जिसमें गति, तेज़ी और झाग नाम को न होगी। उसको देखकर हम यह न पहचान सकेंगे कि यह किस दृश्य का चित्र है चाहे वह दृश्य हमारी आँखों में कैसा ही परिचित क्यों न हो। इसके विपरीत, चित्रकार अगर इसी दृश्य का समाँ सुबह के वक्त दिखायेगा तो पहाड़ की चोटियों पर धुंधली सुनहली किरणें होंगी, पहाड़ की तलहटी ऊपरी हिस्से से कुछ ज्यादा कालापन लिये होगी, पेड़ हरे-भरे और सुनहरे होंगे, आसमान पर सूर्योदय की लाली फूली हुई, झरने का पानी मचलता और लहराता हुआ, पहाड़ के सामने का मैदान पीलापन लिये हुए शबनमी रंग का नजर आयेगा। अगर हमने कभी इस दृश्य को देखा है तो तसवीर के देखते ही फौरन पहचान जायेंगे। निस्संदेह फ़ोटोग्राफर यथार्थ-चित्रण मे चित्रकार से बढ़ा रहता है मगर कला वह है जो प्रकृति की सुन्दरताओं में और भी कुछ जोड़े, सुन्दर को सुन्दरतर बनाये, न कि प्राकृतिक सौन्दर्य को और घटाकर और उसे प्राकृतिक अलंकारों से वंचित करके हमारे सामने प्रस्तुत करे। चित्रकार अगर कोई दृश्य दिखाता है तो केवल यथार्थ-चित्रण करके संतुष्ट नही हो जाता बल्कि वह अपनी मौलिक सृजन-शक्ति और विवेक से काम लेता है। अगर कोई भद्दी चीज सामने आ गई है तो वह उसे आँख की ओट कर जाता है और किसी दूसरे दृश्य की सुन्दर चीजें ऐसे सुरुचिपूर्ण ढंग से लाकर मिला देता है कि चित्र का सौन्दर्य दुगना हो जाता है। वह प्रकृति की नक़ल नही करता बल्कि प्रकृति को सँवारता और सुधारता है। बेचारा फ़ोटोग्राफर अपनी कला के बन्धनों से विवश है। वह नकल करता है और नक़ल भी ऐसी जिसका असल से कोई मेल नही होता।

कवि के समान चित्रकार में भी उन्मेष हुआ करता है मगर कवि तो होश सँभालते ही अपनी कवि-प्रकृति का परिचय देने लगता है और बेचारा चित्रकार बहुत दिनों तक प्राकृतिक दृश्यो, मानव स्वभावो और वृत्तियो और जानवरो की आदतों का अध्ययन और निरीक्षण करता रहता है। उसके लिए इन बारीकियो

को बहुत ध्यान से देखने की कवि की अपेक्षा कहीं अधिक आवश्यकता है। चित्रांकन वह कला है जिसके लिए बहुत अवकाश, बड़ी तीक्ष्ण दृष्टि, बड़ी व्यापक और ज्वलंत कल्पना, बड़ा दर्दमंद और नाज़ुक दिल होना चाहिए। इन खूबियों के होने पर भी आदमी बगैर दिन-रात अभ्यास किये और रंगो के रहस्य और उनकी बारीकियाँ समझे, बगैर उस्तादों की बनाई हुई तस्वीरें देखे और उनकी खूबियों को समझे इस कला में दक्षता नहीं प्राप्त कर सकता। उसकी एक-एक विधा बल्कि एक-एक विधा की एक-एक शाखा मे दक्षता प्राप्त करने के लिए एक जिन्दगी दरकार है। कोई चित्रकार फूलों का प्रेमी होता है और वह उन्हीं की खूबियाँ दिखाने में अपनी जिन्दगी खर्च कर देता है, कोई जिन्दगी भर कुत्तों की ही तसवीरें खीचता है। किसी ने बच्चों की तसवीरें खीचना अपने जीवन का कार्य बना लिया है और कोई समुद्री दृश्यों पर मुग्ध है। यह क्षेत्र इतना विस्तृत है कि उस पर सम्पूर्ण रूप से अधिकार कर लेना एक आदमी की शक्ति से बाहर है। उसके एक छोटे से टुकड़े को ले लीजिए और उसी पर अपनी इमारतें बनाइये और तब वह इमारत ऐसी होगी कि देखनेवाले उसकी तारीफ़ करेंगे और वह बहुत दिनों तक क़ायम रह सकेगी।

योरप की बहुत-सी पत्रिकायें नियमपूर्वक चित्रकला पर लेख प्रकाशित किया करती हैं। खास इंगलिस्तान में ऐसी कई पत्रिकायें है। इन लेखों का जनता के हृदय में क्या महत्व है वह इससे स्पष्ट है कि ऐसे लेख हमेशा बहुत ऊँचा स्थान पाते हैं। वहाँ कोई अच्छी तस्वीर निकल जाती है तो चारों ओर उसकी चर्चा होने लगती है, पत्रिकायें उसकी अनुकृतियाँ छापती है, उस पर टीका-टिप्पणी की जाती है, उसकी अच्छाइयों और बुराइयों पर बहसें होती हैं। हिन्दुस्तान मे इस कला की उन्नति की यह मंजिल कोसों दूर है। देखा चाहिए हम कब तक वहाँ पहुँचते है।

—ज़माना, मार्च १९०७

टामस गेन्सबरो

चित्रकला की विभिन्न विधाओं में प्रकृति-चित्रण को सबसे कठिन और सूक्ष्म ठहराया गया है और आकृति-चित्रण को सबसे सरल। अगर रेनाल्ड्स, जो अंग्रेजी चित्रकला का ब्रह्मा समझा जाता है, आकृति-चित्रण की कला को उत्कर्ष के शिखर पर ले गया तो गेन्सबरो ने प्रकृति-चित्रण को कमाल के दर्जे तक पहुँचाया। रेनाल्ड्स के पहले इंगलिस्तान में वैन्डाइक और रुबेन्स जैसे-जैसे बड़े चित्रकार आकृति-चित्रण की कला का प्रवर्तन कर चुके थे और सामान्य रुचि भी उसी की ओर झुकी हुई थी। गेन्सबरो के पहले इंगलिस्तान में किसी ने प्रकृति-चित्रण का साहस न किया था और इस दृष्टि से वह अपने देश में इस कला का प्रवर्तक और जन्मदाता कहा जा सकता है।

टामस गेन्सबरो सन् १७४७ ई० में सफ़ोक नामक सूबे के एक नगर में पैदा हुआ। उसका बाप बजाज था और अपनी ईमानदारी, लेन-देन की सफ़ाई और मेहनत के लिए आस-पास मशहूर था। उसकी माँ साधारण माँओं की तरह मुहब्बती, गंभीर और अपने लड़कों पर गर्व करनेवाली थी। यह खानदान वहाँ बड़ी इज्जत से देखा जाता था। टामस अपने तीन भाइयों में सबसे छोटा था लेकिन अक्ल और मिज़ाज की तेज़ी में सबसे बढ़कर था। चित्रकला का प्रेम वह माँ के पेट से लेकर आया था। उसे इससे स्वाभाविक लगाव था। उसके मकान के पास एक बहुत खूबसूरत, चार मील के घेरे की झील थी। उसके किनारे-किनारे बड़े-बड़े पुराने छतनार छाँहदार पेड़ लगे हुए थे। झील के पेचीदा नाले बड़ी बाँकी अदा से धीमे-धीमे अठखेलियाँ किया करते थे। टामस स्कूल जाता तो उन्हीं सुहानी जगहों के सैर-सपाटे किया करता और उस सुन्दर, मोहक दृश्य को देखते-देखते उसे प्राकृतिक दृश्यों से प्रेम-सा हो गया और आखिरकार वह दृश्य-चित्रण में कमाल पर पहुँचा। अब भी वह कोने, वह पेड़ मौजूद हैं जहाँ बैठकर वह फूलों, पत्तियों, पेड़ों और सुन्दर दृश्यों के चित्र खींचा करता था और कहा जाता है कि उनमें आनेवाले जमाने के कमाल का पूर्वाभास मिलता है, केवल अभ्यास की कमी है। दस ही बरस की उम्र में उसके हाथों की तेज़ी और आँखों की सफ़ाई के जौहर खुलने लगे और बारह बरस की उम्र में तो वह कुशल चित्रकार बन गया। जाहिर है कि ऐसी हालत में उसकी स्कूली शिक्षा

नाम मात्र को हुई होगी मगर जो लोग प्रकृति से कलाकार उत्पन्न होते हैं वह अपने किताबी ज्ञान की कमी को अपने निजी अनुभव और प्रत्यक्ष निरीक्षण से बहुत जल्द पूरा कर लिया करते हैं।

कुछ दिनों तक तो टामस अपने इस व्यसन को अपने माँ-बाप से छिपाता रहा मगर कब तक छिपाता। एक रोज उसके जी मे आयी कि झील के किनारे बैठकर खूब प्रकृति की सैर कीजिए, मगर स्कूल बंद न था। आखिर अपने पिता की ओर से मास्टर के पास एक खत लिखा कि टामस को आज की छुट्टी दे दीजिए। उस वक्त तो चकमा चल गया मगर बाद को जब भेद खुला और मास्टर ने टामस के पिता के पास वह खत इसलिए भेजा कि बेटे का सावधान कर दिया जाय तो बाप ने बड़े दुख से कहा—यह छोकरा तो एक ही घाघ निकला ! यह कभी न कभी जरूर फाँसी पर चढ़ेगा ! मगर जब गाँववालों ने कहा कि उस दिन तो टामस झील के किनारे बैठकर तस्वीरें बना रहा था और बाप ने उन तस्वीरों को देखा तो दुख की जगह हार्दिक प्रसन्नता हुई। बोल उठा—टामस, तुम तो चित्रकार हो गये।

एक बार वह अपने बाप के बाग़ीचे मे बैठा हुआ एक पुराने, ठूँठे लेकिन सुन्दर पेड़ की तस्वीर उतार रहा था कि उसने गाँव के एक आदमी को चहार-दीवारी के ऊपर से कुछ लाल-लाल पके हुए आड़ुओं की तरफ़ ललचाई आँखों से ताकते देखा। सूरज की तिरछी किरणें उसके ललचाये हुए चेहरे पर कुछ इस तरह पड़ रही थी कि उस पर धूप-छाँव की बड़ी सुहानी कैफ़ियत पैदा हो रही थी। टामस ने उसी वक़्त उसका चेहरा भी उतार लिया। बाद में जब उसके पिता ने यह तस्वीर देखी तो बहुत खुश हुआ और किसान को बुलाकर कहा, ज़रा अपनी सूरत देखो ! बेचारा किसान बहुत लज्जित हुआ। यह तस्वीर खुद टामस को ऐसी भली मालूम होती थी कि उसने बहुत अरसे के बाद उसे रंग-रोग़न से सजाया और कला- के पारखियों ने उसकी बड़ी तारीफ़ की। ऐसी ज़ल्दी में उसने जो तस्वीरें बनायी हैं उनमे ऐसी स्वच्छन्दता और सहजता है कि वह उसकी सबसे अच्छी तस्वीरों मे हैं।

उसके बचपन के दिनों के खाकों में अब कोई खाका बाकी नहीं मगर किसी वक़्त वे सैकड़ों की तादाद मे थे। चरती हुई गायें, शाखों पर चहचहाती हुई चिड़ियाँ, पानी पीती हुई भेड़ें, बाँसुरी बजाता हुआ किसान, गाय को दाना खिलाती हुई अहीरिन, नदी किनारे का वातावरण, खुशनुमा घाटियाँ, कोई चीज़ ऐसी न थी जिस पर उसने अपनी पेन्सिल न चलायी हो। वह उनके खाके खींच-खींच रखता जाता कि आगे चलकर उनकी तस्वीरें बनाऊँगा मगर जब वह इस

कला में निपुण हुआ तो ये ख़ाके आँख में न जँचे, उन्हें यार-दोस्तों में बाँट दिया। एक कला-मर्मज्ञ ने इन ख़ाकों में से एक देखा था जिसमें एक पेड़ का कुंज बना हुआ था। उसकी राय थी कि यह अपने ढंग की एक बेजोड़ तस्वीर थी।

गेन्सबरो जब चौदह बरस का हो गया और चित्रकला की ओर उसके रुझान को काफ़ी ख्याति मिल चुकी तो लोगों की सलाह हुई कि उसे इस कला का और भी ज्ञान प्राप्त करने के लिए किसी चित्रकार के पास भेजा जाय। होगार्थ के मित्रों में एक हेमैन नाम का आदमी था। टामस को उसका शिष्य बना दिया गया। उसकी बुद्धि, मौलिकता, विनयशीलता और हाथ की तेजी ने उसे मित्रों की दृष्टि में बहुत प्रतिष्ठा दे रक्खी थी मगर अभी तक न उसको और न उसके गुण के किसी पारखी को यह ख़याल हुआ था कि वह इस कला के शिखर पर पहुँच सकेगा। वह समझते थे कि किसी छोटे-मोटे शहर में वह इस पेशे से अपने गुज़ारे भर को कमा लेगा। टामस को शुरू ही से आकृति-चित्रण मे रुचि न थी और ऐतिहासिक घटनाओं के चित्रों में दिमाग़ बहुत ख़र्च होता था और कमाई बहुत कम। शायद वह इन दोनों विधाओं में चित्रकारी करने के लिए बनाया ही नहीं गया था। प्राकृतिक दृश्यों के चित्रण से उसे स्वाभाविक लगाव था और उसी को चमकाने और उसकी बदौलत खुद चमकने का उसने निश्चय कर लिया था। अंग्रेज़ी चित्रकला के क्षेत्र में अब तक इस फ़न को जाननेवाला कोई नही निकला था। निस्संदेह विल्सन की तबीयत इस ओर बहुत झुकी हुई और इसके उपयुक्त थी मगर वह जीविकोपार्जन की आवश्यकताओं से विवश होकर लोगों की आकृतियाँ बनाने लगा था। टामस चार बरस तक लंदन में रहा और रंग बनाने और उसमें तेल मिलाने की कला में निपुण होकर अपने शहर को लौट आया।

वह अब अपने अठारहवें साल मे था। उसकी ख्याति अपने मित्रों की मंडली से निकलकर आस-पास फैलने लगी थी। उसका हँसमुख स्वभाव, उसकी मर्दाना खूबसूरती और उसका हँसोड़पन ऐसे गुण थे जो उसे हर जगह एक विशेष स्थान दिला सकते थे। एक रोज वह शाम को सैर कर रहा था कि संयोग से एक पेड़ की खूबसूरती ने उसे अपनी तरफ़ खींचा। उसके नीचे भेड़ें ख़ामोश आराम कर रही थी और ऊपर फ़ाख्ते और कबूतर बसेरा ले रहे थे। वह वहीं ज़मीन पर बैठ गया और उस दृश्य का ख़ाका उतारने लगा कि एक सुन्दर युवती भी घूमती हुई आ पहुँची। युवक चित्रकार ने फ़ौरन उसको उस तस्वीर में और साथ ही अपने दिल में जगह दे दी। थोड़े दिनों के बाद दोनों की शादी हो गई और वह दोनों इस्पियोक में एक छोटा सा मकान [illegible] के किराये

पर लेकर बसर करने लगे। मियाँ-बीवी एक दूसरे पर जान देते थे और गो अभी पेशे से बहुत कम आमदनी होती थी मगर यह किफायतशार, सुघड़ स्त्री दिलों में बदमजगियाँ नही पैदा होने देती थी।

यहाँ टामस की मुलाकात मिस्टर फिलिप से हुई जो एक किले के गवर्नर थे। मिस्टर फ़िलिप तबियत के रईस थे और गोष्ठियों के प्रेमी। उस बीहड़ जगह में इस तरह की गोष्ठियों का कोई मौका न था और न ऐसे लोग थे जो महफ़िल को गरमा सकें। ऐसे लोगों को तो कुछ शहरों ही से लगाव है। उसने जब टामस को ऐसा नेक, हँसमुख और कला का धनी पाया तो उससे मेल-जोल पैदा किया। टामस भी इस जगह पर अभी तक गुमनाम था और उसकी जरूरत थी कि रईसों की मंडली में उसकी पहुँच हो और लोग उसको जानें। अतः उस गवर्नर की संरक्षकता उसने स्वीकार कर ली। फ़िलिप नेक मिजाज का आदमी तो था मगर घमंडी बहुत ज्यादा था। जितना वह किसी के लिए करता उससे ज्यादा कहता। वह ऐसा आदमी न था कि किसी के साथ भलाई करे और भूल जाय बल्कि एक बार भी किसी के साथ कोई सलूक कर लेता तो बार-बार कहा करता। यह बात टामस जैसे स्वाभिमानी आदमी को क्योंकर पसंद आ सकती थी। तब भी वह बहुत अर्से तक सिर्फ इस खयाल से कि मैं कहीं कृतघ्नता का दोषी न ठहरूँ, गवर्नर साहब की ये घमंड भरी बातें सहता रहा। मगर जब उसकी ख्याति फैली और इधर दिलों मे भी गाँठ पड़ी तो फिलिप टामस का वैरी बन गया। दुनिया में ऐसे बहुत आदमी मिलेंगे जो आपके साथ उस वक्त तक हर तरह से अच्छा वर्ताव करते रहेंगे जब तक आप उनको अपना देवता, अपना बुजुर्ग और अपना आदर-पात्र समझते रहेंगे। मगर ज्योंही वह आपके तौर-तरीकों में स्वतंत्रता की जरा भी गंध पायेंगे त्योंही आपके दुश्मन हो जायेंगे क्योंकि ऐसे लोगों की निगाह में इससे बढ़कर कृतघ्नता दूसरी नहीं हो सकती।

फिलिप ने टामस से फ़रमाइश की कि मेरे क़िले और उसके आस-पास के दृश्य खींचो। पारिश्रमिक तीस पौंड ठहरा। टामस ने इस तस्वीर में अपनी जान खपा दी। एक नामी मूर्तिकार ने उसे पट्टी पर खोदा और थोड़े ही दिनों में उस तस्वीर की बहुत सी कापियाँ बिक गईं। असली तस्वीर अब वक़्त के हाथों तबाह हो गई। इस तस्वीर के अलावा टामस ने इसपियोक के तमाम सुहाने दृश्यों की तस्वीरें लीं और इस सीमित क्षेत्र में उसकी ख्याति स्थापित हो गई और जरूरत हुई कि वह अब इस जगह से हटकर किसी ज्यादा आबाद और रौनकदार जगह पर रहना शुरू करे। बाथ इंगलिस्तान का शिमला या नैनीताल है। यहाँ पचास

पौण्ड सालाना का मकान किराया करके उठ आया। गवर्नर फिलिप इस जगह के फैशनेबुल लोगों में बहुत मशहूर था। लिहाजा उसने टामस गेन्सवरो से अपनी तस्वीर खींचने की फ़रमाइश की ताकि उसकी तस्वीर देखकर दूसरे रईसों का ध्यान भी उसकी ओर जाय। मगर टामस उस वक्त तक इस घमंडी आदमी के नाज उठाते-उठाते तंग आ गया था। उसने उसकी तस्वीर शुरू तो की मगर पूरी न कर सका और यही गोया गवर्नर साहब के कुपित होने का पहला कारण था। मगर टामस को गवर्नर साहब के कोप की क्या परवाह थी। वह अपना समय दृश्य-चित्रण, आकृति-चित्रण और गाने-बजाने में खर्च करता था। पहले उसकी बनायी हुई एक पोर्ट्रेट की फीस पाँच पौण्ड थी फिर आठ पौण्ड हुई और ज्यों-ज्यों ख्याति बढ़ती गई फीस भी बढ़ती गई। यहाँ तक कि उसे आधे क़द की तस्वीर के चालीस और पूरे क़द की तस्वीर के सौ पौण्ड मिलने लगे। अब चारों तरफ से दौलत बरसने लगी। उसके हाथ में तेजी थी और स्वभाव परिश्रमी था। अब उसको अपने शौक़ की उन चीजों में रुपया खर्च करने का मौक़ा मिला जो अब तक गरीबी के कारण न कर सकता था। किताबों से उसे प्रेम न था और न लेखकों से अनुराग था बल्कि शहरवाले उसकी सगत के जितने इच्छुक थे टामस उनसे उतना ही घबराता था। वह कहा करता कि मैंने प्रकृति की किताब पढ़ी है और मेरी ज़रूरतों के लिए यही काफी है। हाँ, उसे संगीतज्ञों से गहरी निष्ठा थी। उनकी संगत में बैठने से उसकी आत्मा को आनंद मिलता था। वह एक अच्छे गवैये को अत्यंत सम्मानित और एक अच्छे बाजे को जमाने की सबसे अच्छी ईजाद समझता था। तस्वीर खींचने से जो अवकाश उसे मिलता उसको वह संगीत के ज्ञान की प्राप्ति में खर्च करता था। एक जीवनीकार कहता है कि यद्यपि टामस गेन्सवरो का पेशा चित्रकारी था और संगीत फुर्सत का दिल बहलाव मगर इस कला में वह जितना अभ्यास करता था उससे मालूम होता था कि वह संगीत को जीविकोपार्जन का साधन और चित्रकारी को मनोरंजन समझता है। गाने में उसे कितना प्रेम था वह इस क़िस्से से प्रकट होता है। एक मर्तबा उसने वैन्डाइक की किसी तस्वीर में एक बाँसुरी की तस्वीर देखी और उससे समझा कि बाँसुरी कोई बहुत अच्छा बाजा होगा। फिर उसे याद आया कि मैंने एक जर्मनी के प्रोफ़ेसर को बाँसुरी बजाते देखा है। उनके पास पहुँचा। प्रोफ़ेसर साहब मेज पर बैठे हुए भुने सेब चख रहे थे और बाँसुरी बगल में रक्खी हुई थी। टामस ने सलाम-बंदगी के बाद कहा—जनाबमन, मैं आपकी बाँसुरी खरीदने आया हूँ। दाम कहिए और यह नक़द हाज़िर है।

प्रोफ़ेसर ने कहा—जनाबमन, मैं अपनी बाँसुरी नहीं बेचता।

टामस—दाम पर मत जाइए, जो कहिए हाजिर है।

प्रोफ़ेसर—उसका दाम बहुत है, आपके दिये न दिया जायेगा, दस पौण्ड।

टामस—बस, ये लीजिए दस पौण्ड, इसको आप बहुत कहते थे!

यह कह कर बांसुरी ले ली। रुपये गिने। थोड़ी दूर चला था कि फिर लौटा।

टामस—जनाब, मैं अधूरा काम करके चला जाता था। ये बांसुरी मेरे किस काम की है जब तक आपकी किताब भी न हो।

प्रोफ़ेसर—कैसी किताब?

टामस—अजी वही जो आपने इस बांसुरी को बजाने के लिए बनाई है।

प्रोफ़ेसर—वह किताब मैं नहीं बेच सकता।

टामस—लाइए, लाइए, दिल्लगी न कीजिए। आप जब चाहें ऐसी किताब बना सकते हैं। लीजिए दस पौण्ड। आदाबअर्ज़।

चंद क़दम चला था कि फिर लौटा।

टामस—आपने मुझे अच्छा फांसा, भला यह खाली-खूली किताब लेकर मैं क्या करूंगा? इसे समझायेगा कौन और बांसुरी कैसे बजेगी? उठिए तशरीफ़ ले चलिए और मुझे सिखा दीजिए।

प्रोफ़ेसर—आप चलिए, मैं कल आऊंगा।

टामस—नहीं, आपको अभी चलना होगा।

प्रोफ़ेसर—ज़रा कपड़े तो पहन लूँ।

टामस—कपड़े पहनकर क्या कीजिएगा, आप यूँ ही हजारों में एक हैं।

प्रोफ़ेसर—ज़रा हजामत तो बना लूँ।

टामस—वाह! तब तो आपका हुलिया ही बिगड़ जायेगा। क्या आप समझते हैं वैन्डाइक आपकी तस्वीर खींचता तो दाढ़ी सफ़ाचट करने देता?

गरज़ कि इतनी माथा-पच्ची के बाद वह प्रोफ़ेसर साहब को खींच-खांच कर अपने घर ले गया। उसे इस कला से ऐसा प्रेम था कि उसका घर गाने के बीसों ही यन्त्रों से भरा रहता था और उसकी मेज और दस्तरख़ान पर हमेशा संगीत के प्रोफ़ेसर बैठे नजर आते थे। वह उठते-बैठते गाने की ही चर्चा किया करता। तस्वीर बनाते वक्त भी यही चर्चा रहती और ज्योंही फ़ुरसत मिलती एक न एक बाजे पर गाने लगता।

बाथ में एक गाड़ीवाला रहता था जिसके हाथ में सरकारी डाक का इंतजाम था। उससे टामस की दोस्ती हो गई। गाड़ीवाले के पास एक अच्छा घोड़ा था। टामस ने दो-तीन दिन के लिए उसे उधार मांगा ताकि उसको एक तस्वीर में लाये। गाड़ीवाला चित्रकला का आदर करता था। उसने घोड़े को साज-सामान

ने दुरुस्त करके टामस के सुपुर्द कर दिया। टामस ने भी इस दरियादिली का जवाब दिया। उसने उसके घोड़े और गाड़ी की तस्वीर उतारी और उसके कुनबे को सब अपने उस गाड़ी मे बिठा दिया। कहते हैं कि यह तस्वीर उसकी बेहतरीन तस्वीरों में से है।

अब गेन्सबरो की आमदनी, ख्याति और सम्मान इतना हो गया कि उसे बाथ से लंदन में आकर रहने का साहस हुआ। यहाँ वह गवर्नर फिलिप की नाज-बरदारी से आजाद हो गया और पोर्ट्रेट बनाने व प्राकृतिक दृश्यों के चित्र खींचने में दिनों-दिन उन्नति करने लगा। उसका मकान बहुत लम्बा-चौड़ा और उसकी चित्रशाला बहुत सुन्दर और सुरुचिपूर्ण ढंग से सजी हुई थी। और चूँकि उसने इसके पहले बहुत-सी पोर्ट्रेटें बनाई थीं उसे लंदन में ज्यादा दिनों बेकार न बैठना पड़ा। इसमें संदेह नहीं कि उन दिनों रेनाल्ड्स की तूती बोलती थी मगर शौक़ीनों की तादाद इतनी ज्यादा थी कि वह अकेले सब की फ़रमाइशें पूरी न कर सकता था और एक ऐसे आदमी के लिए काफी गुंजाइश थी जो जोर, आजादी और स्वभाव-चित्रण में कभी-कभी वैन्डाइक से टक्कर खाता था। शाही खानदान ने भी कद्रदानी की। बादशाह, मलिका और तीन शहजादियों ने छोटे-छोटे पैमाने पर उससे तस्वीरें बनवाईं। इसमें शक नहीं कि अगर उसके स्वभाव में ज़रा ज्यादा सहिष्णुता, ज़रा ज्यादा धीरज और ज़रा ज्यादा शिष्टाचार होता तो वह रेनाल्ड्स से भी बाजी ले जाता। उसके रगों में ठहरनेवाली शोखी थी और जिस चीज पर वह पेंसिल उठाता उसमें जान और ताजगी डाल देता था। उसकी ख्याति ने जिन शौक़ीनों को उस तक पहुँचाया उनमें डेवनशायर की बेगम भी थी। वह रूप और सौन्दर्य की दृष्टि से अपने समय की तमाम सुन्दरियों की रानी समझी जाती थी। मगर जब टामस तस्वीर लेने बैठा तो उसके सर्वजयी सौन्दर्य और उसकी मोहक बातचीत का उसके दिल पर इतना असर हुआ कि उसके हाथों से चपलता, स्वच्छन्दता और सहजता जाती रही। उसने कई बार कोशिश की, अपनी कला का सारा जोर खर्च कर दिया मगर बेगम के सौन्दर्य की जो कसौटी उसके दिल में कायम हो गई थी उसे किसी तरह अदा न कर सका। आखिर कई बार नाकाम कोशिश करने के बाद उसने यह कहकर कि यह शकल मेरी ताकत से परे है, उसे छोड़ दिया। उसके मरने के बाद इस तस्वीर के दो-तीन मसौदे मिले जो बहुत ही खूबसूरत थे।

इसी तरह एक रईस उसके यहाँ तस्वीर खिंचवाने आये। कपड़े बिलकुल नये और भड़कीले थे। बैठने का ढंग भी ऐसा था जिससे रोब-दाब झलकता था। जब गेन्सबरो ने हाथ में पेंसिल ली तो आपने फ़रमाया, 'जनाबमन, मेरी ठुड्डी

पर एक गड्ढा है, उसे न भूल जाइयेगा।' टामस आपकी चाल-ढाल देखकर हँस रहा था। खुशामद से उसको चिढ़ थी, न ज़बान से न पेंसिल से वह किसी की खुशामद करना पसंद करता था। बोल उठा—जनाब, तशरीफ़ ले जाइये। मैं आपकी तस्वीर खींचने से बाज़ आया।

एक बार मशहूर ऐक्टर डेविड गैरिक टामस के यहाँ तस्वीर खिंचवाने आया मगर जब चित्रकार ने उसके चेहरे पर निगाह डाली उसने एक नये अंदाज और अनोखे ढंग का चेहरा बनाया, कभी आँखें छोटी कर दीं, कभी होंठ मोटे कर दिये। आखिर गेन्सबरो इन शरारतों से घबरा गया। गैरिक खुश होते हुए लौटे और रेनाल्ड्स से अपनी इस शरारत को बड़े गर्व से बयान किया। इस मंडली में इस पर खूब कहकहे रहे।

लेकिन बहुत कम ऐसे लोग हैं जो किसी कला की हर विधा में कमाल रखने का दावा कर सकते हों। आकृति-चित्रण में टामस निश्चय ही अभ्यस्त था लेकिन रेनाल्ड्स उससे बढ़ा हुआ था। उसकी स्वाभाविक रुचि प्रकृति-चित्रण में थी और इस क्षेत्र में वह बेजोड़ था। नेचर को उसने बेशुमार दिलचस्प सूरतों में तस्वीर खींची और उसकी पेंसिल ने अछूती सहजता से नेचर की कोमल से कोमल भावनाओं को लिपिबद्ध किया। कभी एक बड़े पेड़ की तस्वीर, कभी बेलों से लिपटी हुई झाड़ी, कभी अपनी हँसिया तेज करता हुआ घसियारा, कभी सीटी बजाता हुआ हलवाहा, कभी बाँसुरी बजाता हुआ चरवाहा—प्रकृति के ये तमाम दृश्य उसने ऐसी सफाई, खूबी और नज़ाकत से दिखाये हैं कि कोई दूसरा नहीं दिखा सकता।

टामस को कवियों और लेखकों से बहुत लगाव न था। तो भी प्रसिद्ध व्याख्याता एडमंड बर्क, और नाटककार शेरिडन आदि जैसे कलाप्रेमी लोगों से उसे विशेष प्रेम था। सर जार्ज बोमान्ट इस जमाने के शौकीन-मिजाज रईस थे। अधिकाश कवि और कलाकार उनके आतिथ्य-सत्कार का लाभ उठाया करते थे। बर्क, शेरिडन गेन्सबरो के यहाँ दिलबहलाव के लिए जमा हुआ करते थे। जार्ज बोमान्ट अपने एक किस्से में बयान करते हैं कि 'एक बार गेन्सबरो को मैंने दावत की। बर्क वगैरह भी शामिल थे। उस रोज टामस ने सबको खूब हँसाया, खूब हाजिरजवाबी दिखायी, ऐसी कि हम सब उसकी तीक्ष्ण बुद्धि के कायल हो गये और दस बजे रात तक खूब चहल-पहल रही। आखिर चलते वक्त यह वादा हुआ कि दूसरे दिन फिर लोग जमा हों। उस दिन फिर लोग आये मगर टामस की हाजिरजवाबी विदा हो गई थी। वह चुपचाप एक तरफ़ बैठा रहा। लोगों ने बहुत चाहा कि उसकी तबीयत को गरमायें मगर नाकाम रहे। आखिर उसने

शेरिडन का हाथ पकड़ लिया और एक ओर अकेले में ले जाकर बड़ी गंभीरता से बोला—अब मेरे मरने के दिन पास आ गये है। मै देखने मे जवान नज़र आता हूँ मगर मेरी मौत के दिन दूर नही। इसलिए मै चाहता हूँ कि कम से कम अपने एक दोस्त को हमदर्दी के लिए अपने साथ ले चलूँ। तुम चलोगे या नही? साफ बोलो, हाँ या नही! शेरिडन ने हँस कर कहा, जरूर चलूँगा। इतना सुनते ही टामस की दिल्लगीबाजी फिर लौट आयी। वह फिर बुलबुल की तरह चहकने लगा और बाकी वक्त नाच-गाने मे कटा।'

कलाकारों मे और गुणों के साथ-साथ ईर्ष्या का गुण भी आमतौर पर ज्यादा होता है। एक व्यक्ति दूसरे की रचना को तुच्छ समझता है और अपने को उससे बडा साबित करने की कोशिश करता है। रेनाल्ड्स और गेन्सबरो में बराबर खटपट रहा करती थी। रेनाल्ड्स पोरट्रेट बनाता था और उस जमाने मे पोरट्रेट बनाने की जितनी कद्र थी उतनी प्रकृति-चित्रण की नही हो सकती थी। इसी कारण से सब चित्रकार उससे जलते थे। गेन्सबरो खुल्लमखुल्ला उसकी बुराई किया करता था। एक बार आपसी मेल-जोल का जोर यहाँ तक हुआ कि दोनों आदमी एक दूसरे की तस्वीर खीचने के लिए तैयार हो गये थे मगर फिर बिगाड़ हो गया और फिर दोनों आदमी अलग हो गये। गेन्सबरो ने मृत्यु-शय्या पर अपने प्रतिद्वन्द्वी को याद किया। रेनाल्ड्स की साफदिली देखिए कि उसी वक्त हाजिर हो गया। दोनों कलाकार गले मिले और दिलों में जो दोनों के डाह के कॉंटे चुभे हुए थे वह उसी वक़्त निकल गये। अनबन और अदावतें उसी वक्त तक रहती है जब तक उनसे तबीयत को कोई खुशी हासिल होती है। जब दुनिया की तरफ से दिल बुझ जाते है तो स्वाभाविक रूप से दुख होता है कि हम क्यों इतने दिनों तक एक-दूसरे की बुराई और एक-दूसरे को नुकसान पहुँचाने की कोशिश करते रहे।

गेन्सबरो अपनी तस्वीरो पर दस्तखत नही किया करता था। उसका ख़याल था कि किसी तस्वीर का आदर इसलिए नहीं होता कि वह किसी चित्रकार की बनाई हुई है बल्कि इसलिए कि उसमें स्वयं क्या गुण है। उसको विश्वास था कि मेरे चित्रों में ऐसे गुण मौजूद है जो मेरी विशेषतायें है और इन विशेषताओं के कारण मेरे चित्र हमेशा सबसे अलग पहचाने जायेंगे। अपनी तस्वीरों में 'लकड़हारा और उसका कुत्ता आँधी में' उसे बहुत पसंद थी। लकड़हारे की आँखों में जो आसमान की तरफ़ उठी हुई है कि जैसे भगवान से प्रार्थना कर रही है कि मुझे इस आँधी, बिजली, पानी से मुक्ति दे, एक ग्रामीण की भावना का बेजोड़ चित्र खिंच गया है। उसी तरह 'गडरिये का लड़का और बरखा' भी

देहाती जिन्दगी के एक बहुत दिलचस्प पहलू की तस्वीर है। दोनों तस्वीरों के भीगनेवालों के चेहरे से ऐसी निराशा और बेबसी टपक रही है जिसे किसी तरह व्यक्त नही किया जा सकता। पहला चित्र नष्ट हो गया है लेकिन उसका खाका अभी तक मौजूद है और जाहिर करता है कि तस्वीर बहुत ऊँचे पाये की होगी। टामस उसकी क़ीमत एक सौ गिनी खयाल करता था मगर उसकी जिन्दगी मे ऐसा कोई कद्रदां न मिला जो सौ पौण्ड भी उसके लिए दे सके। उसके मरने के बाद मिसेज गेन्सबरो ने वही तस्वीर पाँच सौ पौण्ड मे बेची। टामस के अन्य लोकप्रिय चित्रो मे 'घड़ा लिये पनिहारिन और उसका कुत्ता' है। हमारे देश में अभी तक किसी ने इन दैनंदिन घटनाओं का चित्र खीचने का प्रयत्न नहीं किया। स्वर्गीय राजा रवि वर्मा कवित्वपूर्ण और काल्पनिक विषयों की ओर झुक गये। कभी कभी अंग्रेजी पर्यटकों के फ़ोटो अलबत्ता दिखाई दे जाते हैं मगर फ़ोटो की तस्वीरें कभी ऐसी प्रभावोत्पादक, सुन्दर और आकर्षक नही हो सकती जैसी कि हाथ की बनाई हुई तस्वीरें।

रेनाल्ड्स की तरह गेन्सबरो भी खड़े-खड़े तस्वीर बनाया करता था और जो पेंसिलें वह इस्तेमाल करता था उनमे लंबी-लंबी नोकें लगी होती थी जो कभी कभी दो गज से भी ज्यादा लम्बी होती थीं। वह अपनी तस्वीर के नमूने यानी माडल से जितनी दूरी पर खड़ा होता था उतनी ही दूरी पर तस्वीर को भी रखता था ताकि दोनों के रंगों मे निगाह के फेर से कोई गडबड़ी न पैदा हो जाये। वह बहुत सबेरे उठता और सबेरे ही से काम में लग जाता था। बारह एक बजे तक काम करने के बाद वह अपने दिल बहलाने के कामों मे लग जाता था। उसे शाम के वक्त अपनी पत्नी के साथ बैठकर तरह-तरह के खाके खींचने मे बहुत मजा आता था। खाके खीच-खीच वह मेज के नीचे फेंकता जाता था। उसमें से जो मन के अनुकूल हो जाते उन पर ज्यादा ध्यान देकर उन्हे तस्वीर की सूरत में लाया करता था। गर्मी मे वह देहात के हरे मैदानों और साफ हवा में घूमा करता था और जाड़े मे जब काम करके थक जाता तो अपनी खिड़की मे सर निकालकर धूप खाया करता।

इस चित्रकार मे तन्मयता का कुछ विशेष गुण था। एक जीवनीकार लिखता है कि टामस को बीन बजाने का बहुत शौक़ था। एक रोज कर्नल हैमिल्टन नाम के एक व्यक्ति ने उसके सामने बीन बजाना शुरू किया। टामस पर इस आनन्द का ऐसा नशा छाया कि उसने कर्नल से कहा, 'गाये जाओ मैं तुम्हें 'लड़का छप्पर पर' वाली तस्वीर दूँगा जिसके खरीदने की तुम कई वार दरख्वास्त कर चुके हो।' कर्नल ने खूब दिल लगाकर गाया और टामस मुग्ध भाव से बैठा

सुनता रहा। खुशी के आँसू आँखों से जारी थे और सच्चा आत्मिक उल्लास चेहरे से झलक रहा था। कर्नल हैमिल्टन ने उसी वक़्त गाड़ी किराया की और उस तस्वीर को घर ले गया।

जिस दावत का सर जार्ज बोमान्ट ने ज़िक्र किया है उसे मुश्किल से एक साल गुजरा होगा कि गेन्सबरो के नाम सचमुच मृत्यु का संदेश आ गया। वारेन हेस्टिंग्स उस जमाने में हिन्दुस्तान से ताजा-ताजा वापिस गया था और उसकी उन ज्यादतियों के सिलसिले में जो उसने यहाँ पर देशी रियासतों के साथ की थीं, उसकी अच्छी तरह मरम्मत की जा रही थी। एडमंड बर्क अपनी भाषण-शक्ति का अद्वितीय उदाहरण प्रस्तुत कर रहे थे। हर रोज हाउस ऑफ़ कॉमन्स के सामने भीड लगी रहती थी। गेन्सबरो भी शेरिडन के साथ बर्क का भाषण सुनने गया और एक खिड़की के सामने पीठ करके बैठ गया। थोडी देर के बाद यकायक उसे मालूम हुआ कि किसी ने मेरी गरदन पर बर्फ़ रख दी, फिर रगें तन गई और दर्द होने लगा। घर आकर उसने फ़लालैन वगैरह बाँधा मगर कुछ फ़ायदा न हुआ। आखिर जर्राहों और डाक्टरों को दिखाया। सबने कहा, यह मामूली सर्दी है, कोई खतरे की बात नहीं। मगर गेन्सबरो के दिल में कोई बैठा हुआ कह रहा था कि तुम्हारा अंत निकट है। आखिरकार अंत आ गया। दूसरी अगस्त सन् १७८८ को इकसठवें साल में उसका देहान्त हो गया। मरने के पहले उसने रेनाल्ड्स को याद किया था और दोनों आदमियों में मेल हो गया था। रेनाल्ड्स और शेरिडन लाश के साथ-साथ कब्र के दरवाज़े तक गये।

गेन्सबरो की मृत्यु के बाद उसकी विधवा पत्नी ने सभी तस्वीरें बेचने के लिए पेश की जिनमें छप्पन तस्वीरें और सौ से ज्यादा खाके थे। बहुत उसी मौके पर बिक गई। कुछ नीलाम कर दी गई। उनमें की दो तस्वीरें वक्त की तबाही से बचते-बचते बच रही हैं। एक का नाम 'नीला लड़का' और दूसरे का 'झोपड़े का दरवाज़ा' है। पहली तस्वीर रेनाल्ड्स की ज़िद में खींची गई थी। रेनाल्ड्स ने अपने भाषण में कहा था कि 'नीला रंग कपड़े वगैरह के लिए ठीक नहीं।' गेन्सबरो ने 'नीला लड़का' बना कर इस दावे का खण्डन किया। बहुत से आलोचकों का कहना है कि अंग्रेज़ी चित्रकारिता में किसी लड़के का चित्र ऐसे ऊँचे पाये का नहीं। नीले रंग का इस्तेमाल बहुत मुश्किल है और इसी लिहाज से टामस वैन्डाइक से बहुत मिलता था जो इस खूबी के लिए दुनिया में मशहूर है। इस लड़के के चेहरे से ऐसा प्राकृतिक सौन्दर्य प्रकट होता है और उसकी भंगिमा ऐसी सहज है कि देखनेवालों को आश्चर्य होता है। दूसरी तस्वीर

मे एक खूबसूरत-सा झोंपड़ा है जिसके दरवाजे पर एक औरत एक बच्चे को गोद मे लिये बैठी है और उसके इधर-उधर कई बच्चे खेल-कूद रहे है। यह झोंपडा बहुत घने पेड़ो की छाया मे बनाया गया है और पेड़ों के बीच से पानी के सोतों और हरे-भरे लहलहाते हुए मैदानो का दृश्य दिखाई देता है। उसके रंग बहुत शोख है। उसमे एक तरह का भूरा सुनहरापन पाया जाता है जो इस चित्रकार की एक विशेषता है। औरत खुद एक तन्दुरुस्त, गदरायी हुई देहाती औरत की बेहतरीन मिसाल है जिसके चेहरे का सौन्दर्य और सलोनापन उसकी आँखो की सादगी और होंठो की मुस्कराहट से और भी दुगना हो जाता है।

शक्ल-सूरत में गेन्सबरो बहुत सुन्दर कहा जाता है। उसने भी होगार्थ की तरह यूनिवर्सिटी की शिक्षा न पाई थी मगर उसके पत्र जो मिले हैं उनमें जो हास्यप्रियता और कोमलता है वह बहुत कम अंग्रेजी लेखकों की कृतियों मे पाई जाती है। हां, इसमे शक नहीं कि वह जरा हँसोड़ आदमी था और इस वजह से अपने लिखने मे भी वह गंभीरता नहीं बरत सकता था जो किसी दार्शनिक के लेख मे होनी चाहिए। उसके इरादे बहुत मजबूत हुआ करते थे। जिस बात से एक बार जी हट गया फिर नही जमता था। सन् १७७४ मे उसने जब एक तस्वीर रॉयल एकेडेमी में नुमाइश के लिए भेजी तो यह ताकीद कर दी कि उसको जहाँ तक हो सके नीचे लटकाया जाय। मगर एकेडेमी में कोई शर्त उसके खिलाफ़ थी। लोगों ने विरोध किया। गेन्सबरो ने तस्वीर वापस ले ली और फिर कभी न भेजी।

उसके खाके बहुत से है और कोई ऐसा नही जिससे उसके जमाने का पता न चलता हो। शायद किसी चित्रकार ने भी इतने खाके नही छोडे। उनमें से कुछ उसकी बेहतरीन तस्वीर के मुकाबले के है। उन सबों में नफासत और अनोखापन मौजूद है। एक आलोचक लिखता है कि 'लेडियो के जो खाके मैंने उनके देखे वैसे और कही देखने में नही आये। इनमें बहुत से खाकों के नाम मिट गये है मगर हाल में इसी चित्रकार के एक परपोते रिचर्ड लेन ने जो स्वयं भी उच्च कोटि के चित्रकार है इन स्केचों को प्रकाशित करना शुरू किया है। अब तक दो-ढाई दर्जन निकल चुके है और शायद यह सिलसिला बहुत दिनों तक चलेगा।'

मगर टामस गेन्सबरो केवल दृश्यो का चित्रकार न था। ऐसे चित्रकारों का नियम है कि अपने बागीचों को स्वर्ग का उपवन बना देंगे। उनकी नदियाँ तूबा की नहर को शरमायेंगी। उनके मैदान, उनकी पहाड़ियाँ, उनके झरने

सभी ऐसे नजर आयेंगे कि जैसे वह इंसान के लिए नहीं बने हैं बल्कि फरिश्ते और देवता उनकी सैर का मजा उठाते हैं। इन तस्वीरों में इंसान का काम नहीं होता, बागीचे सजे रक्खे हुए हैं मगर सजानेवाले आँखों से ओझल हैं। झरनों से पानी बड़ी खूबसूरती से गिर रहा है मगर इस दृश्य का मजा उठाने वाला कोई तस्वीर में नहीं है। इसके विपरीत गेन्सबरो जब किसी दृश्य का चित्र उतारता है तो उसमें आदमी का पार्ट बड़ी खूबी से दिखाता है। उसके बागीचे फरिश्तों से बसने के लिए नहीं बल्कि इंसान की सैर और तफरीह के लिए बने हुए होते हैं और उसमें इंसान चलते-फिरते नज़र आते हैं। उसकी नदियाँ, उसके झरने, सभी मौकों पर हजरत इंसान मौजूद नजर आते हैं। वह किसी खास उसूल या किसी खास स्कूल का पाबंद न था। वह फ्लोरेन्स या वेनिस या डेनमार्क का अनुकरण करनेवाला न था। वह वैन्डाइक या टिशियन या रफ़ायल का अनुकरण करनेवाला न था। वह इंगलिस्तान में पैदा हुआ था और वहीं अपनी कला की उपलब्धि की। इसीलिए उसके दृश्य सब अंग्रेजी दृश्य हैं। उसके स्त्री-पुरुष सब अंग्रेज हैं। उसकी नदियाँ, झोंपड़े सब अंग्रेजी हैं। वह रेनाल्ड्स की तरह उस्तादों से अपनी तस्वीरों के नमूने नहीं लेता था और न विल्सन की तरह स्विटजरलैंड और इटली की सीनरी खींचता है। किसी स्कूल, किसी पद्धति और किसी शैली से वह परिचित नहीं। उसने प्रकृति की पाठशाला में शिक्षा पाई और इसी शिक्षा के बल पर दुनिया के पन्ने पर अपनी मुहर लगा गया।

कभी-कभी तस्वीरें जल्दबाजी या कम ध्यान देने के कारण खराब हो गई हैं। जैसा आमतौर पर बहुत मेधावी लोगों का नियम है कि वह किसी एक बात पर तबियत को बहुत देर तक नहीं लगा सकते, उसी तरह गेन्सबरो भी एक तस्वीर को बनाते-बनाते जब घबरा जाता था तो उसे जल्दी-जल्दी खत्म कर देता और फिर पलटकर उस पर नज़र न डालता। दिमाग में खयालात बिजली की दमक की तरह आते हैं। यकायक कोई ताजा, तस्वीर के काबिल खयाल आया और फ़ौरन पेंसिल से उसका खाका खींच लिया। अब जब तक इस खाके को तस्वीर की सूरत में लाये, उस पर रंग भरे और उसमें बहुत सी ऐसी-ऐसी छोटी-मोटी खूबियाँ पैदा करे जो अभ्यास और चिन्तन से पैदा होती हैं, तब तक खयाल की वह ताज़गी विदा हो गई। इसलिए वह बड़ी तेज़ी से काम किया करता था ताकि जहाँ तक जल्द मुमकिन हो खयाल अदा हो जाये। इस जल्दबाज़ी के कारण उसकी कुछ बड़ी अनमोल तस्वीरें खराब हो गई हैं। रेनाल्ड्स अपने समकालीनों के दोष और गुण पर कभी जबान नहीं खोला

करते थे मगर जब गेन्सवरो के देहान्त ने उसको समकालीनों की सूची से अलग कर दिया तो कभी-कभी उसकी कला की प्रशंसा करने लगे। कहते हैं, 'गेन्सवरो की तस्वीरों को जब नजदीक से जाकर खूब गौर से देखिए तो बेशुमार छोटे-छोटे निशान और लकीरें नजर आती हैं जो बारीकियां समझनेवाले चित्रकारों की दृष्टि में भी उस समय ऐसी मालूम होती हैं कि जैसे संयोग से रह गई हैं और उनसे चित्रकार का कोई विशेष अभिप्राय नहीं है, लेकिन जब कुछ फासले पर चले जाइए तो यही लकीरें, यही बेजोड़ अनावश्यक निशान जैसे जादू के जोर से आकार ग्रहण करने लगते हैं और जो काम उनके सुपुर्द किया गया है उसे पूरा करने लगते हैं। इसलिए मजबूरन यह कहना पड़ता है कि गेन्सवरो में जल्दबाजी और लापरवाही के परदे में मेहनत छिपी हुई है। गेन्सवरो खुद अपनी तस्वीरों की इस खूबी को जानता था जो उसकी इस ताकीद से पता चलता है कि प्रदर्शनी में हमेशा मेरी तस्वीरें पहले नजदीक और तब ज़रा फ़ासले से देखी जाया करें।'

गेन्सबरो के दृश्यों में छोटे-छोटे हँसते-खेलते बच्चों का इधर-उधर आज़ादी से दौड़ना बहुत प्यारा मालूम होता है, खास तौर पर जब रेनाल्ड्स के बच्चों से उनकी तुलना करके देखिए। इसमें संदेह नहीं कि शहरों के बच्चे भी बड़ी प्यारी चीजें हैं, बड़े सहज, स्वच्छन्द और सुन्दर लेकिन ऐसा मालूम होता है कि वह मखमली गद्दों पर सोने और सुनहरे चमचों से खिलाये जाने के आदी हैं। गेन्सबरो के बच्चों में एक प्रकार का ग्रामीण सौन्दर्य, एक स्वच्छन्द बाँकपन, एक स्वस्थ अबोधता पाई जाती है जिससे उनके देहाती और अक्खड़ होने का पता चलता है। वह प्रकृति के बच्चे मालूम होते हैं जो प्रकृति के उपवन में आज़ादी से हँसी-खुशी दौड़ रहे हैं। उनको इस बात की परवाह नहीं कि मेरे साटन के कोट खराब हो जायेंगे या मेरे नरम नरम जूते भीग जायेंगे। वह हरी-हरी घास पर लोटते, खरगोशों की तरह झाड़ियों में फुदकते और नालों और चश्मों में मछलियों की तरह तैरते फिरते हैं।

—ज़माना, सितम्बर १६०७

समीक्षाएँ

विक्रमोर्वशी

उर्दू भाषा का स्रोत यद्यपि फारसी और संस्कृत दोनों ही हैं मगर उर्दू के शायर शुरू ही से फारसी कविता के अनुकरण में इतना ज्यादा लगे रहे हैं कि शायद रामायण और दो एक और धार्मिक पुस्तकों को छोड़ कर दूसरी किसी महान् संस्कृत पुस्तक ने उर्दू जबान का जामा नहीं पहना। अर्सा हुआ कि हिन्दी भाषा ने, जिसका अल्प सामर्थ्य एक पक्की बात है, कालिदास और भवभूति की अधिकांश कृतियों से अपना भंडार भर लिया। उर्दू जबान में 'शकुन्तला' के एक टूटे-फूटे तर्जुमे को छोड़कर अभी तक इनमें से किसी एक का भी तर्जुमा नहीं हुआ। खुशी की बात है कि उर्दू के मशहूर क़लम के जादूगर मौलवी मुहम्मद अजीज मिर्जा साहब ने अब इस तरफ ध्यान दिया है और कालिदास के प्रसिद्ध नाटक 'विक्रमोर्वशी' का तर्जुमा उर्दू पब्लिक के सामने पेश किया है। मिर्जा साहब सिद्ध-हस्त लेखक हैं और आपका नाम उर्दू दुनिया में बहुत मशहूर है। इस अनुवाद का महत्व इस कारण से और भी बढ़ गया है कि एक मुसलमान लेखक की कलम से वह निकला। अगर किसी हिन्दू ने यह काम किया होता तो शायद इसके हिन्दूपन की वजह से यह किताब मुसलमानों में इतनी लोकप्रिय न हो सकती जिसका उसे हक है।

मौलवी साहब ने असल तर्जुमे से पहले एक लम्बी-चौड़ी भूमिका लिखी है जिसकी गहरी छान-बीन तारीफ के काबिल है। उसको ध्यानपूर्वक देखने से स्पष्ट हो जाता है कि प्राचीन काल में हिन्दुस्तान में नाट्य-कला की रुचि कितनी समुन्नत थी। नाटक के सिद्धान्तों, प्रकारों, विषयों, विषयों के प्रकार, वर्णन शैली, नायकों के प्रकार आदि सूक्ष्म बातों पर जो जो बाल की खाल प्राचीन काल के हिन्दुओं ने निकाली है उससे उनकी सर्वतोमुखी रुचि और बौद्धिक वैभव का पता चलता है। इसमें तनिक भी संदेह नहीं किया जा सकता कि उन्होंने नाट्य-लेखन को एक विज्ञान बना दिया था।

मगर यह अभियोग सिर्फ मुसलमानों ही के सर नहीं है कि उन्होंने हिन्दी ज्ञान-विज्ञान और साहित्य से लाभ नहीं उठाया। हिन्दुओं पर भी यही इल्जाम

अनुवादक—मौलवी अजीज मिर्जा साहब बी० ए० होम सेक्रेटरी हुजूर निजाम।

पूरी तरह लागू होता है। मुसलमानो के जमाने मे तो खैर संस्कृत की धार्मिक और कुछ साहित्यिक पुस्तकों के अनुवाद हुए भी मगर हिन्दुओ ने तो शायद फारसी और अरबी साहित्य की किसी एक कृति को भी भाषा या संस्कृत का जामा नहीं पहनाया। 'गुलिस्ताँ' जैसी सर्वप्रिय पुस्तक का अनुवाद भी हिन्दी भाषा में कुछ महीने पहले तक मौजूद न था। इसमें शक नहीं कि हिन्दुओ ने फारसी में अपनी शायरो की यादगारें छोडी है। टेकचंद, माधोराम, क़तील सब अमर नाम है मगर इनमें से किसी ने भी यह कोशिश न की कि फ़ारसी किताबो को हिन्दी या संस्कृत का आभूषण पहनाते। उन्होने प्रचलित ढंग का अनुकरण किया और इसी से संतुष्ट रहे। इस तरह दोनो कौमें सदियों से एक जगह रहने-सहने के बावजूद भी एक-दूसरे के ज्ञान-विज्ञान और साहित्य से अपरिचित है। और हालांकि यह बेगानापन पूरे तौर पर दोनो जातियो के आपसी विरोध के लिए जिम्मेदार नही कहा जा सकता तो भी इस इल्ज़ाम से वह बरी नही है। लेखक महोदय ने भूमिका में कहा है—

'इस काम की जरूरत मुझे इस वजह से और भी महसूस हुई कि मौजूदा जमाने में मुल्क की बदनसीबी से हिन्दुस्तान की बड़ी क़ौमो, हिन्दू-मुसलमानो मे सख्त विरोध पैदा होता जाता है और मेरे खयाल मे अगर कोई तदबीर इस आपस के विरोध को रोकने या उसकी जगह हमदर्दी पैदा करने की है तो वह यही है कि एक-दूसरे के लिट्रेचर से लाभान्वित हो। इसका मौका, जो फ़ारसी लिटरेचर के दोनों क़ौमों की दिमागी और दुनियावी तरक्क़ी के लिए लाज़मी होने की वजह से था, बाकी नहीं रहा।'

हिन्दू और मुसलमानों की एकता और समझौते का सवाल ऐसा महत्वपूर्ण और पेचीदा है कि इसकी प्रेरणा जिस किसी तरफ से हो वह सच्चा क़ौमी हमदर्द कहे जाने का हकदार है और उसकी कोशिश मुबारकबाद के क़ाबिल है।

कालिदास के जीवन पर ऐसा पर्दा पडा हुआ है कि उसके बारे में इसके सिवा और कुछ मालूम नही है कि वह राजा विक्रमादित्य के नौरतन का एक अनमोल हीरा था। यहाँ तक कि कभी-कभी छान-बीन करनेवालो को शेक्सपियर की तरह उसके अस्तित्व पर भी संदेह होता है। बाद के संस्कृत कवियों मे उसके काव्य का जो ऊँचा स्थान है और उसको जो प्रतिष्ठा और लोकप्रियता प्राप्त है वह भवभूति को छोड़कर, जो उसके एक शताब्दी बाद पैदा हुआ, और किसी संस्कृत कवि को प्राप्त नही। उसके काव्य की महत्ता के संबंध में लेखक महोदय कहते है—

'योरप और हिन्दुस्तान के बड़े-बड़े काव्य-मर्मज्ञ एकमत है कि कालिदास जन्म

से ही चितेरे की दृष्टि, कवि का मन और नक्काशी करनेवाले का हाथ लेकर आया था। उसकी व्यापक दृष्टि न केवल मानव-प्रकृति के पेचीदा रहस्यों बल्कि प्रकृति के तमाम दिल लुभानेवाले करिश्मों या चकित कर देनेवाली घटनाओं की तह तक पहुँच गई थी और वह जो कुछ देखता था उसकी प्रबल स्मरण-शक्ति उसको बिना काटकसर किये अपनी कल्पना के भंडार में जमा कर लेती थी।'

जर्मन के सबसे बड़े कवि गेटे ने 'शकुन्तला' की इन शब्दों मे प्रशंसा की है जिनमे एक कवि की काव्य-मर्मज्ञता का पता चलता है—

'नये साल की कलियाँ और बीते हुए साल के मेवे और वह सब चीजें जो आत्मा के लिए भोजन या कंठ और जिह्वा के लिए स्वादिष्ट है या जो उसको लुभा सकती है या विभोर कर सकती है, गरज जो कुछ धरती और आकाश मे अच्छा और सुन्दर है वह सब तूने एक नाम मे जमा कर दिया है। ओ शकुन्तला, तेरा नाम जबान पर आया और वो सब नेमतें गोया कि मिल गईं।'

कोमल भावनाओं की अभिव्यक्ति और प्रकृति के चित्रण में उसको जो अधिकार प्राप्त है उसकी बदौलत संसार के समस्त कवियों में उसे एक ऊँचा स्थान मिला है।

'विक्रमोर्वशी' कालिदास के तीन प्रसिद्ध नाटकों मे से है और यद्यपि उसमे 'शकुन्तला' का सा आकर्षण नही है मगर रंगीनी और वर्णन की सहजता और कोमल भावनाओं की चाशनी की दृष्टि से, जो कालिदास के साहित्य की विशेषतायें है, वह और नाटकों के समकक्ष है। शेक्सपियर की तरह कालिदास भी अपने ड्रामों के लिए नये प्लाट नही गढ़ता बल्कि पुरानी घटनाओं पर रंग-रोग़न चढ़ाकर एक आकर्षक रूप मे प्रस्तुत करता है। 'शकुन्तला' और 'विक्रमोर्वशी' दोनों पुराने किस्से है, हाँ 'मालविकाग्निमित्र' एक ऐतिहासिक कहानी है।

मुसलमानों ने क्यों हिन्दू नाटक से फायदा नही उठाया, इस प्रश्न पर विद्वान् अनुवादक ने कुछ न्यायपूर्ण बातें कही है। आपका खयाल है कि मुसलमान अपने क़ौमी इल्म और अदब पर इतना नाज़ करते थे कि किसी दूसरी क़ौम के साहित्य या अदब से फायदा उठाना अपनी शान के खिलाफ समझते रहे जिसका अफ़सोसनाक नतीजा यह है कि उर्दू साहित्य का विकास कृत्रिमता पर जाकर समाप्त हो गया। काश उर्दू शायरी की बुनियाद भाषा या संस्कृति पर कायम की गई होती तो, आज दूसरा ही समाँ नजर आता और बयान के जोर और प्रकृति के चित्रण की स्थिति ही कुछ और हो जाती और वह चीज जिसको अब हमारी आँखें बेफायदा उर्दू शायरी में ढूँढती है और जो हर कौम की शायरी की जान है उसका पता सिर्फ उसके न होने से न चलता।' लिहाजा मत जरूरत है कि उर्दू शायरी की

रगों में नया खून दौड़ाया जाय। इस भूमिका मे सिर्फ एक छोटी सी बात है जिस पर हम अनुवादक महोदय से सहमत नही हो सकते। आप कहते है कि नाटक की उद्‌भावना सबसे पहले यूनान वालों ने प्रस्तुत की और इस मामले मे जर्मनी के पंडितों को आप प्रमाण मानते है जिनका आमतौर पर यह तरीका है कि वे हर तरह की रौशनी और तहज़ीब को योरप ही से जोड़ें या अगर कभी न्याय-प्रियता की भावना में आकर हिन्दुस्तान के ज्ञान-विज्ञान और कला की प्रशसा भी करें तो एक ऊँचे आसन पर बैठकर, संरक्षक के से स्वर मे, जिसमे सच्चाई की बहुत कम गंध आती है। कहते है कि हिन्दुओं ने काव्य के दो प्रकार बतलाये थे—एक 'दृश्य' जो देखा जा सके और दूसरा 'श्रव्य' जो सुना जा सके। चूँकि नाटक पहले प्रकार का काव्य है इससे यह खयाल किया जा सकता है कि जिन लोगों ने यह दो प्रकार बतलाये वे नाटक को कला से अपरिचित न थे। किसी भी वर्गीकरण के लिए आवश्यक है कि उन वर्गीकृत चीज़ों का अस्तित्व हो। जब तक हमारे सामने सभी तरह के रंग मौजूद न हों, हम उनकी अलग-अलग क़िस्मो को एक-दूसरे से अलग नही कर सकते और हिन्दुओ का यह विभाजन उतना ही पुराना है जितनी कि हिन्दू कविता। लिहाज़ा यह मानना पड़ेगा कि हिन्दुओं ने नाटक की उद्‌भावना यूनानियों से नही ली। यह बेशक समझ मे आने वाली बात है कि संस्कृत के आचार्यों ने श्रव्य प्रकार पर अधिक बल दिया और इसी में साहित्य-रचना करते रहे, दृश्य की ओर अपेक्षाकृत कम ध्यान दिया। इसकी मिसाल उर्दू शायरी से मिल सकती है कि बावजूद दो सौ वर्षो से ज़्यादा की मश्क़ के अभी एक भी ऐसा ड्रामा नही निकला जिसे अमर जीवन का अधिकार प्राप्त हो। यह बात भी ध्यान मे रखनी चाहिए कि नाटक का जो अर्थ आज-कल है वह हिन्दुओं के यहाँ नही था और न सिर्फ़ हिन्दुओ के यहाँ बल्कि इंगलिस्तान में भी शेक्सपियर के वक्त तक ड्रामों ने मौजूदा ढंग अख्तियार न किया था। न जादू करनेवाले परदे होते थे न आश्चर्यजनक दृश्य। लोग कोमल भावनाओं और ललित भाषा मे आनंद उठाने के लिए जाया करते थे।

जहाँ तक अनुवाद का संबंध है, पुस्तक प्राय: निर्दोष है। कहीं-कहीं संस्कृत उपमायें उर्दू लिबास मे भोंडी नजर आती है जिसका कारण शायद यह है कि हमारी रुचियाँ बिगड़ी हुई है। ड्रामे के लिए केवल कविता की कल्पनाओं की आवश्यकता नही है बल्कि कविता के परिधान की भी आवश्यकता है और पद्य जब गद्य का रूप ले लेता है तो उसकी आकर्षकता में बहुत अंतर आ जाता है। क्या उर्दू के बड़े-बड़े कवि जो गुलो-बुलबुल और ग़मज़ा-ओ-अदा और शिक्वे-शिकायात मे अपनी जान खपाया करते है इस तरफ ध्यान न देंगे। हज़रत सुरूर,

नासिर बनारसी, पं० बृज नरायन चकबस्त, हज़रत कैफ़ी और हज़रत नज़र अगर इस काम में हाथ लगायें तो अपनी अमर कीर्ति का शिलान्यास कर सकते हैं। लिखाई-छपाई इस किताब की खासी है और जिल्द बहुत खूबसूरत और मज़बूत। कीमत डेढ़ रुपया। दफ्तर ज़माना कानपुर से मिल सकती है।

विदुर नीति

प्राचीन काल के हिन्दू नीति-आचार्यों में विदुर जी महराज को जो ऊँचा स्थान प्राप्त है उससे बहुत कम लोग परिचित हैं। संस्कृत में शंकर, चाणक्य और विदुर की नीति-शिक्षा बहुत ऊँचा स्थान रखती है। विदुर महाराज धृतराष्ट्र और पाण्डु के भाई थे मगर दोनों ओर से कुलीन न होने के कारण धन-संपदा से वंचित कर दिये गये थे। उनका जीवन बहुत सरल था मगर इसके साथ ही विचार बहुत ऊँचे थे। उनकी सरलता का यह हाल था कि श्री कृष्ण जी महराज जैसे महान् व्यक्ति की दावत की तो मामूली साग से अधिक स्वादिष्ट कोई चीज़ न पेश कर सके। विदुर का साग आज तक मशहूर है मगर बावजूद इस सादगी के निर्भीक स्वतंत्रता-प्रेमी ऐसे थे कि जब उनसे कभी किसी बात में परामर्श लिया जाता था तो बड़े निर्भीक ढंग से अपनी राय देते थे। उनकी अच्छी सीखें संस्कृत साहित्य में हमेशा से बहुत ऊँचा स्थान पाती रही हैं। जब कौरवों और पाण्डवों में समझौते से काम न निकलने के कारण झगड़े पैदा हुए तो धृतराष्ट्र जी अपने भाई विदुर के पास सलाह लेने गये। विदुर जी ने उस वक्त उन्हें जो सलाह दी है उसका एक-एक अक्षर सोने के पानी से लिखे जाने योग्य है। खेद है कि अब तक उर्दू की दुनिया इस अनमोल मोती, ज्ञान और बुद्धि की इस खान के अस्तित्व से बिल्कुल अपरिचित थी। हाल में हैदराबाद के श्रीयुत मानिकराव विट्ठल राव ने इसका अनुवाद प्रकाशित किया है। यह सज्जन पहले भी कई लाभप्रद पुस्तकें लिख चुके हैं और यह अनुवाद कुल मिलाकर बुरा नहीं। हम पाठकों के मनोरंजन और लाभ के लिए उसमें से कुछ उद्धरण प्रस्तुत करते हैं। इन्हें पढ़कर यह अनुमान किया जा सकेगा कि सांसारिक प्रश्नों पर अच्छी राय कायम करने के लिए इस बात की ज़रा भी ज़रूरत नहीं कि आदमी दुनिया का गुलाम होकर रहे। पहले ही उद्धरण में विद्वान के जो गुण बतलाये गये हैं उनसे यह साफ़ ज़ाहिर होता है कि हमारी अक्ल की कसौटी कितनी गिर गई है। आज हम उस व्यक्ति को विद्वान कहने में ज़रा भी नहीं झिझकते जो दो चार भाषाओं से परिचित हो, जो अपने विचारों को सुन्दर ढंग से व्यक्त कर सके और जो आवश्यकतानुसार क़ायदे

अनुवादक—श्री मानिक राव विट्ठल राव हैदराबादी

से बहस-मुबाहसा कर सके। हम यह अक्सर सुनते हैं कि अमुक सज्जन यद्यपि जरा शराब पीते हैं मगर इसमें शक नहीं कि अपने समय के बड़े विद्वान् हैं। गरज़ यह कि इंसान में सैंकड़ों ऐब हों मगर सिर्फ़ उसके बौद्धिक वैभव के आधार पर उसे विद्वान् कहने में जरा भी आगा-पीछा नहीं किया जाता। देखिए विदुर जी क्या कहते हैं—

'विद्वान् उसी को कह सकते हैं जो संसार के व्यापार में लिप्त रहने पर भी ऐन्द्रिक इच्छाओं और धन-सम्पदा से ऊँचा स्थान सदाचार को देता हो। जो व्यक्ति अपना अनमोल समय व्यर्थ नहीं गंवाता और विचारों पर जिसको अधिकार होता है उसे विद्वान कहते हैं। पंडित और बुद्धिमान वही है जो संसार की आपद-विपद से ऐसा ही निश्चिन्त रहे जैसे नदी अपने में कंकड़-पत्थर फेंके जाने से रहती है।'

कुछ और सीखें सुन लीजिए—

१—मनुष्य के शरीर से खून निकालने के लिए दो नश्तर हैं जिनमें से पहला नश्तर तो कंगाल को अकूत सम्पत्ति की लालसा है और दूसरा है कमजोरी के बावजूद दूसरों पर गुस्सा करना।

२—निम्नलिखित दो व्यक्तियों को कमर में पत्थर बांधकर नदी में डुबो देना चाहिए—एक तो ऐसे धनवान को जो अपने धन में अधिकारी व्यक्तियों को सम्मिलित न करे और दूसरे ऐसे कंगाल को जो गरीबी के बावजूद परमेश्वर की उपासना न करे।

३—दो आदमी ऐसे आफ़त के परकाले होते हैं कि सूरज के लम्बे-चौड़े घेरे को भी चीर-फाड़ कर ऊपर दाखिल हो सकते हैं—पहला तो प्राणायाम करनेवाला संन्यासी है और दूसरा लड़ाई के मैदान में बहादुरी के साथ दुश्मन का मुक़ाबला करके शहीद हो जानेवाला वीर।

४—प्रतापी राजाओं के लिए अगले लोग कह गये हैं कि उन्हें कायर, सहानुभूतिशून्य और खुशामदी लोगों से परामर्श न करना चाहिए।

५—भाई, अगर तू खुशहाली से जिन्दगी बसर करना चाहता है तो इन चारों बातों पर अमल कर—खानदान के बड़े-बूढ़ों, मुसीबत के मारे शरीफ़ आदमी, ग़रीब दोस्त और निस्संतान बहन को अपने घर में जगह दे, उनकी इज्ज़त कर और उनका ध्यान रख। खानदान के बड़े-बूढ़ों से न सिर्फ़ तेरा भरम बना रहेगा बल्कि तुझे बीते हुए जमाने की बातें भी मालूम हो सकेंगी। शरीफ़ मुसीबत का मारा क्यों न हो लेकिन उसके अच्छे गुणों का प्रभाव तेरे बच्चों पर पड़ेगा। दोस्त हमेशा तेरी भलाई चाहेगा और उससे अच्छी सलाह देनेवाला तुझे न

मिलेगा। वहन गृहस्थी के प्रबंध में तुझको जो मदद दे सकेगी वह दूसरे में मुमकिन नहीं।

६—मनुष्य में जो पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ है अगर उनमे से एक पर भी तेरा अधिकार न रहा तो रोजनदार चर्मी डाल से वह कर निकल जानेवाले पानी की तरह आदमी के दिमाग से तमाम खूबियाँ गायब हो जाती हैं।

७—छः व्यक्ति अपने कृपालुओं की कृपा को महत्व नहीं देते और उनकी परवाह नहीं करते—पढ़कर निकल जानेवाला शिष्य अपने गुरु की, विवाहित पुत्र अपनी माँ की, जिसने अपनी वासना पूरी कर ली है ऐसा आदमी औरत की, गरजमंद ऐसे आदमी की जिसमे गरज़ पूरी हो गई, तूफान से बचा हुआ आदमी किश्ती की, स्वस्थ होने के बाद रोगी वैद्य की।

८—जिस तरह शहद की मक्खी फूल को बनाये रखकर उसमे से सिर्फ शहद ले लिया करती है उसी तरह राजा को चाहिए कि प्रजा की स्थिति बनाये रखकर उससे कर वसूल करे।

९—सदाचार से सद्गुणों की, अध्ययन से ज्ञान की, अच्छे आचरण से सौन्दर्य की, नेक आचरण से परिवार की, नाप-तोल से गल्ले की, फेरने से घोड़े की, देख-भाल से जानवरों की और सादे कपड़ों से स्त्री के सतीत्व की रक्षा होती है।

हम पाठकों से विनती करते है कि यह पुस्तक पढ़ें। इसे वे धार्मिक, सांसारिक, राष्ट्रीय अर्थात् सभी बातों में अपना सच्चा मार्ग-दर्शक पायेंगे। मैनेजर जमाना के पास से मिल सकती है।

—ज़माना, फरवरी १९०८

संयुक्त प्रान्त में आरम्भिक शिक्षा

दिसम्बर के मॉडर्न रिव्यू में सेंट निहाल सिंह ने एक अनूठा लेख लिखा है जिसमें अमरीका के एक देहात की कैफियत बयान की है। उसे पढकर हैरत भी होती है, और मायूसी भी। हैरत इसलिए कि तहज़ीब की जो आसानियाँ और जो सुविधाएँ इस गाँव में हैं, वह हिन्दोस्तान के बड़े-बडे शहरों को भी नसीब नहीं। और मायूसी इसलिए कि शायद हिन्दोस्तान की किस्मत मे तरक़्क़ी करना लिखा ही नहीं। दो हजार आदमी का मौज़ा और हाई स्कूल! उसकी इमारत, उसके पुस्तकालय, उसकी लेबोरेटरी पर हिन्दोस्तान का कोई कालेज गर्व कर सकता है। *क्या हिन्दोस्तान के कभी ऐसे नसीब होंगे!*

अब एक तरफ़ तो इस देहाती मदरसे को देखिए और दूसरी तरफ़ एक हिन्दोस्तानी देहाती मदरसे का ख़याल कीजिए। एक पेड़ के नीचे, जिसके इधर-उधर कूड़ा-करकट पड़ा हुआ है और जहाँ शायद वर्षों से झाड़ नहीं दी गयी, एक फटे-पुराने टाट पर बीस-पच्चीस लड़के बैठे ऊँघ रहे हैं। सामने एक टूटी हुई कुर्सी और पुरानी मेज़ है। उस पर जनाब मास्टर साहब बैठे हुए हैं। लड़के झूम झूमकर पहाड़े रट रहे हैं। शायद किसी के बदन पर साबित कुर्त्ता न होगा। धोती जाँघ के ऊपर तक बंधी हुई, टोपी मैली-कुचैली, शकलें भूखी, चेहरे बुझे हुए! यह आर्यावर्त का मदरसा है जहाँ किसी ज़माने में तक्षशिला और नालन्दा के विद्यापीठ थे। कितना फ़र्क़ है। हम तहज़ीब की दौड़ में दूसरी कौमों से कितना पीछे हैं, कि शायद वहाँ तक पहुँचने का हौसला भी नहीं कर सकते।

हमारी आरम्भिक शिक्षा के सुधार और उन्नति के लिए सबसे बड़ी जरूरत योग्य शिक्षकों की है। *और योग्य आदमी आठ रुपये या नौ रुपये माहवार के* वेतन पर दुनिया के पर्दे मे कहीं नहीं मिल सकते। जिस आदमी को पेट की फ़िक्र से आज़ादी ही नसीब न होगी वह तालीम की तरफ़ क्या खाक ध्यान देगा? ऐसे बहुत से जिले हैं जहाँ अभी तक मुदर्रिसों को चार और पाँच रुपये से ज्यादा तनख़्वाह नहीं मिलती। ऐसे आदमियों के हाथों में हमारी सरकार ने रिआया की तालीम रख दी है और ताज्जुब किया जाता है कि तालीमी हालत क्यों ऐसी रद्दी है। जब सरकारी मदरसों का यह हाल है तो इमदादी मदरसों का ज़िक्र

ही क्या ! उनमे कम से कम तीन चौथाई ऐसे है, जिन्हें सरकार चार रुपये माहवार इमदाद देती है और उसमें एक आना मनीआर्डर का महसूल कट जाता है, तीन रुपये पन्द्रह आने में कौन महीना भर दर्दसरी गवारा करेगा । शहरों में कहारों की तनख्वाहें छः और सात रुपये माहवार हैं बल्कि अक्सर तो इससे भी ज्यादा । मामूली मज़दूर चार आने पैसे रोज़ कमा लेता है । मगर गरीब मुदर्रिस इनसे भी जलील समझा जाता है । मजबूरन या तो वह ग़रीब खेती की तरफ़ चला जाता है या सरकारी क़ायदे के खिलाफ़ पाव आने की जगह एक आना या इससे ज्यादा फीस लेना शुरू करता है । इसका नतीजा यह है कि लड़कों की तादाद मे बढती नही होने पाती । बहुत से इमदादी मदरसे तो सिर्फ़ इसलिए कायम है कि एक गरीब आदमी तीन-चार रुपये घर बैठे पा जाता है । फ़र्ज़ी लडकों के नाम लिख लिये जाते है और जब कोई मुआइना करने वाला अफ़सर पहुँच जाता है, तो थोड़े से लडके इधर-उधर से बटोर कर दिखा दिये जाते है।

वेतन का तो यह हाल है । अब यह देखिए कि एक मुदर्रिस के सर काम का कितना बोझ लादा जाता है । आम तौर पर लोअर प्राइमरी में एक मुदर्रिस रहता है और प्राइमरी मदरसे मे दो या तीन । गौर कीजिए कि एक मुदर्रिस चार दर्जो की तालीम क्योंकर दे सकता है । मदरसों के एक इंसपेक्टर साहब बहुत सही तौर पर पूछते है कि एक आदमी दर्जा अलिफ के पैंतीस, दर्जा बे के पन्द्रह, दर्जा अव्वल के सात, दर्जा दोयम के पाँच लड़कों की पढ़ाई की देखभाल क्योंकर कर सकता है । अपर प्राइमरी मदरसों में दो-दो, तीन-तीन दर्जे एक-एक आदमी के सिपुर्द रहते हैं । इसका लाजमी नतीजा यह होता है कि मुदर्रिस किसी दर्जे को भी ठीक से नहीं पढा सकता । लड़के साल-साल भर से पढने आते हैं मगर अभी हरूफ लिखना भी नहीं आया । माँ-बाप देखते है कि जब उसका मदरसे जाना न जाना बराबर हैं तो घर ही पर क्यों न रहे, ताकि कुछ घर का काम-काज ही सम्हाले । नार्मल स्कूलों से जो लोग पढ़ाने का तरीका सीखकर आते है, वह भी मदरसों मे आकर अपना सब तरीका भूल जाते हैं । बेचारे क्या करें, वहाँ उन्हें एक वक्त एक दर्जे की तालीम का सबक दिया गया । यहाँ उन्हें एक वक़्त में चार दर्जे पढाने को मिले । उन उसूलों पर क्योंकर अमल करें। एक दर्जे के पढाने में लगे तो दूसरे दर्जे को हिसाब दे दिया, किसी दर्जे को इमला, किसी दर्जे को भूगोल । आँख तो एक ही है कैसे इमले को सुधारे, कैसे हिसाब समझाये, कैसे ठीक ढंग मे भूगोल की शिक्षा दे, ग़रज़ यह कि हुड़बोंग सा मचने लगता है । लड़के शैतान, मुदर्रिस को मशगूल देखा तो धौल-धप्पा शुरू किया ।

इसलिए सरकार अगर सचमुच शिक्षा की उन्नति चाहती है, सच्ची उन्नति,

कागज़ी और नुमाइशी नहीं, तो मिस्टर डिलाफास की राय के अनुसार मुर्दरिसों की तादाद और तनख्वाह बढ़ाये। किसी मुदर्रिस की तनख्वाह पन्द्रह रुपये से कम न रहनी चाहिए, और कोई मुदर्रिस नौकर न रखा जाना चाहिए जिसने उर्दू और हिन्दी मिडिल की सनद न हासिल की हो और पढाने के ढंग का जानकार न हो। और कोई मदरसा ऐसा न रहना चाहिए जिसमें कम से कम दो मुदर्रिस न हों। तभी तालीम की हालत सुधर सकती है। इसमें कोई शक नहीं कि इन सब तरक्कियों के लिए बहुत रकम की जरूरत है मगर कौम की तालीम एक ऐसा मसला है जिस पर कितना ही खर्च हो, उसे बेकार नही कहा जा सकता। पिछले साल संयुक्त प्रान्त मे उन्नीस लाख आरम्भिक शिक्षा में खर्च हुआ और औसत के हिसाब से प्रति छात्र साढ़े तीन आने। यह औसत दूसरे सभ्य देशों के मुकाबिले मे बहुत ही कम है। क्या सरकार ऐसे पवित्र काम के लिए पचास लाख सालाना भी खर्च नहीं कर सकती? रुपये की कमी एक ऐसा बहाना है जो गवर्नमेंण्ट के लिए कभी सच्चा नही कहा जा सकता। गवर्नमेण्ट के साधन असीम हैं, और इतनी रकम वह बड़ी आसानी से खर्च कर सकती है। जब लड़ाई के खर्च इतने ज़ोरों से साल-ब-साल बढ़ते चले जाते हैं, अफ़सरों के ऐश और सहूलतों पर रुपया कौड़ियों की तरह लुटाया जा रहा है तो ग़रीबी या तंगदस्ती का हीला कभी यक़ीन करने के काबिल नही ठहर सकता। यह भी गवर्नमेंण्ट की एक चालाकी है कि उसने डिस्ट्रिक्ट बोर्डों पर शिक्षा का बोझ डालकर अपने को अलग कर लिया और अब 'एक जंजाल से और छुट्टी मिली' के तरीक़े पर अमल कर रही है। बोर्ड कहाँ से रुपया लगायें जब प्राविशियल गवर्नमेंण्ट अपने मुकर्रर किये हुए हिस्से को सख्ती से वसूल करती चली जाती है। पिछले दो-तीन वर्षों से हरेक जिले में मास्टरों को पढ़ाने का ढंग सिखाने के लिए दो-तीन मदरसे क़ायम किये गये हैं। हरेक मदरसे में सालाना छः मुर्दरिसों की तालीम होती है और सनद हासिल करने के बाद वह सरकारी मदरसों में नौकर रक्खे जाते हैं। इस मामले में भी सरकार ने ग़लती की है। अब मदरसों में मास्टर एक नार्मल स्कूल का सनदयाफ्ता होता है जिनकी तनख्वाह पन्द्रह रुपये माहवार होती है। जाहिर है कि जो आदमी खुद मिडिल तक तालीम पाये हुए हो वह मिडिल पास मुदर्रिसो को पढाने का ढंग क्या सिखायेगा? हकीकत में यह रुपया बिलकुल बर्बाद होता है। बहुत अच्छा होता अगर एक-एक जिले में ऐसे तीन-तीन मदरसो के बजाय सिर्फ़ एक मदरसा होता और उसमें इलाहाबाद के ट्रेनिंग कालेज का सनदयाफ्ता सीनियर या जूनियर आदमी तालीम देता। यह अंग्रेजी तालीमयाफ्ता होने और तालीम के उसूलों का जानकार होने के

ही क्या ! उनमे कम से कम तीन चौथाई ऐसे है, जिन्हे सरकार चार रुपये
माहवार इमदाद देती है और उसमें एक आना मनीआर्डर का महसूल कट जाता है,
तीन रुपये पन्द्रह आने में कौन महीना भर दर्दसरी गवारा करेगा । शहरों में
कहारों को तनख्वाहें छः और सात रुपये माहवार हैं बल्कि अक्सर तो इससे भी
ज्यादा । मामूली मजदूर चार आने पैसे रोज़ कमा लेता है । मगर गरीब मुदर्रिस
इनसे भी ज़लील समझा जाता है । मजबूरन या तो वह गरीब खेती की तरफ
चला जाता है या सरकारी क़ायदे के खिलाफ़ पाव आने की जगह एक आना
या इससे ज्यादा फीस लेना शुरू करता है। इसका नतीजा यह है कि लड़को की
तादाद में बढती नहीं होने पाती । बहुत से इमदादी मदरसे तो सिर्फ इसलिए
कायम हैं कि एक गरीब आदमी तीन-चार रुपये घर बैठे पा जाता है । फ़र्ज़ी
लडकों के नाम लिख लिये जाते है और जब कोई मुआइना करने वाला अफ़सर
पहुँच जाता है, तो थोड़े से लड़के इधर-उधर से बटोर कर दिखा दिये जाते है ।
वेतन का तो यह हाल है । अब यह देखिए कि एक मुदर्रिस के सर काम का
कितना बोझ लादा जाता है । आम तौर पर लोअर प्राइमरी में एक मुदर्रिस
रहता है और प्राइमरी मदरसे में दो या तीन । गौर कीजिए कि एक मुदर्रिस
चार दर्जों की तालीम क्योंकर दे सकता है । मदरसों के एक इंसपेक्टर साहब
बहुत सही तौर पर पूछते हैं कि एक आदमी दर्जा अलिफ के पैंतीस, दर्जा बे के
पन्द्रह, दर्जा अव्वल के सात, दर्जा दोयम के पाँच लड़कों की पढ़ाई की देखभाल
क्योंकर कर सकता है । अपर प्राइमरी मदरसो में दो-दो, तीन-तीन दर्जे एक-एक
आदमी के सिपुर्द रहते हैं । इसका लाज़मी नतीजा यह होता है कि मुदर्रिस किसी
दर्जे को भी ठीक से नही पढा सकता । लडके साल-साल भर से पढ़ने आते है
मगर अभी हर्फ़ लिखना भी नहीं आया । माँ-बाप देखते है कि जब उसका
मदरसे जाना न जाना बराबर है तो घर ही पर क्यों न रहे, ताकि कुछ घर का
काम-काज ही सम्हाले । नार्मल स्कूलों से जो लोग पढ़ाने का तरीका सीखकर
आते हैं, वह भी मदरसों में आकर अपना सब तरीका भूल जाते हैं । बेचारे क्या
करें, वहाँ उन्हें एक वक्त एक दर्जे की तालीम का सबक़ दिया गया । यहाँ उन्हें
एक वक़्त में चार दर्जे पढ़ाने को मिले । उन उसूलों पर क्योंकर अमल करें ।
एक दर्जे के पढ़ाने में लगे तो दूसरे दर्जे को हिसाब दे दिया, किसी दर्जे को इमला,
किसी दर्जे को भूगोल । आँख तो एक ही है कैसे इमले को सुधारे, कैसे हिसाब
समझाये, कैसे ठीक ढंग से भूगोल की शिक्षा दे, ग़रज़ यह कि हड़बोंग सा मचने
लगता है । लड़के शैतान, मुदर्रिस को मशगूल देखा तो धौल-धप्पा शुरू किया ।
इसलिए सरकार अगर सचमुच शिक्षा की उन्नति चाहती है, सच्ची उन्नति,

कागजी और नुमाइशी नहीं, तो मिस्टर डिलाफ़ास की राय के अनुसार मुदर्रिसों की तादाद और तनख्वाह बढाये। किसी मुदर्रिस की तनख्वाह पन्द्रह रुपये से कम न रहनी चाहिए, और कोई मुदर्रिस नौकर न रखा जाना चाहिए जिसने उर्दू और हिन्दी मिडिल की सनद न हासिल की हो और पढाने के ढंग का जानकार न हो। और कोई मदरसा ऐसा न रहना चाहिए जिसमें कम से कम दो मुदर्रिस न हों। तभी तालीम की हालत सुधर सकती है। इसमें कोई शक नहीं कि इन सब तरक्क़ियों के लिए बहुत रकम की ज़रूरत है मगर क़ौम की तालीम एक ऐसा मसला है जिस पर कितना ही खर्च हो, उसे बेकार नही कहा जा सकता। पिछले साल संयुक्त प्रान्त में उन्नीस लाख आरम्भिक शिक्षा मे खर्च हुआ और औसत के हिसाब से प्रति छात्र साढ़े तीन आने। यह औसत दूसरे सभ्य देशों के मुकाबिले में बहुत ही कम है। क्या सरकार ऐसे पवित्र काम के लिए पचास लाख सालाना भी खर्च नही कर सकती? रुपये की कमी एक ऐसा बहाना है जो गवर्नमेण्ट के लिए कभी सच्चा नही कहा जा सकता। गवर्नमेण्ट के साधन असीम है, और इतनी रकम वह बड़ी आसानी से खर्च कर सकती है। जब लड़ाई के खर्च इतने ज़ोरों से साल-ब-साल बढ़ते चले जाते है, अफ़सरों के ऐश और सहूलतों पर रुपया कौडियों की तरह लुटाया जा रहा है तो गरीबी या तंगदस्ती का हीला कभी यकीन करने के क़ाबिल नही ठहर सकता। यह भी गवर्नमेण्ट की एक चालाकी है कि उसने डिस्ट्रिक्ट बोर्डों पर शिक्षा का बोझ डालकर अपने को अलग कर लिया और अब 'एक जंजाल से और छुट्टी मिली' के तरीक़े पर अमल कर रही है। बोर्ड कहाँ से रुपया लगायें जब प्राविंशियल गवर्नमेण्ट अपने मुकर्रर किये हुए हिस्से को सख्ती से वसूल करती चली जाती है। पिछले दो-तीन वर्षों से हरेक जिले में मास्टरों को पढ़ाने का ढंग सिखाने के लिए दो-तीन मदरसे क़ायम किये गये है। हरेक मदरसे में सालाना छः मुदर्रिसों की तालीम होती है और सनद हासिल करने के बाद वह सरकारी मदरसों में नौकर रक्खे जाते है। इस मामले में भी सरकार ने ग़लती की है। अब मदरसों में मास्टर एक नार्मल स्कूल का सनदयाफ्ता होता है जिसकी तनख्वाह पन्द्रह रुपये माहवार होती है। जाहिर है कि जो आदमी खुद मिडिल तक तालीम पाये हुए हो वह मिडिल पास मुदर्रिसो को पढ़ाने का ढंग क्या सिखायेगा? हकीकत में यह रुपया बिलकुल बर्बाद होता है। बहुत अच्छा होता अगर एक-एक ज़िले में ऐसे तीन-तीन मदरसों के बजाय सिर्फ़ एक मदरसा होता और उसमें इलाहाबाद के ट्रेनिंग कालेज का सनदयाफ्ता सीनियर या जूनियर आदमी तालीम देता। वह अंग्रेजी तालीमयाफ्ता होने और तालीम के उसूलों का जानकार होने के

ही क्या ! उनमें कम से कम तीन चौथाई ऐसे है, जिन्हें सरकार चार रुपये माहवार इमदाद देती है और उसमें एक आना मनीआर्डर का महसूल कट जाता है, तीन रुपये पन्द्रह आने में कौन महीना भर दर्दसरी गवारा करेगा। शहरों में कहारों की तनख्वाहें छः और सात रुपये माहवार हैं बल्कि अक्सर तो इससे भी ज्यादा। मामूली मजदूर चार आने पैसे रोज़ कमा लेता है। मगर गरीब मुदर्रिस इनसे भी जलील समझा जाता है। मजबूरन या तो वह गरीब खेती की तरफ चला जाता है या सरकारी कायदे के खिलाफ पाव आने की जगह एक आना या इससे ज्यादा फीस लेना शुरू करता है। इसका नतीजा यह है कि लड़कों की तादाद मे बढती नही होने पाती। बहुत से इमदादी मदरसे तो सिर्फ इसलिए कायम है कि एक ग़रीब आदमी तीन-चार रुपये घर बैठे पा जाता है। फ़र्जी लड़कों के नाम लिख लिये जाते हैं और जब कोई मुआइना करने वाला अफ़सर पहुँच जाता है, तो थोड़े से लड़के इधर-उधर से बटोर कर दिखा दिये जाते हैं।

वेतन का तो यह हाल है। अब यह देखिए कि एक मुदर्रिस के सर काम का कितना बोझ लादा जाता है। आम तौर पर लोअर प्राइमरी में एक मुदर्रिस रहता है और प्राइमरी मदरसे में दो या तीन। गौर कीजिए कि एक मुदर्रिस चार दर्जों की तालीम क्योंकर दे सकता है। मदरसों के एक इंसपेक्टर साहब बहुत सही तौर पर पूछते हैं कि एक आदमी दर्जा अलिफ के पैंतीस, दर्जा बे के पन्द्रह, दर्जा अव्वल के सात, दर्जा दोयम के पाँच लडको की पढ़ाई की देखभाल क्योंकर कर सकता है। अपर प्राइमरी मदरसों में दो-दो, तीन-तीन दर्जे एक-एक आदमी के सिपुर्द रहते है। इसका लाजमी नतीजा यह होता है कि मुदर्रिस किसी दर्जे को भी ठीक से नहीं पढ़ा सकता। लडके साल-साल भर से पढ़ने आते हैं मगर अभी हरूफ लिखना भी नही आया। माँ-बाप देखते है कि जब उसका मदरसे जाना न जाना बराबर है तो घर ही पर क्यों न रहे, ताकि कुछ घर का काम-काज ही सम्हाले। नार्मल स्कूलों से जो लोग पढ़ाने का तरीक़ा सीखकर आते हैं, वह भी मदरसों मे आकर अपना सब तरीका भूल जाते है। बेचारे क्या करें, वहाँ उन्हें एक वक्त एक दर्जे की तालीम का सबक दिया गया। यहाँ उन्हें एक वक़्त में चार दर्जे पढाने को मिले। उन उसूलों पर क्योंकर अमल करें। एक दर्जे के पढ़ाने में लगे तो दूसरे दर्जे को हिसाब दे दिया, किसी दर्जे को इमला, किसी दर्जे को भूगोल। आँख तो एक ही है कैसे इमले को सुधारे, कैसे हिसाब समझाये, कैसे ठीक ढंग से भूगोल की शिक्षा दे, गरज़ यह कि हुड़दंग सा मचने लगता है। लड़के शैतान, मुदर्रिस को मशगूल देखा तो धौल-धप्पा शुरू किया।

इसलिए सरकार अगर सचमुच शिक्षा की उन्नति चाहती है, सच्ची उन्नति,

कागजी और नुमाइशी नही, तो मिस्टर डिलाफास की राय के अनुसार मुदर्रिसों की तादाद और तनख्वाह बढाये। किसी मुदर्रिस की तनख्वाह पन्द्रह रुपये से कम न रहनी चाहिए, और कोई मुदर्रिस नौकर न रखा जाना चाहिए जिसने उर्दू और हिन्दी मिडिल की सनद न हासिल की हो और पढाने के ढंग का जानकार न हो। और कोई मदरसा ऐसा न रहना चाहिए जिसमें कम से कम दो मुदर्रिस न हों। तभी तालीम की हालत सुधर सकती है। इसमें कोई शक नही कि इन सब तरक्कियों के लिए बहुत रकम की जरूरत है मगर कौम की तालीम एक ऐसा मसला है जिस पर कितना ही खर्च हो, उसे बेकार नही कहा जा सकता। पिछले साल संयुक्त प्रान्त मे उन्नीस लाख आरम्भिक शिक्षा में खर्च हुआ और औसत के हिसाब से प्रति छात्र साढ़े तीन आने। यह औसत दूसरे सभ्य देशों के मुकाबिले मे बहुत ही कम है। क्या सरकार ऐसे पवित्र काम के लिए पचास लाख सालाना भी खर्च नहीं कर सकती? रुपये की कमी एक ऐसा बहाना है जो गवर्नमेंट के लिए कभी सच्चा नही कहा जा सकता। गवर्नमेंट के साधन असीम है, और इतनी रकम वह बड़ी आसानी से खर्च कर सकती है। जब लड़ाई के खर्च इतने जोरों से साल-ब-साल बढ़ते चले जाते है, अफ़सरों के ऐश और सहूलतों पर रुपया कौड़ियों की तरह लुटाया जा रहा है तो ग़रीबी या तंगदस्ती का हीला कभी यकीन करने के क़ाबिल नहीं ठहर सकता। यह भी गवर्नमेंट की एक चालाकी है कि उसने डिस्ट्रिक्ट बोर्डों पर शिक्षा का बोझ डालकर अपने को अलग कर लिया और अब 'एक जंजाल से और छुट्टी मिली' के तरीके पर अमल कर रही है। बोर्ड कहाँ से रुपया लगायें जब प्राविंशियल गवर्नमेंट अपने मुकर्रर किये हुए हिस्से को सख्ती से वसूल करती चली जाती है। पिछले दो-तीन वर्षों से हरेक ज़िले में मास्टरों को पढ़ाने का ढंग सिखाने के लिए दो-तीन मदरसे क़ायम किये गये है। हरेक मदरसे में सालाना छः मुदर्रिसों की तालीम होती है और सनद हासिल करने के बाद वह सरकारी मदरसों में नौकर रक्खे जाते है। इस मामले में भी सरकार ने गलती की है। अब मदरसों में मास्टर एक नार्मल स्कूल का सनदयाफ्ता होता है जिसकी तनख्वाह पन्द्रह रुपये माहवार होती है। जाहिर है कि जो आदमी खुद मिडिल तक तालीम पाये हुए हो वह मिडिल पास मुदर्रिसो को पढ़ाने का ढंग क्या सिखायेगा? हकीकत में यह रुपया बिलकुल बर्बाद होता है। बहुत अच्छा होता अगर एक-एक जिले में ऐसे तीन-तीन मदरसों के बजाय सिर्फ एक मदरसा होता और उसमें इलाहाबाद के ट्रेनिंग कालेज का सनदयाफ्ता सीनियर या जूनियर आदमी तालीम देता। वह अंग्रेजी तालीमयाफ्ता होने और तालीम के उसूलों का जानकार होने के

कारण मुदर्रिसों की तालीम ज्यादा खूबी से कर सकता।

कुछ तो रुपये की कमी है और कुछ बेजा खर्च। कभी-कभी सरकार ने दो-चार लाख ज्यादा दिया भी तो वह इन्सपेक्टर और डायरेक्टरों और मैं और तू के बंटि-बखरे मे पड़ जाता है और मुदर्रिस ज्यों का त्यों भूखा रह जाता है। इस साल तीन इन्सपेक्टर और बढाये गये जिसके माने यह है कि चालीस हज़ार रुपये का खर्च और बढ गया। दुर्भाग्य से सरकार का खयाल है कि मुआइना ज्यादा होना चाहिए चाहे तालीम हो या न हो। मुआइने पर रुपया खर्च किया जाता है मगर तालीम की खबर नहीं ली जाती। पिछले साल मिस्टर चौधरी ने बंगाल में वहाँ की गवर्नमेण्ट पर एक एतराज़ किया था कि तालीम के मुकाबिले में मुआइने पर ज्यादा खर्च किया गया। यही एतराज़ गालिबन यहाँ भी किया जा सकता है। गवर्नमेण्ट कब यह समझेगी कि मुआइना कभी तालीम की जगह नही ले सकता।

उस पर से आफत यह है कि मुदर्रिसो के सर काम का इतना बड़ा बोझ भी काफी नहीं समझा जाता। कम से कम पच्चीस फ़ी सदी हल्केबन्दी मदरसे ऐसे है जिनमें मुदर्रिस तालीम के अलावा डाकखाने का काम भी किया करते है। इस अतिरिक्त काम के लिए उन्हें तीन रुपये से लेकर पाँच-छः रुपये तक मिलते है। चूंकि बोर्ड जानती है कि मुदर्रिसो को सरकार से काफी तनख्वाह नही मिलती इसलिए वह उन्हें डाकखानों का काम हाथ में लेने से रोकने की कोशिश नही करती। बल्कि अक्सर मुदर्रिसो की कारगुज़ारियों का पुरस्कार इसी पोस्टल अलाउंस की शकल में दिया जाता है। गवर्नमेण्ट की यह कंजूसी तालीम के हक मे जितनी नुकसानदेह है उसका अंदाज़ा करना मुश्किल है। डाकखाने का काम रोज-ब-रोज ज्यादा होता जाता है। मुदर्रिस इस काम के लिए कोई खास वक्त मुकर्रर नही कर सकता। देहात के जमीदार और काश्तकार जिस वक्त फ़ुरसत पाते है, मुदर्रिस के पास पहुँच जाते है, और गरीब मुदर्रिस को उनकी दिलजोई करते ही बन पडती है। अगर वह क़ायदे बघारने लगे तो जमीदार साहब नाराज़ हो जायें, पोस्टमास्टर जनरल के यहाँ शिकायत कर बैठें, या मुदर्रिस की लान-तान करना शुरू करें और उसकी हस्ती खतरे मे डाल दें। इसलिए वह जिस वक्त आ जाते है, मुदर्रिस को उनका काम करना पड़ता है। यह सिलसिला सवेरे से शाम तक जारी रहता है और चूंकि मुदर्रिस को भी डाकखाने के काम से कुछ जाती फ़ायदा हो रहता है वह इस बेवक़्त आने को बेजा नही ख़याल करता। लगान के फ़सल में एक-एक दिन कई-कई सौ के मनीआर्डर आ जाते हैं, और हरेक मनीआर्डर पर मुदर्रिस को कुछ आने पैसे मिल जाते हैं। यह

बहुत स्वाभाविक बात है कि मुदर्रिस जैसी छोटी हैसियत का आदमी जाती फ़ायदे के इन मौक़ों को हाथ से न जाने दे। अफसोस की बात है कि हमारी गवर्नमेण्ट की निगाहों में हमारी शिक्षा का कोई महत्व नहीं।

दूसरी बड़ी जरूरत पाठ्यक्रम मे सुधार करने की है। इस प्रश्न पर न शिक्षा विभाग और न गवर्नमेण्ट कोई पक्की राय कायम कर सकी, कोई कुछ कहता है और कोई कुछ। कुछ लोगों का खयाल है कि आरम्भिक शिक्षा का उद्देश्य सिर्फ़ यह होना चाहिए कि लड़का अक्षर पहचानने लग जाय और कुछ मोटा हिसाब जान लें। दूसरी जमात का यह खयाल है कि लड़के की आरम्भिक शिक्षा इस ढंग पर हो कि उसे आगे चलने मे मदद मिले। हमारे खयाल में दोनों रायें एक-दूसरे की विरोधी है। जिस शिक्षा को हम आरम्भिक शिक्षा कहते हैं वह देहातों के लिए आरम्भिक शिक्षा नही है बल्कि नब्बे फ़ी सदी लड़कों के लिए वही अंतिम शिक्षा है। अपर प्राइमरी पास करने के लिए औसतन छः वर्ष लगते हैं, मगर मुश्किल तो यह है कि छात्रों का दो तिहाई हिस्सा अपर प्राइमरी दर्जे तक भी नही पहुँचने पाता, लोअर प्राइमरी दर्जे तक ही उसकी शिक्षा का अन्त हो जाता है। इसलिए जरूरी और बहुत जरूरी है कि हमारी आरम्भिक शिक्षा का पाठ्यक्रम ऐसा स्थिर किया जाय कि चार वर्ष तक पढ़ने के बाद लड़का अपनी जरूरतों के लिए काफ़ी तौर पर शिक्षा पा जाय। एक कलक्टर साहब बहुत सही लिखते हैं कि 'हल्केबंदीवाले मदरसों के लगभग तमाम लड़के मदरसा छोड़ने के बाद बिन-पढ़े लड़कों की जमात में जा मिलते है। शिक्षा का कोई दिखाई पड़नेवाला प्रभाव उन पर नहीं पाया जाता और चूँकि उनकी शिक्षा नाममात्र के लिए होती है, वह थोड़े ही दिनों में सब कुछ भुला बैठते हैं।'

हमारा खयाल है कि अपर प्राइमरी दर्जे की पढाई अगर जरा और व्यापक कर दी जाय तो किसानों की जरूरतों के लिए काफ़ी है। रीडरें जो इस वक्त चल रही है, भाषा की दृष्टि से सब निकम्मी हैं। उनके पढ़ने से लड़के मामूली बोलचाल के सिवा न तो हिन्दी भाषा जानते है और न उर्दू। उनकी भाषा का सुधार होना चाहिए ताकि लड़के रामायण तो समझ लें। व्याकरण की कोई जरूरत नही, उसे खारिज कर देना चाहिए। भूगोल की शिक्षा काफ़ी है। हिसाब में भी कुछ कसर नही। अमली सवालों की मश्क ज्यादा होना चाहिए। ड्राइंग व्यर्थ है। उसके बदले तन्दुरुस्ती के बारे में एक छोटी सी प्राइमर होनी चाहिए और भाषा के व्याकरण की जगह पर खेती के कुछ उसूल सिखाये जाने चाहिए। इस वक्त चिट्ठी-पत्री का तरीका नही सिखाया जाता। यह एक बहुत जरूरी चीज है। इसका भी कुछ प्रबन्ध होना चाहिए। और तब आरम्भिक शिक्षा का

मसला गोया हल हो जायगा। यह खयाल रहे कि यह सब कुछ सिर्फ चार सालों का कोर्स है और जब तक कि मुदर्रिसों की तादाद में उचित वृद्धि न की जाय यह नतीजे इतने कम समय मे नहीं हासिल हो सकते। मगर यह बात निःसंकोच कही जा सकती है कि इस कोर्स को खतम करने के लिए चार साल की मुद्दत हरगिज़ कम नही। जनसाधारण में शिक्षा के लोकप्रिय न होने का एक बड़ा कारण यह है कि लडके वर्षों पढते रहते हैं और कुछ नतीजा नहीं निकलता। इसके लिए मास्टरों की कमी, उनके पास उचित योग्यता का न होना और शिक्षा के पाठ्यक्रम में खामी तीनों जवाबदेह हैं।

शिक्षा के लिए तीसरी जरूरत ठीक मकान की है। आम तौर पर मदरसों की इमारती हालत बेहद अफ़सोसनाक है। तहसीली मदरसों में तो खैर कही-कही पक्के मकान बन गये हैं मगर लोअर प्राइमरी और प्राइमरी मदरसों की हालत बहुत रद्दी है। उन्हें देखकर मवेशीखाने या अनाथालय का खयाल पैदा होता है। दीवारें पुरानी, दरवाज़े टूटे हुए, छतें गिरी हुई, ज़मीन का फ़र्श कच्चा। यहां भी रिश्वत और ग़बन की गर्म-बाज़ारी है। अगर किसी निर्माण के लिए हज़ार रुपया मंजूर हुआ है तो यह यकीनी बात है कि कम-से-कम-आधी रकम जरूर बीच की मंज़िलें तय करने में खर्च हो जायगी। जिम्मेदार अफ़सरों मे लाज-शरम की भावना ऐसी ठंडी, हो गई है कि इस अच्छे काम की अमानत में भी ख़यानत करने से वह बाज नही आते। एक तो बोर्डो की गरीबी, उस पर मंजूरशुदा रकम की यह नोच-खसोट मदरसों की हालत को बहुत ही बुरा बनाये हुए है। अक्सर बोर्ड की तरफ़ से मदरसों के लिए इमारत भी नहीं होती। अगर गाँव में कोई समझदार आदमी हुआ तो उसने अपने दरवाजे पर या तो कोई झोपड़ा डलवा दया था, अपने गऊशाले में एक टाट बिछाने की जगह दे दी। मुदर्रिस और मदरसे पर इतना एहसान करके वह अपनी निगाहों मे हातिम बन बैठता है। ज़ाहिर है कि ऐसी जगहो में शिक्षा की ओर जरा भी ध्यान नही दिया जा सकता। ज़मीदार साहब दरवाज़े पर असामियों को लेकर बैठ जाते हैं और बुलन्द आवाज में फ़रमाते हैं कि डिप्टी साहब ने मुझसे यह सवाल किया तो मैंने उसका यह जवाब दिया और मुद्दालेह के वकील को यो लाजवाब कर दिया। उपस्थित लोग कान लगाये उनकी बातें सुन रहे हैं। क्योंकर मुमकिन है कि लड़के का ध्यान इस तरफ़ न खिंच जाये। लडकों में ध्यान जमाने को योग्यता यों भी कम होती है और जब उस ध्यान को हटाने के लिए कोई हीला हाथ आ जाये तो फिर पूछना ही क्या है। यह तो हुआ उन मौज़ों का हाल जहाँ के ज़मीन्दार साहब ज़रा उदार हृदय हैं। जिन गाँवों में ऐसे आदमी नहीं हैं वहाँ का हाल तो ऐसा है कि क्या

कहें। मुदर्रिस पेड के नीचे बैठ जाता है और उस खुली हुई जगह में जाड़े की सर्दी और ग्रीष्म की गर्मी सब झेल डालता है। ऐसी हालत मे वह मदरसा आस-पास के लोगों मे मक़बूल नही होने पाता और शिक्षा के फैलने में रुकावट डालता है। जब तक कि हरेक मदरसे के लिए सरकारी इमारत न हो जाय शिक्षा के ढंग में सुधार होना बहुत मुश्किल है क्योंकि मुदर्रिस आम लोगों के सामने हँसी और मज़ाक के डर से शिक्षा के बेहतरीन तरीकों पर अमल नहीं कर सकता।

हमारी शिक्षा का तो यह हाल है और हमारे पबलिक काम करने वाले इन मसलों की तरफ़ से बिलकुल गाफ़िल बैठे हुए हैं। कितने ऐसे पत्रकार या रिजोल्युशन पास करने वाले वकील है, जिन्होंने किसी ज़िले मे दौरा करके।यह पता लगाया हो कि कितने मदरसों में इमारत है और कितनों में नहीं। डायरेक्टर साहब की रिपोर्ट से ज़ाहिर नहीं होता कि फी सदी कितने मदरसे सरकारी इमारत पर गर्व कर सकते है। डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के मेम्बर साहबान जैसे लायक और तालीमयाफ्ता होते हैं उनसे यह उम्मीद करना कि इन मसलों पर वह कुछ कर सकते है, एक बेकार की उम्मीद है।

—ज़माना, मई-जून सन् १६०६

ज़ुलेख़ा

फ़ारसी हुस्न-ओ-इश्क़ की दुनिया में ज़ुलेख़ा को जो आम शोहरत हासिल है वह बयान की मुहताज नही। उसकी जिन्दगी हुस्न-ओ-इश्क की एक लाजवाब और दिलकश दास्तान है। एक बादशाह के महल में पैदा हुई, लाड़-प्यार में पली और बहार आते ही इश्क में कैद हो गई। फिर मुद्दत तक मुसीबतें झेली, शहज़ादी से फ़कीर बनी, सब कुछ इश्क में लुटा दिया मगर लगातार नाकामियों पर भी मुहब्बत की गली न छोड़ी। कभी-कभी माशूक की बेवफाई और दुनिया के तानों से मजबूर होकर अपने माशूक पर सख्तियाँ भी की, मगर यह भी अथाह मुहब्बत का तकाज़ा था। इस इश्क़ के खंजर की घायल के नाम को फ़ारसी के अमर कवि जामी ने अमर बना दिया है। उसके सौन्दर्य की तारीफ यों की है—

कफ़े राहत दहे हर मेहनत अंदेश
निहादा मरहमे बर हर दिले रेश।

उसका हाथ परीशान को आराम पहुँचाता और दिल के ज़ख्म पर मरहम रखता था—

मियानश मूए, बल कज मूए नीमे
जे बारीकी बरद अज़ मूए बीमे।

उसकी कमर क्या थी, बाल थी, बल्कि बाल से भी आधी थी। बारीकी में उसे आधा बाल भी कहते डर लगता है—

सहीसर्वां हवादारीश करदे
परी-रूयाँ परस्तारीश करदे।

खुबसूरत लौंडियाँ उसकी ख़िदमत करतीं और परी जैसी सूरत वाली उसको पूजती थी।

शुरू जवानी में इश्क की घातें उस पर होने लगती है मगर यह इश्क माशूक के देखने से नहीं पैदा होता बल्कि आम कायदे के खिलाफ वह चैन की नींद सो रही थी कि अचानक—

दर आमद नागहश अज दर जवाने
चेमी गोयम जवाने, नै कि जाने।

उसके दरवाज़े से एक जवान आया, वह जवान क्या आया बल्कि जान आया।

हुमायूँ पैकरे अज आलमे नूर
बबाग़े खुल्द करदा ग़ारते हूर।

सर से पाँव तक एक मुबारक नूर जिसने जन्नत के बाग को हूरों को लूट लिया। इस खूबसूरत जवान को देखते ही जुलेखा पर उसकी खूबसूरती का जादू चल गया—

गिरिफ्तज़ क़ामतश दर दिल खयाले
निशांद अज दोस्ती दर दिल निहाले।

उसके सजीले बदन का खयाल दिल मे बैठ गया और उसने दिल मे दोस्ती का बीज बो दिया—

जे रूयश आतशी दर सीना अफ़रोख्त
वज़ाँ आतश मताये सब्रो-दी सोख्त।

उसके आग-जैसे चेहरे ने दिल मे आग लगा दी और उस आग से धरम और धीरज की पूंजी जल गई। मगर जुलेखा यह जलन, यह दिल की आग सहती है लेकिन किसी पर जाहिर नही करती। सखियो-सहेलियों से हँसती-बोलती है मगर दिल का भेद नही कहती—

निहाँ मी दाश्त राजश दर दिले तंग
चू काने लाल लाल अंदर दिले संग।

ये भेद वह अपने दिल मे ऐसे छुपाये रहती थी जैसे पत्थर अपने दिल मे लाल छिपाये रहता है—

फरो मी खुर्द चूँ गुचा बदिल खूँ
न मी दाद अज दुरूँ यक शिम्मा बेरूँ।

वह अपने गम में दिल ही दिल मे खून पीती थी मगर दिल का हाल कली की तरह दिल ही में बंद रखती थी, जरा भी जाहिर न करती थी—

नज़र बर सूरते अगियार मीदाश्त
वले पैवस्ता दिल बायार मीदाश्त।

नजर गैरो पर रखती थी और दिल में माशूक का खयाल।

कभी कभी जब वह जलन से बेचैन हो जाती है तो यार से यों बातें करती है—

कि ऐ पाकीजा गौहर अज चे कानी
कि अज तू दारम ईं गौहर फ़िशानी।

ऐ कीमती मोती, तू किस खान का है, मुझे तुझसे कुछ कहना है।

न मी दानम कि नामत अज़ के पुरसम
कुजा आयम मुक़ामत अज़ के पुरसम।

मैं तेरा नाम नही जानती, किससे पूछूँ। मैं तेरी जगह नही जानती, कहाँ जाऊँ।

मगर यह इश्क का भेद कब छुपता है। जुलेखा ज़बान से कुछ नही कहती मगर उसकी खून बरसानेवाली आँखें और पीली-पीली मूरत यह भेद खोल देती है। गुलाब की-सी सूरत पीले फूल की तरह ज़र्द पड़ जाती है, ठंडी आहें भरती है, लौंडियाँ आपस मे खुसुर-फुसुर करने लगती है। कोई कहती है 'ऊपर का असर है,' कोई कहती है, 'जादू है'। इन्हीं लौंडियों में जुलेखा की एक दाई भी है। इश्क की दास्तानो में ऐसी औरतें बहुत आती हैं मगर इनमें शायद ही किसी का हवाला इस खूबसूरती से चन्द शेरों में दिया गया हो—

अज़ाँ जुमला फ़ुसूंगर दायाए दाश्त

कि अज़ अफ़सूंगरी सरमायाए दाश्त।

उसकी लौंडियों में एक जादूगर दाई भी थी जो अपने जादू-जैसे करतब का खज़ाना रखती थी—

बराहे आशिकी कार आजमूदा

गहे आशिक गहे माशूक बूदा।

वह मुहब्बत के रास्तों को खूब जानती थी। वह कभी आशिक और कभी माशूक बन जाती थी—

बहम वसलत दहे माशूको आशिक

मुआफ़िक साज़ यारे नामुआफ़िक।

वह आशिक और माशूक को मिला देती थी। फिरे हुए दोस्त को सच्चा दोस्त बना देती थी। यह जादूगरनी एक दिन जुलेखा से यह प्यार-भरी बातें करती है—

बगर रफ़्तम तराजे दोश बूदे

चू खुफ़्तम खुफ़्ता दर आगोश बूदे।

मैं चलती थी तो तू मेरे कंधे की शोभा होती थी और जब मैं सोती थी तो तू मेरी गोद में सोती थी—

चू ब नशस्ती बख़िदमत ईस्तादम

चू खुस्पीदी बपायत सर निहादम।

जब तू बैठती थी तो मैं तेरी ख़िदमत में खड़ी हो जाती थी और जब तू सोती थी तो मैं तेरे पाँव पर सिर रख देती थी—

जेमन राजे दिलत पिनहा चे दारी
न खुद बेगाना श्रम जे निसियाँ चे दारी।

तू मुझसे अपने दिल का हाल क्यों छिपाती है। मैं कोई गैर नहीं हूँ। तू भूल कर रही है।

जुलेखा मेहरवान दाई से रो-रोकर अपनी रामकहानी कह सुनाती है मगर दाई या तो आसमान के तारे तोड़ लाने को तैयार थी या यह दास्तान सुनकर बोल उठती है—

वले हर्फे बनवशे हर खयालस्त
के नादानिस्ता रा जुस्तन मुहालस्त।

हाँ, हर तस्वीर के लिए एक खयाल है मगर अनजान को ढूँढना मुश्किल है।

इसके कुछ दिनों वाद जुलेखा एक दिन गम के विस्तर पर पड़ी हुई अपने दिल से फ़रियाद कर रही है कि उसे फिर दोस्त का सुन्दर मुखड़ा दीखता है और वह उसे सपने में देखते ही उसके पाँव पर गिर पड़ती है और अपनी बेचैनी का बयान करती है। उसकी बेचैनी देख कर माशूक या माशूक की तस्वीर यह कहती है—

तुरा अज मा अगर बरसीना दागस्त
न पिन्दारी कजाँ दागम फ़रागस्त।

अगर मेरे इश्क का दाग तेरे सीने पर है तो तू यह न समझ कि मैं इस दाग़ से ख़ाली हूँ—

मराहम दिल बदामे तुस्त दरबन्द
जेदागे इश्के तू हस्तम निशामन्द।

मेरा दिल भी तेरी मुहब्बत के जाल में फँसा हुआ है और तेरे इश्क के दाग की मुझे खबर है।

दोस्त की तस्वीर की यह तड़प जुलेखा के इश्क की आग को और भी भड़का देती है। कुछ दिन और इस तकलीफ में बीतते हैं, फिर तीसरी बार उसे माशूक का दुनिया को जला देनेवाला हुस्न नजर आता है। इश्क के पैदा होने और बढने की यह सूरत मुहब्बत की दास्तानों में बिलकुल निराली है। जुलेखा फिर दोस्त की तस्वीर के पाँव पर गिर पड़ती है और इन शब्दों में उससे मुहब्बत भरी निगाह करने की विनती करती है—

न मी गोयम के दर हश्मत अजीजम
न आखिर मर तुरा कमतर कनीजम।

मैं यह नही कहती कि मेरी शान बादशाह की-सी है। मैं तो तेरी एक

छोटी-सी लौंडी हूँ।

चे बाशद गर कनीजेरा नवाजी
जे बन्दे मेहनतश आजाद साजी।

क्या अच्छा हो कि तू इस लौंडी को अपना ले और दुखों के बन्धन से छुटकारा दे। मगर दूसरी बार की तरह इस खयाली माशूक ने अबकी इस रोने-धोने पर उसकी तसल्ली नहीं की और न अपना दुख जाहिर किया, बस इतना कहा—

अजीजे मिस्रअम व मिस्रम मुकामस्त

मैं मिस्र का (बादशाह-लकब) वजीर हूँ और मिस्र मेरा मुकाम है। इतना ही कहा और ग़ायब हो गया।

शायर ने यहाँ ठोकर खाई है। जब इश्क़ की सूरत बिलकुल खुदा की तरफ से दिल पर जाहिर हुई है तो चाहिये था कि दोस्त की तस्वीर का यह पता सही होता। मगर वाक़यात इसके खिलाफ हैं क्योंकि हजरत यूसुफ़ मिस्र के वजीर न थे। फिर भी जुलेखा को बहुत तसल्ली हो गई। जब माशूक़ का पता मिल गया तो उसे ढूंढ निकालना क्या मुश्किल था। थोड़ी देर के लिए उसका पागलपन दूर हो गया। इधर जुलेखा दोस्त की जुदाई में परेशान थी उधर उसके रूप का सारी दुनिया में चर्चा फैला हुआ था—

सराने मुल्क रा सौदाये ऊ बूद
बबज्मे खुसरवाँ गोगाये ऊ बूद।

देश के सरदारों के सर में उसकी चाह थी और बादशाहों की सभा में उसका चर्चा था।

बहरवक्त आमदे अज शहरयारे
व उम्मीदे विसालश ख्वास्तगारे।

हर वक्त शहर का बादशाह आता और उससे मिलने की इच्छा करता।

जंग, रूम और शाम के बादशाहों ने अपने-अपने राजदूत जुलेखा के बाप शाह तीमूस के पास भेजे मगर मिस्र के अजीज की तरफ से कोई पैगाम न आया। शाह तीमूस ने जुलेखा को अपने सामने बुलाया और प्यार से अपने पास बिठाकर सब बादशाहों के पैगामों का जिक्र किया। मगर जब मिस्र के अजीज का जिक्र न आया तो वह निराश होकर बेद की टहनी की तरह काँपती हुई अपने एकांत में आ बैठी और रो-रोकर कहने लगी—

मरा ऐ काश के मादर नमीजाद
वगर मीजाद कस शीरम नमीदाद।

क्या अच्छा होता कि मुझे मेरी माँ न जनती और अगर जनती तो कोई मुझे दूध न देता—

कयम मन अज़ वुजूदे मन चे ख़ेज़द
वज़ीं वूदे न वूदे मन चे ख़ेज़द।

मैं वह हूँ कि मेरी ज़िन्दगी से क्या हो सकता है। इस ज़िन्दगी के होने से न होती तो क्या नुकसान होता। मजबूर होकर शाह तीमूस ने अज़ीज़े मिस्र को अपनी तरफ़ से पैग़ाम भेजा। अज़ीज़े मिस्र खुशी के मारे फूला न समाया। गरज यह कि जुलेखा बड़ी शान के साथ मिस्र की तरफ़ रवाना हुई। हज़रत जामी ने इस जुलूस का ज़िक्र बहुत फैलाकर और बड़ी आन-बान से किया जिसका ज़िक्र इस फ़ाकेमस्ती और बर्बादी के ज़माने में बेकार है। जुलेखा खुश-खुश चली जा रही थी कि अब कामनाओं के पूरे होने के दिन आये—

शबे ग़म रा सहर ख़ाहद दमीदन
ग़मे हिजराँ बसर ख़ाहद रसीदन।

गम की रात का सवेरा हो जायेगा, विरह का दुख खत्म हो जायेगा।

मगर उसे क्या खबर थी कि जादूगर आसमान उसे सब्ज़ बाग़ दिखा रहा है। अज़ीज़े मिस्र राजधानी से उसके स्वागत के लिए आया हुआ था। जुलेखा ने तम्बू के झरोखे से उसे देखा मगर ज्योंही

जुलेखा कर्द अज़ाँ खीमा निगाहे
बरावुर्द अज़ दिले गमदीदा आहे।

जुलेखा ने तम्बू से एक निगाह की और गम-भरे दिल से एक आह भरकर रह गई।

के वावेला अजब कारेम उफ़्ताद
बसर तापाये दीवारेम उफ़्ताद।

दुहाई है कि मेरा बना-बनाया काम बिगड़ गया और मेरे सर से पाँव तक दीवार गिर पड़ी—

न आनस्त आके अक़्लोहोश मन बुर्द
इनाने दिल बबेहोशेम बसपुर्द।

यह वो नहीं है जिसने मेरी अक्ल और मेरा होश लूटा और मेरे दिल की लगाम पागलपन को सौंप दी—

दरेग़ा बख़्ते सुस्तम सुस्ती आवुर्द
तुलूए अख़्तरम बदबख़्ती आवुर्द।

अफ़सोस है कि मेरी फूटी क़िस्मत और भी फूट गयी और मेरे नसीबे के

नितारे वदनसीबो लाये—

मनम आँ वादवाँ कश्ती शिकस्ता
वरहना वरसरे लौहे नशस्ता ।

मैं कश्ती की फटी हुई पाल हूँ और कश्ती के बदले एक लकड़ी के तख्ते पर हर तरफ़ से खुली हुई बैठी हूँ ।

ख्वायद हरजमा अज जाये मौजम
वरू गह दर हजीजे गहे दर औजम ।

मुझे दरिया की लहरें एक जगह से दूसरी जगह ले जाती हैं। कभी मैं दरिया की गहराई मे चली जाती हूँ और कभी ऊपर आ जाती हूँ—

जिनागह जोर मी आयद पिदीदार
शवम खुर्रम कजू आसाँ वुवद कार ।

कभी जोर की लहर आती है और मुझे दरिया के सतह पर फेंक देती है तो मैं खुश हो जाती हूँ कि अब मेरी मुश्किल आसान हो जायेगी ।

चू नजदीके मन आयद वे दिरंगे
वुवद वहरे हलाकत मन निरंगे ।

फिर वह लहर मेरे पास आती है और मुझे मार डालनेवाला घड़ियाल वन जाती है ।

इसी तरह पेचोताव खाकर उसने बहुत देर तक नाकामी के आँसू बहाये और खुदा के दरबार में दुआ की कि मेरी इज्जत और आबरू का रखवाला तू है। खुदा के दरबार में उसकी दुआ मंजूर हुई और आवाज़ आयी—

के ऐ वेचारा रूये खाक वरदार
कजाँ मुशकिल तुरा आसाँ शवद कार ।

ऐ मजबूर, जमीन पर से सर उठा, तेरी मुश्किल आसान हो जायेगी ।

अजीजे मिस्र मकसूदे दिलत नीस्त
वले मकसूद वेऊहासिलत नीस्त ।

तेरे हृदय का लक्ष्य अजीज़े मिस्र नहीं है मगर उसके विना वह पूरा भी न होगा ।

अजू ख्वाही जमाले दोस्त दीदन
वजू ख्वाही वमकसूदत रसीदन ।

तू उसी के ज़रिये से दोस्त का रूप देखेगी और उसी के ज़रिये से अपने मतलब को पहुँचेगी ।

॥ विविध प्रसंग ॥

मुवादा अज मोहबते ऊ हेच बीमत
कज़ूमानद सलामत क़ुफ्ले सीमत ।

तू उसकी संगत से न डर क्योंकि तू उसके साथ रह कर भी कुँवारी रहेगी ।

इस आवाज़ ने दिल को ताकत पहुँचाई । अब वह अज़ीज़े मिस्र की बेगम थी और अज़ीज़ वहाँ के सरदारों का रईस था । रुपया-पैसा, शान-शौकत और लौंडी-गुलामों की कमी न थी । रंगरेलियों की सभायें गर्म रहती थीं मगर ये सब चीजें ज़ुलेखा के दिल को दुख पहुँचाती थीं । अक्सर रातों को सब सो जाते तो वह ज़ालिम आसमान से शिकायत के दफ़्तर खोल देती ।

चे दानिस्तम बवक़्ते चारासाज़ी
जे खानूमाँ मरा आवारा साज़ी ।

मुझे क्या खबर थी कि मेरे इलाज के वक्त तू मुझे घर से बेघर करके आवारा कर देगा ।

मरा बस बूद दागे बेनसीबी
फ़ुज़ूँ करदी बराँ दर्दे गरीबी ।

मुझे बेनसीबी का दाग ही कुछ कम न था लेकिन तूने परदेस का दुख भी दिखाया ।

उसके सिर पर जड़ाऊ ताज शोभा देता था, उसके रनिवास पर स्वर्ग निछावर था और उसका तख्त जड़ाऊ था मगर जब दिल पर गम का बोझ हो तो ऊपर की टीम-टाम से क्या सुख । इस ढंग से ज़ुलेखा ने अज़ीज़े मिस्र के साथ एक मुद्दत तक उम्र काटी । शायद उसका भेद अज़ीज़े मिस्र पर भी खुल गया था मगर ज़ुलेखा उसको छिपाने की कोशिश करती रही ।

लबश बा खल्क दरगुफ्तार मी बूद
वले जानो दिलश बा यार मी बूद ।

वह लोगों से बातें करती थी लेकिन उसकी जान और दिल अपने माशूक में रहते थे ।

बसूरत बूद बा मरदुम नशस्ता
बमाने अज़ हमाँ खातिर गुसस्ता ।

वह ज़ाहिर में लोगों के साथ बैठती थी लेकिन दिल दोस्त में रहता था ।

इस तरह जब दिन कट जाता और रात की काली बला आ जाती तो वह

खयाले दोस्त रा दर खिलवते राज़
निशांदे ता सहर बर मसनदे नाज़ ।

एकांत में दोस्त के ख़याल को सवेरे तक सामने रखती और

वज़ानूए अदब व नशस्तियश पेश
व अर्ज़े ऊ रसानीदे गमे ख़ेश।

उसके सामने अदब से बैठकर उससे अपना गम बयान करती।

न जाने कितने वर्षों तक वह इस दिल की आग में जलती रही। आख़िर उसकी मुहब्बत में सच्चाई देखकर ख़ुदा को उस पर तरस आया। रंग बदलने-वाला ज़माना उसके लिए अनुकूल हुआ। हज़रत यूसुफ को उनके दुश्मन भाइयों ने डाह के मारे कुएँ में डाल दिया। यह यूसुफ ही थे जिनके रूप का दर्शन जुलेखा को सपने में हुआ था। संयोग की बात, कुछ सौदागरों ने यूसुफ को कुएँ से ज़िन्दा निकाल लिया और उन्हें गुलाम बनाकर बेचने के लिए मिस्र के बाज़ार में लाये। जब यहाँ पहुँचे तो उनके हुस्न का चर्चा कस्तूरी की ख़ुशबू की तरह फैला। जो देखता हैरान रह जाता। धीरे-धीरे मिस्र के बादशाह के कानों तक यह ख़बर पहुँची। उसने अज़ीज़े मिस्र को हुक्म दिया कि जाकर गुलाम को देखो। अज़ीज़ ने उसे देखा तो अचम्भे से उंगलियाँ चबाने लगा और आकर बादशाह से गुलाम की बहुत तारीफ़ की।

इन दिनों जुलेखा को और दिनों से ज़्यादा बेचैनी थी। जब से हज़रत यूसुफ कुएँ में गिरे थे जुलेखा को उनसे दिली लगाव होने की वजह से किसी सूरत चैन नहीं था। एक दिन वह दिल बहलाने के लिए शहर के पास एक जंगल में गयी और आराम की बहुत-सी चीज़ें ले गई मगर वहाँ भी उसका जी न लगा। महल की तरफ़ आ रही थी कि रास्ते में बादशाह के महल के सामने एक भीड़ देखी। यूसुफ़ की तारीफ़ हर आदमी कर रहा था। लोग उनकी मुहब्बत में पागल हो रहे थे। जुलेखा ने भी अपना हाथी रोका और ज्योंही यूसुफ़ पर उसकी निगाह पड़ी उसकी आँखों से एक पर्दा-सा हट गया और बेअख़्तियार दिल से एक ठण्डी आह निकल आयी और वह बेहोश हो गयी। लौंडियों ने यह हालत देखी तो हाथी जल्दी से एकांत में लायी। जुलेखा जब होश में आयी तो दाई ने उसके पागलपन का कारण पूछा। जुलेखा बोली

बगुफ़्त ऐ मेह्रबाँ मादर चे गोयम
के गरदद आफ़ते मन हर चे गोयम।

ऐ मेरी प्यारी माँ, मैं तुझसे क्या कहूँ क्योंकि इसमें हर तरह से मेरी ही परीशानी है।

- दरां मजमां गुलामे रा के दीदी
जे अहले मिस्र वस्फ़ेऊ शनीदी।

॥ विविध प्रसंग ॥

तूने उस भीड में जिस गुलाम को देखा और मिस्रवालों से जिसकी तारीफ सुनी

जे आलम किबलागाहे जानेमन ऊस्त
फिदायश जानेमन जानानेमन ऊस्त ।

मै जिसे चाहती हूँ यह वही है और जिस पर जान निछावर करती हूँ यह वही है

बतन दरतप बदिल दरताव अज़वेम
जे दीदा गर्क खूने नाब अज़वेम ।

मेरे बदन मे बेकरारी और दिल में तडप उमी से है और मेरी आँखें उसी के ग़म में खून रोती हैं

जे खानूमा मरा आवारा ऊ साख्त
दरीं बेचारगी आवारा ऊ साख्त ।

मुझे घर से बेघर उसी ने किया और इस बेबसी मे उसी ने डाला ।

दाई ने जुलेखा की तसल्ली की । उधर मिस्रवालो ने यूसुफ की खरीदारी में अपनी कद्रदानियों का सबूत देना शुरू किया । जो आता मोल बढाता था । जुलेखा को एक एक पल की खबर मिलती थी और वह हर दफा बोली का दुगना कर देती थी । यहाँ तक कि कोई गाहक उसके सामने न ठहर सका । मगर अज़ीज़े मिस्र के पास इतनी दौलत न थी । जो कुछ पूँजी और जवाहिरात उसके खज़ाने मे थे वो उसकी कीमत से आधे भी न थे । अजीज़े मिस्र ने यही बहाना पेश किया लेकिन

जुलेखा दाश्त दुर्जे पुर जे गौहर
न दुर्जे बल्के बुर्जे पुर जे अख्तर ।

जुलेखा के पास एक मोतियों का डब्बा भरा हुआ था । वह मोतियों का डब्बा क्या था बल्कि सितारों की एक बुर्ज थी ।

बहाये हर गुहर जां दुरें मकनूं
खिराजे मिस्र बूदे वल्कि अफ़ज़ूं ।

हर मोती की क़ीमत मिस्र के खिराज के बराबर थी बल्कि उससे भी ज्यादा ।

अज़ीज़े मिस्र ने जब देखा कि यह बहाना नही चला तो कहने लगा कि मिस्र के बादशाह इस गुलाम को अपने गुलामों का सरदार बनाना चाहते हैं । अगर मैं इसे मोल लूँगा तो वह नाराज़ होंगे । जुलेखा ने जवाब दिया

बगुफ्ता रौ सूए शाहे जहाँदार
हके खिदमतगुजारीरा बजा आर।
जुलेखा ने कहा कि बादशाह की खिदमत मे जाओ और यह अर्ज करो
बिगो बर दिल जुजीं बन्दे न दारम
कि पेशे दीदा फ़र्जन्दे न दारम।
कि मेरे औलाद नही है, इसे औलाद
मै इस गुलाम को इसलिए चाहता हूँ
समझ कर अपने पास रक्खूँगा।
सरफ़राजी मरा जी एहतरामम
के आयद जेरे फरमा ईं गुलामम।
मेरी इज्जत इसी में है कि इस लड़के को अपनी गुलामी में रक्खूँ
बबुर्जम अख्तरे ताबिन्दा बाशद
मरा फ़र्जन्द शहरा बंदा बाशद।
यह मेरे बुर्ज का चमकदार सितारा होगा। मेरा बेटा बादशाह का गुलाम
होगा।

आखिर अजीज ने मजबूर होकर जुलेखा को खरीदारी की इजाजत दे दी मगर यह समझ मे नही आता कि जुलेखा यूसुफ को अपना बेटा बनाने की हिम्मत कैसे कर सकी। जुलेखा ने जो सूरत सपने में देखी थी वह बच्चे यूसुफ की नही बल्कि जवान यूसुफ की थी। हाँ, यह हो सकता है कि यूसुफ पर नबी होने की वजह से उम्र का असर न हुआ हो। जुलेखा अपना मतलब पाकर खुश हुई और कुछ दिनों उसकी आराम से बीती। कहती है—

चू बूदम माहीए दर मातमे आब
तपा बर रेगे तुफ्ता अज गमे आब।
जब मै गम के पानी मे मछली की तरह थी और जलती हुई मिट्टी पर जलती
हुई मछली
दर आमद सैले अज अब्रे करामत
बदरिया बुर्द अजा रेगम सलामत।
तेरी मेहरबानी की बाढ़ आयी और मुझे खुशी के दरिया मे ले गई।
के बूदम गुम रहे दर जुल्मते शब
रसीदा जां जे गुमराहेम बरलब।
क्योंकि मै रात के अंधेरे में भटक रही थी और गुमराही तक मेरी जान पहुँच
गई थी।

वरामद अज़ उफ़क रख्शिन्दा माहे
बकूए दौलतम बनुमूद राहे।

क्षितिज से एक चमकता हुआ चांद निकला और उसने मुझे रास्ता दिखा दिया। जुलेखा को अब यूसुफ़ की दिलजोई और खातिरदारी के सिवा दूसरा कोई काम न था।

चू ताजे ज़र ब फ़र्कश निहादे।
निहाँरा बोसाअश बरफ़र्क दादे॥

कभी उसके सर पर जड़ाऊ मुकुट रखती और छुप कर उसका सर चूम लेती

चू पैराहन कशीदे बर तने ऊ
शुदे हमराज़ बा पैराहने ऊ।

कभी उसके कपडे उतारती और उसे नंगा देखती

कमर चूं चुस्त करदे बरमियानश
गुज़श्ते ईं तमन्ना बरज़बानश।

कभी उसकी कमर बांधती तो अपनी जबान से यह इच्छा प्रकट करती

के गर दस्तम कमर बूदे चे बूदे
ज़े वस्लश बहरावर बूदे चे बूदे।

अगर मेरा हाथ तेरी कमर में होता तो क्या होता और अगर मैं एकांत में तुझसे मिलती तो कितना अच्छा होता।

मुसलसल गेसुवश चू शाना कर्दे
मदावाए दिले दीवाना कर्दे।

बार-बार उसके बालों में कंघी कर करके अपने पागल दिल को तसल्ली देती।

ग़मश खुर्दे व ग़म ख्वारीश कर्दे
बखातूनी परस्तारीश कर्दे।

उसका ग़म खाती, खयाल रखती और उसकी सेवा स्त्री की तरह करती।

मगर चूंकि यूसुफ पैग़म्बर के लिए गड़रिया होना जरूरी था, इस आराम में उनका जी न लगा। जुलेखा ने उनके दिल का झुकाव देखा तो उनकी दिलजोई के खयाल से उनके लिए गड़रिये के काम का सामान कर दिया। रेशम की रस्सियाँ बनवाईं, जड़ाऊ लकड़ी तैयार कराई और हज़रत यूसुफ चरवाही करने लगे मगर इश्क का जादू निराला है।

उम्मीदे कामरानी नीस्त दर इश्क़
सफ़ाये ज़िन्दगानी नीस्त दर इश्क़।

॥ जुलेखा ॥

इश्क में दिल की मुराद पाना और साफ जिन्दगी गुजारना मुश्किल है।

जुलेखा बूद यूसुफ़ रा न दीदा
व ख्वाबे ऊ खयाले आरमीदा।

जुलेखा यूसुफ को बिन देखे बेचैन रहती और नींद मे भी उसी का ध्यान रहता।

बजुज़ दीदारश अज़ हर जुस्तजूए
न मीदानिस्त खुद रा आरजूए।

वह सिवाय यूसुफ को देखने के और कोई इच्छा नही रखती थी।

चू शुद अज दीदने ऊ बहरा मंदी
ज़े दीदन ख्वास्त तवए ऊ बलंदी।

जब उसे देखती तो अपनी आत्मा मे एक तरह की खुशी और बलंदी पाती।

ज़े लाले ऊ बबोसा काम गीरद
ज़े सर्वश वा कनार आराम गीरद।

उसके होंठ चूमने और सर गोद मे रखने से आराम महसूस करती।

बले नज्ज़ारगा कामद सुए बाग
ज़े शौके गुल चू लाला सीना बरदाग।

अगर कभी बाग देखने आती तो लाला की तरह अपने दिल पर माशूक का दाग पाती।

न खुस्त अज़रुये गुल दीदन शवद मस्त
ज़े गुल दीदन बगुल चीदन बरुदस्त।

फूलों को देखकर मस्त हो जाती और फूल चुनने लगती। अब जब तक जुलेखा ने यूसुफ़ को न देखा था, सिर्फ़ देखने की इच्छा थी। अब मिलने का शौक़ पैदा हुआ। मगर

जुलेखा बहरे यक दीदन हमी सोख्त
बले यूसुफ ज़े दीदन दीदा बरदोख्त।

जुलेखा यूसुफ को एक नजर देखने के शौक में दिल ही दिल मे जलती थी और यूसुफ़ ने जुलेखा को न देखने के खयाल से आँखें सी ली थीं।

ज़े बीमे फ़ितना सूए ऊ न मी दीद
व चश्मे फ़ितना रुये ऊ न मी दीद।

जुलेखा जब यूसुफ़ को देखती, बुरे खयाल से देखती और उसकी उन पर जो नजर पड़ती बुरी होती। लेकिन यूसुफ की लापरवाही ने जुलेखा को ग़म के भँवर में डाल दिया। फिर उसकी तबीयत मे पागलपन पैदा हो गया। कंघी-

॥ विविध प्रसंग ॥

मोटो से घिन हो गई। मेहरबान दाई ने बड़े प्यार से इस हार्दिक दुख का कारण पूछा। जुलेखा ने अपनी कहानी निराशा के साथ शुरू की और उसे यूसुफ के पास मिलने का संदेशा देकर भेजा। मगर यूसुफ़ का कदम सच्चाई के रास्ते से न डिगा और उन्होंने जवाब दिया।

जुलेखा रा गुलामे ज़र खरीदम
बसा अज़ वै इनायतहा के दीदम।

जुलेखा ने मुझे रुपया देकर मोल लिया है और मुझ पर बडी-बड़ी मेहरबानियाँ की है।

गिलो आबम इमारत कर्दये ऊस्त
दिलो जानम वफ़ा परवर्दये ऊस्त।

मुझे उसने बड़ी मेहरबानी से पाला-पोसा और बनाया-सँवारा है।

अगर उम्रे कुनम नेमत शुमारी
नियारम कर्दन ऊरा हक़ गुज़ारी।

अगर मैं सारी उम्र उसकी मेहरबानियों का हिसाब करूँ तो भी उनका हक अदा नहीं कर सकता।

बफ़रजन्दे अज़ीज़म नाम बुर्दस्त
अमीने खानए खेशम सपुर्दस्त।

मुझे अज़ीजे मिस्र के बेटे का नाम दिया और अपने घर की निगरानी मुझे सौंपी।

नयम जुज मुर्गे आबोदानये ऊ
खयानत चू कुनम दर खानये ऊ।

मैं उसका खिलाया-पिलाया और पाला-पोसा हूँ। उसके घर में डाका कैसे डाल सकता हूँ।

जब दाई के जादू से काम न चला तो जुलेखा खुद सवाल की सूरत बनकर यूसुफ के पास आई और यूसुफ़ से मेहरबानी की भीख माँगी मगर यूसुफ़ ने उसे भी बड़ी समझदारी से जवाब दिया।

खुदावन्दे मजू अज़ बन्दये खेश
बदीं लुत्फ़म मकुन शर्मिन्दए खेश।

ऐ मेरी मालिक, अपने गुलाम से ऐसे काम की उम्मीद न रख और अपनी मेहरबानियो से शर्मिन्दा न.कर।

कियम मन ता तुरा दम साज गरदम
दरी खां बाम्रज़ोज अंबाज गरदम।

॥ जुलेखा ॥

मैं वो नहीं हूँ कि तेरे इस हुक्म को बजा लाऊँ और अज़ीज़ की थाली में शरीक हो जाऊँ।

व बायद बादशह आँ बदा रा कुश्त
कज़ू बायक नमकदां बावें अंगुश्त।

बादशाह को चाहिए कि उस गुलाम को मार डाले जो उसके नमकदान में अपनी उंगली डाले।

यूसुफ़ का जवाब साफ़ और सच्चाई से भरा हुआ था। हयादार औरत को डूब मरने के लिए इशारा बहुत था मगर इश्क ने जुलेखा को अंधा कर दिया था। उसने यूसुफ़ को जब इंसानियत के पर्दे में छुपते देखा तो उस पर्दे को हटा देने की कोशिश शुरू की। उसके पास एक बाग़ था। उसे खूब सजाकर, बहुत सी खूबसूरत लौंडियाँ वहाँ भेजी और यूसुफ़ को भी सैर करने के लिए भेजा। लौंडियों से ताकीद कर दी कि यूसुफ को रिझाने में कोई कसर उठा न रखना और यूसुफ़ को यह दोस्ती-भरी राय दी

अगर मन पेशे तू बर तू हरामम
वज़ी मानी व ग़ायत तल्ख कामम।

अगर मैं तेरे लिए हराम हूँ और तू इसीलिए मुझे बुरी समझता है

बसूए हर के ख्वाही गाम बरदार
ज़े वस्ले हर के ख्वाही काम बरदार।

इनमें से जिसे जी चाहे उससे, जी बहला और अपना मतलब पूरा कर। इन चालों का मतलब यह था कि जब यूसुफ इन लौंडियों में से किसी से अपना मतलब पूरा करने का ख़याल ज़ाहिर करें तो जुलेखा

निशानद ख़ेश रा पिनहा बजायश
खुरद बर अज निहाले दिलरुबायश।

छुपकर उस लौंडी की जगह बैठ जाये और इस तरह अपना मतलब पूरा करे।

इससे साफ ज़ाहिर होता है कि जुलेखा का प्रेम वासना का दूसरा नाम था। मगर उसकी कोई कोशिश कारगर न हुई। यूसुफ ने इन लौंडियों को खुदा की मुहब्बत का ऐसा पाठ पढ़ाया कि वो अपने गंदे ख़याल से हाथ धो बैठीं और जब जुलेखा पिया मिलन की इच्छा लिये हुए वहाँ पहुँची तो लौंडियों को खुदा के सामने सजदे में सर झुकाये पाया। निराश होकर वहाँ से वापस लौटी और रो-रोकर दाई से अपने दिल का दुख सुनाने लगी। दाई ने समझाया, खुदा की मेहरबानी से आप भी एक ही सुन्दरी हैं। आप अपने ढंग और अदाओं से

यूसुफ को पिघला सकती है। जुलेखा ने जवाब दिया यह तो सच है मगर वह जालिम मेरी तरफ़ आँख उठा कर देखे तो। वह तो मेरी तरफ़ ताकता ही नहीं। आखें चार हों तब तो दिल मिले।

न तनहा आफ़तम जेबाइये ऊस्त
बलाये मन जे नापरवाइये ऊस्त।

उसका रूप ही मेरे लिए आफ़त नहीं है, उसकी लापरवाही और भी बड़ी आफ़त है।

आखिर जब परखने से साबित हो गया कि इन छोटी-छोटी चालों से काम न चलेगा तो दाई ने एक बड़ी चाल चली। रुपये की कमी न थी। एक बहुत बड़ा महल बनवाया गया जिसमें सात खंड थे। इस सतखंडे महल को उस्ताद ने ऐसा अच्छा बनाया कि हर खंड पहले खड से बढ-चढ़कर था और सातवाँ खंड तो जैसे सातवें आसमान का जवाब था। हीरे-जवाहिरात, कस्तूरी, अम्बर और फलदार पेड और दुनिया भर की सजावट वहाँ मौजूद थी। उसकी हवा दिलों में नशा पैदा करती थी। उसकी सजावट निराली थी।

दरां खाना मुमव्विर साख्त हर जा
मिसाले यूसुफ ओ नक्शे जुलेखा।

इस महल में चित्रकार ने जगह-जगह यूसुफ़ और जुलेखा की तस्वीरें बनाई थी।

बहम बनशस्ता चूं माशूक ओ आशिक़
ज़े मेहरे जानो दिल बाहम मुवाफ़िक़।

आपस में प्रेमी और प्रेमिका ऐसे बैठे थे जैसे दिल और जान एक दूसरे से अलग नहीं हो सकते।

बयक जा ईं लबे आ बोसा दादा
बयक जा आं मियाने ईं कुशादा।

कहीं यह उसका मुँह चूम रहा है और कहीं वह इसका नाड़ा खोल रही है।

जब यह महल हर तरह सज गया तो जुलेखा ने भी अपने को खूब दिल खोलकर सजाया और जाकर पहले हिस्से में बैठी। यूसुफ भी बुलाये गये। उन्हें देखते ही जुलेखा बेचैन हो गयी, सब्र हाथ से जाता रहा। यूसुफ़ का हाथ एक खास अंदाज से पकड़कर इधर-उधर की सैर कराने लगी। यहाँ सिवाय आशिक़ और माशूक के और कोई रंग में भंग डालनेवाला न था। जुलेखा बार-बार इश्क़ का जोश जताती थी मगर यूसुफ़ धर्म और इन्सानियत की दलीलों से

उसे चुप कर देते थे ।

सवाल और जवाब—

यूसुफ़—
मरा अज़ बंदे गम आज़ाद गर्दा
ब आज़ादी दिलम रा शाद गर्दी ।

मुझे ग़म की क़ैद से आज़ाद कर दे और आज़ादी से मेरा दिल खुश कर दे ।

मरा खुश नीस्त की ज़ा बा तू बाशम
पसे ईं पर्दा तनहा बा तू बाशम ।

मुझे यह अच्छा नहीं लगता कि इस जगह पर्दे के पीछे तेरे साथ रहूँ ।

जुलेखा—
तिही कर्दम खज़ाइन दर बहायत
मताए अक्लो दीं कर्दम फ़िदायत ।

मैंने तेरी क़ीमत पर खज़ाना खाली कर दिया और तुझ पर अक्ल और धर्म की पूँजी निछावर कर दी ।

ब आँ नियत कि दरमानम तू बाशी
रहीने तौके फ़रमानम तू बाशी ।

इस ख्याल से कि तू मेरे दुख का इलाज करेगा और मेरे हुक्म में रहेगा ।

यूसुफ़—
बिगुफ़्ता दर गुनह फ़रमाँबरी नीस्त
ब इसियाँ ज़ीस्तन खिदमतगरी नीस्त ।

वह हुक्म जिसमे पाप हो उसे बजा लाना आज्ञा-पालन नहीं है और पाप की जिन्दगी बिताना सेवा नहीं है ।

जुलेखा एक घर से दूसरे घर में जाते वक्त उसके दरवाज़े पर ताला लगा देती थी कि यूसुफ़ भाग न जाये । इश्क उसकी अक्ल पर धुएँ की तरह छा गया था कि वह उस नतीजे को, जो दिल के लगाव ही से मुमकिन है, जबर्दस्ती हासिल करना चाहती थी । सातवें खंड में पहुँच कर जुलेखा ने बहुत ही नर्मी से अपनी दास्तान कही कि जैसे अपना कलेजा ही निकालकर रख दिया मगर यूसुफ का दिल न पसीजा । आखिर जब उसकी कामना हद से आगे बढ गई तो यूसुफ ने यह कहकर उसकी तसल्ली की कि जल्दी से काम बिगडता है । जुलेखा उसका यों जवाब देती है—

॥ विविध प्रसंग ॥

ज़े शौकम जाँ रसीदा बर लब इमरोज़
नियारम सब्र करदन ता शब इमरोज।

तेरे इश्क मे मेरी जान होठो पर आ गई। अब आज रात तक मै धीरज नही रख सकती।

कै आँ ताक़त मरा आयद पिदीदार
के *बावक्ते* दिगर अंदाजम ईं कार।

मुझमें इतनी ताकत कहाँ है कि दूसरे वक्त पर यह काम छोड़ूँ।

जुलेखा पिया-मिलन के नशे में मतवाली हो रही है और यूसुफ कहते है, इसमें दो बातें रुकावट डालती है। एक तो खुदा का डर और दूसरे अज़ीज़े मिस्र का। तो वह उन दोनों को दूर करने की तरकीब बताती है कि अज़ीज़े मिस्र को

दिहम जामे कि बा जानश सतेज़द
ज़े मस्ती ता क़मायत बर न खेज़द।

मै एक ऐसा प्याला पिला दूँगी कि उसके नशे से वह फिर उठ न सकेगा और खुदा से इस पाप को माफी के लिए अपना सारा खजाना ग़रीबों और फ़कीरों को दे दूँगी। इस पर यूसुफ कहते है, न तो मेरा खुदा रिश्वत खाता है और न मै ऐसा एहसान भुला देनेवाला हूँ कि अपने ही मालिक को मारने की राय दूँ। आखिर जुलेखा की जब एक भी न चली तो उसने एक तेज़ तलवार हाथ में लेकर खुद मरने का इरादा ज़ाहिर किया।

चू यूसुफ आँ बिदीद अज जाय बरजस्त
चू जर्री मार बिगिरिफ्तश सरे दस्त॥

यूसुफ फौरन अपनी जगह से उठे और एक सुनहरे साँप की तरह उसके हाथ को पकड़ लिया।

कज़ो तुन्दी बियाराम ऐ जुलेखा।
वज़ो रू बाज कश काम ऐ जुलेखा।

ऐ जुलेखा, इतनी जल्दी न कर और इस खयाल से मुँह मोड।

जुलेखा ने जब यूसुफ को ज़रा नर्म होते देखा तो उनकी गर्दन में हाथ डालकर लिपट गई और ऐसी हरकतें करने लगी जो एक कुँवारी लड़की को शोभा नही देती। शायद इस वक्त हज़रत यूसुफ़ नबी के पद पर होते हुए भी सीधे रास्ते से डगमगा गये थे। मगर इस एकांत की हालत में उनकी नजर एक सुनहरे पर्दे पर पड़ी जो सामने लटक रहा था। जुलेखा से पूछा, यह पर्दा क्यो पड़ा है। जुलेखा बोली, इसके अन्दर मेरा खुदा है। मैंने उसके ऊपर पर्दा

डाल दिया है कि उसकी निगाह मुझ पर न पड़ सके। जुलेखा का इतना कहना गजब हो गया। यूसुफ बोले, तू एक पत्थर की मूरत का इतना लिहाज करती है और मैं अपने सब कुछ देखने और सब जगह हाजिर रहने-वाले खुदा से जरा भी न डरूँ! यह कहकर फ़ौरन वहाँ से उठ खड़े हुए और बाहर की तरफ चले। खुदा का करना भी कुछ ऐसा ही हुआ कि हर दरवाजे पर पहुँचते ही लोहे के ताले खुलते गये। जुलेखा ने जब यूसुफ को भागते देखा तो झल्लाकर

पये बाज़ आमदन दामन कशीदश
ज़े सूए पुश्त पैराहन बुरीदश।

उनके पीछे लपकी और पीछे से दामन पकड़ा जिससे उनका कुर्ता फट गया

बुरूँ रफ्त अज़ कफ़े आ गमरसीदा
बसाने गुन्चा पैराहन दरीदा।

लेकिन हजरत उसके पंजे से ऐसे बाहर निकल गये जैसे कली पंखुड़ियों के पर्दे से बाहर निकल आती है।

यूसुफ इस महल से निकल ही रहे थे कि अजीजे मिस्र आते दिखाई दिये। उन्होंने यूसुफ का हाथ मुहब्बत के जोश में पकड लिया और फिर महल में दाखिल हुए। जुलेखा ने जब यूसुफ को अजीज के साथ देखा तो समझी कि इसने मेरी शिकायत की है। फौरन त्रिया-चरित्र खेली, बोली कि आज मैं इस कमरे में सोती थी तो यह गुलाम, जिसे मैंने अपना बेटा कहा है, दबे पाँव मेरी सेज की तरफ आया और मेरी इज्जत लेनी चाही। इतने में मैं जाग पडी और यह भाग निकला। अजीज ने यह दास्तान सुनी तो यूसुफ को खूब भला-बुरा कहा कि मैंने तुझे बेटे की तरह पाला-पोसा और तू ऐसा जानवर निकला। तब यूसुफ ने मजबूर होकर सारा कच्चा चिट्ठा कह सुनाया मगर जुलेखा के रोने-धोने ने अजीज को पिघला दिया और हजरत यूसुफ जेल में डाल दिये गये। यहाँ खुदा के दरबार में उनकी पुकार यहाँ तक मंजूर हुई कि जुलेखा की चालों और यूसुफ के बेकुसूर होने की गवाही एक दूध-पीते बच्चे ने दी। अजीजे मिस्र को अब शक की कोई गुंजाइश बाक़ी न रही। उसने यूसुफ को छोड दिया और जुलेखा को सजा दी। जब यह क़िस्सा चारों तरफ फैला और लोग जुलेखा को ताने देने लगे तो उसने अपने शौहर से कहा कि मैं इस गुलाम के पीछे बदनाम हो रही हूँ, आप इसे मेरी नजरों से दूर कर दीजिए। अजीज ने युसुफ को फिर क़ैद किया मगर

चे मुशकिल जाँ बतर बर आशिके जार
कि बेदिलदार बीनद जाये दिलदार।

उस आशिक़ की बुरी हालत का क्या ठिकाना है जो अपने माशूक की जगह ख़ाली देखे

चू ख़ाली दीद अज़ गुल गुलशने खेश
चू गुचा ख़ाक ज़द पैराहने खेश।

जब उसने अपने बाग में अपना फूल न देखा तो कली की तरह अपनी पंखुरियाँ मिट्टी पर गिरा दी। जब विरह का दुख न सह सकती तो छिपकर अपनी दाई के साथ जेल मे जाती और यूसुफ को देख आती। इधर यूसुफ जेलखाने में सपनों का मतलब बताने मे मशहूर हो गये। सपना सुनते ही उसका मतलब बता देते। उन्हीं दिनों मिस्र के बादशाह ने सपना देखा कि मेरे मकान मे पहले सात मोटी-मोटी गायें आयी, उनके बाद सात दुबली-पतली गायें आयी और इन मोटी गायो को सूखे गेहूँ की तरह खा गईं। इस सपने का कोई मतलब न बता सकता था। यूसुफ के सपने का हाल बताने का जिक्र बादशाह तक पहुँच गया था। बादशाह ने उन्हें दरबार में बुलाया और यूसुफ ने सपने का मतलब बताया कि पहले मिस्र मे सात बरस तक खूब गल्ला पैदा होगा, लोग आराम से रहेंगे, उसके बाद अकाल और मँहगाई के बरस आयेंगे और उस ज़माने मे प्रजा को बड़े कष्ट का सामना होगा। बादशाह इस मतलब से बहुत खुश हुआ और उसी वक़्त से यूसुफ उसकी नज़र में चढ गये। इज़्ज़त और पद बढने लगा मगर ज्यो ज्यो उनका पद बढ़ता गया अज़ीज़े मिस्र का पद घटता गया यहाँ तक कि इसी दुख मे वह मर गया। अजीज़े मिस्र के मरते ही जुलेखा के भी बुरे दिन आये। आखिर यह हालत हो गई कि यूसुफ के रास्ते पर एक छोटी-सी मड़ैया बना कर

ब हसरत बर सरे राहे नशस्ते
खरोशाँ बर गुज़रगाहश नशस्ते।

उसके रास्ते में बैठ जाती और पागली की तरह रोती-धोती और चीखती पुकारती रहती थी। लड़के आते, उसे छेड़ते। इश्क ने पागलपन की जगह ले ली थी। कैसी दुख-भरी तस्वीर है। यह वही महलोंवाली जुलेखा है जो आज इस हालत को पहुँच गई है।

जब इस पागलपन को एक मुद्दत बीत गई तो एक रोज़ नाकामी और निराशा से झल्लाकर जुलेखा ने अपने खुदा को चूर चूर कर डाला और इसी पागलपन की हालत में हज़रत यूसुफ के पास गई। यूसुफ ने हैरान होकर नाम-

पता पूछा, जुलेखा को पहचान न सके। जुलेखा बोली

विगुफ़्त ग्रानम कि चूँ रूये तू दीदम
तुरा अज़ जुमला ग्रालम वरगुज़ीदम।

मैं वह हूँ कि जब मैंने तेरी सूरत देखी तो तुझे सारी दुनिया से अच्छा समझकर चुन लिया।

फ़िशादम गजो गौहर दर बहायत
दिलोजाँ वक्फ़ कर्दम दर हवायत।

तेरे मोल पर अपना खजाना और जवाहिरात लुटा दिये और अपना दिल और जान तुझ पर निछावर कर दी।

जवानी दर गमत वरवाद दादम
वरीं रोजे कि मो बीनी फ़ितादम।

तेरे गम मे अपनी जवानी वर्बाद कर दी जिसका नतीजा आज तू देख रहा है।

यह सुनकर हजरत यूसुफ को बहुत तकलीफ़ हुई और वह रोने लगे। क़िस्सा कोताह, उनकी दुग्राग्रो ने जुलेखा को दुवारा जवानी और रूप दिलवाया और तव खुदा की इजाज़त से उन्होने जुलेखा से शादी कर ली।

यह है जुलेखा का बहुत मशहूर किस्सा। जुलेखा किसी तरह ऊँचे चरित्र का नमूना नही कही जा सकती। उसके प्रेम का स्थान बहुत नीचा है। वह एक चचल स्वभाव और विचारों की स्त्री है और गंदी इच्छाओ पर ईमान और सव कुछ लुटा सकती है। जिन हालतो में जो कुछ उसने किया वही हर एक मामूली औरत करेगी। इसलिए कहा जा सकता है कि जुलेखा एक हद तक सच्चाई के रंग में रँगी हुई है। इससे हजरत जामी का शायद यह मतलव होगा कि उसकी कमजोरियाँ दिखाकर यूसुफ की बड़ाइयो की इज्जत बढ़ायें और इस इरादे मे वह जरूर कामयाव हुए है।

—जमाना, अगस्त सन् १९०९

अकबर की शायरी पर एक नज़र

वली और मीर से लेकर अमीर और दाग़ तक उर्दू जबान ने जो रंग बदले है वह एशियाई शायरी के समझनेवालो से छिपे नही है। निस्संदेह शायरी की कल्पनाओं में ग़ालिब को छोड़कर कोई नया ढंग नही अपनाया गया। तो भी मुहावरों, बंदिशों और बयान के ढंग मे अलग-अलग कवियों मे स्पष्ट अंतर पाया जाता है। वली ने जिन विचारों को लिया है वे है तो बहुत ऊँचे लेकिन उनकी शैली और इस जमाने की शैली मे बड़ा अंतर है। मीर और सौदा और इंशा का रंग भी अलग-अलग है लेकिन भाव एक ही है यानी अधिकतर भाव फ़ारसी से मिलते हुए है और ऐसे भाव भी है जो फ़ारसी से उद्धृत नही कहे जा सकते। सैकड़ों मुहाविरे और तरकीबें फारसी से भिन्न है। उर्दू के तमाम मशहूर उस्तादों ने फ़ारसी और अरबी की किताबें पढ़ी है और अरबी में अगर ज्ञान के सागर नही है तो कम से कम फारसी और सर्फ ओ नहव (व्याकरण) पढ़ी है क्योंकि इस ज्ञान के बिना रुचि का संस्कार नही हो सकता और उर्दू के कुछ कवि तो सचमुच बड़े आलिम-फ़ाज़िल थे मगर ये सब कल्पनाओं के गठन और अर्थ-सौन्दर्य मे फ़ारसी कवियों का अनुकरण करते थे और उर्दू के पिछले उस्तादों का सामाजिक रहन-सहन भी पुराना और इस जमाने से बिल्कुल अलग था। और दाग़ और अमीर ने जिस जमाने मे नाम हासिल किया उस जमाने की तहज़ीब मीर वगैरह के ज़माने से हट गई थी लेकिन वह उससे प्रभावित नही हुए और उसका बड़ा कारण यह था कि वह न खुद अंग्रेज थे और न उनकी सरकारे अंग्रेजी रुचि रखती थीं। इस वजह से उनकी शायरी का रंग पुराना था। लेकिन जनाब अकबर प्राचीन ज्ञान-विज्ञान के अलावा अंग्रेज़ी भाषा के भी विद्वान है और अपने इसी लगाव के कारण जनाब अकबर ने अपनी शायरी में जगह जगह अंग्रेज़ी भाषा के शब्दों को भी खपाया है और कहीं-कही बड़े प्यारे ढंग से खपाया है। हँसी-दिल्लगी के शेरों में यह तरकीबें सोने में सुहागा हो गई है लेकिन ज्यादातर ग़ज़लें पुरानी कल्पनाओं की पाबन्दी के साथ कही गई है। अक्सर शेर मीर और मिर्ज़ा और ग़ालिब के रंग के है। कुछ ग़ज़लें जनाब अकबर ने अपने खास रंग मे कही है जो पाठक आगे चलकर देखेंगे।

आज की उर्दू शायरी एक अजीब कशमकश में गिरफ्तार है। अंग्रेजी शिक्षा का विचारो पर ऐसा चुम्बक जैसा प्रभाव पडा है कि लोग पुरानी बातों से तंग आ गये है। उर्दू कविता मे यही हालत दिखाई देती है और आज के कवियो की साफ-साफ़ दो श्रेणियाँ हो गई है। दाग़ और हाली के असर में उर्दू शायरो के दो परस्पर विरोधी स्कूल क़ायम हुए जो कई लिहाज़ से 'दरबारी' और 'मुल्की' के नाम से पुकारे जा सकते है। इन दोनों संप्रदायों में दो ध्रुवों की दूरी है। एक ने पुरानेपन की कसम खा ली है और दूसरे हैं कि नई-नई बातो और आजादी पर मिटे हुए है। कविता की दुनिया में इन दोनों विरोधी सम्प्रदायों के कारण एक तरह का तहलका मचा हुआ है। मुल्क में एक तरफ तो शायरी के दरबार से उनको निकालने की फ़िक्र हो रही है उन्हें काफिर करार दिया जा रहा है और दूसरी तरफ उनके शायराना अधिकारों पर झगड़ा छिडा हुआ है। सामान्य कविता-प्रेमी इन दोनों को जरूरत से ज्यादा जोशीला पाते है और खुद बीच का रास्ता पसन्द करते है। यही सबको अच्छा भी लगता है। इसमें शक नही कि पुराने किस्सों और रूपकों और उपमाओं को सिर्फ दुहराने से आधुनिक युग के लोग मुग्ध तो क्या संतुष्ट भी नही हो सकते। दिल शायरी से शब्दो के उलटफेर के सिवा कुछ और की भी उम्मीद रखता है। इसके साथ ही अभी बिल्कुल आजादी भी ठीक नही जो कविता के अनिवार्य बन्धनों का भी ध्यान न रक्खा जाय। निरे रूखे-सूखे उपदेश दिल कुबूल नही करता। कविता से लोग फायदे की बनिस्बत खुशी की ज्यादा उम्मीद रखते है मगर इस पहलू को बिल्कुल भुला देना भी ठीक नही।

खुशी की बात है कि इन दोनों संप्रदायों के बीच कुछ ऐसे कवि भी है जिन्होने भाषा और कविता पर पूर्ण अधिकार रखने के साथ-साथ युग की आवश्यकताओ को भी अच्छी तरह अनुभव कर लिया है और उनमे हम जनाब खान बहादुर सैयद अकबर हुसैन साहब जज इलाहाबाद का दर्जा बहुत ऊँचा पाते है। आपने युग के विचारों और आवश्यकताओ का सही अंदाजा कर लिया है। उनकी शायरी में दोनों रंग उचित मात्रा मे मिलते है और इसी वजह से आपकी शायरी खास और आम सबको इतनी ज्यादा पसंद है। आपको दिलचस्पो और दिलफरेबो के लिहाज से पुरानो शायरो का ढंग भी आता है और इसके साथ ही विचारों में उसकी संकीर्ण सीमाओं का बन्धन भी स्वीकार नहीं। इसी वजह से आपकी शायरी मौजूदा कसोटी पर खरी उतरती है। उसमे बात कहने के एशियाई ढंग मे पश्चिमी विचारों के सुन्दरतम नमूने मिलते है। आधुनिक जीवन की विभिन्न समस्याओ पर भी आपने शिक्षा दी है और सहानुभूति

दिखलाई है। मानव भावनाओं की भी झलक आपकी शायरी में रहती है और क्या अजब है कि कुछ दिनों में देश के विभिन्न प्रभाव आपकी काव्य-शैली पर स्थायी रूप से छा जायें और इस तरह काव्य-क्षेत्र के वर्तमान विरोधी संप्रदाय मिलकर एक हो जायें। मगर फिलहाल कशमकश जारी है और इसको जनाब अकबर ने बड़े मज़ेदार ढंग से बयान किया है—

क़दीम वज़्अ पे क़ायम रहूँ अगर अकबर
तो साफ कहते हैं सैयद यह रंग है मैला
जदीद तर्ज़ अगर इख़्तियार करता हूँ
खुद अपनी कौम मचाती है शोर वावैला
जो एतदाल की कहिए तो वो इधर न उधर
ज्यादा हद से दिये सबने पांव हैं फैला
इधर ये ज़िद है कि लेमनड भी छू नहीं सकते
उधर ये ज़िद है कि साक़ी, सुराहिए मै ला
इधर है दफ़्तरे तदबीर व मसलहत नापाक़
उधर है वहिए विलायत की डाक का थैला
गरज़ दोगूना अज़ाबस्त जाने मजनूं रा
बलाये सोहबते लैला व फुरकते लैला

मगर इस मुशकिल को अकबर ने बड़ी खूबसूरती के साथ आसान कर दिखाया है और हर आदमी अपनी रुचि के अनुसार आपकी शायरी में से शेरों का चुनाव कर सकता है। इश्क और मुहब्बत की जिन भावनाओं को आपने कविता में व्यक्त किया है वह बड़ी खूबी से कविता में आये हैं। ग़ज़ल का रंग ऐसा प्यारा है कि आशिक मिज़ाज कविता-प्रेमी आपकी शायरी पढ़कर बेचैन हो सकता है। कविता में सहजता ही वह चीज़ है जो दिलों को अपनी तरफ खींचती है। जनाब अकबर के दीवान में अक्सर शेर तीर और नश्तर का काम देने वाले हैं। शेरो का आशय स्पष्ट है और अतिशयोक्ति भी कल्पनातीत नही है बल्कि बड़े अच्छे ढंग से आयी है। वह तमाम खूबियां जो एक सिद्धहस्त और अच्छे कवि की कविता में होनी चाहिए आपके कुल्लियात में मौजूद हैं।

आपका कुल्लियात (सम्पूर्ण रचनाओं का संग्रह) चालीस साल की मेहनत का नतीजा है। ग़ज़लें, रुबाइयाँ, क़ते और मसनवियाँ, हँसानेवाले और दूसरे फुटकर शेर, वह इन सब का एक दिलचस्प संग्रह है। यह ज़रूर है कि कुल्लियात में संकलन की दृष्टि से ऐसे कुछ दोष हैं कि दूसरे संस्करण में उनका संशोधन कर देना चाहिए। लेकिन इस बात को असल कविता से अधिक

प्रयोजन नही है। कविता-मर्मज्ञ और आलोचक तो काव्य की खूबियो को देखता है और इस लिहाज़ से यह कुल्लियात बहुत ही क़द्र के क़ाबिल है। इसके प्रकाशन से एशियाई शायरी में आधुनिक युग के अनुसार उचित अभिवृद्धि हुई है। कुछ चुने हुए शेर सुनिए—

मेरी हकीक़ते हस्ती ये मुश्ते खाक नही
बजा है मुझसे जो पूछे कोई पता मेरा

सचमुच यह शेर अपने अर्थ की दृष्टि से बहुत सारगर्भित है। सचमुच इंसान की हस्ती सिर्फ़ मुट्ठी भर राख ही नही। ज्ञानी मुट्ठी भर राख की असलियत को समझ सकता है और इसी वास्ते एक इस्लामी लीडर या पेशवा ने कहा है मन अरफ़ा नफ्सहू, फकद अरफा रब्बहू। याना जिसने अपनी आत्मा को पहचाना उसने अपने परमात्मा को पहचाना। दूसरा मिसरा साफ़ है और हकीकत के तलबगार तो चाहते है कि काश वह उस रहस्य को खोले। एक उर्दू शेर मे यह नाजुक खयाल पैदा करना मामूली बात नही।

इस्लाम के पैगम्बर को स्तुति में यह शेर खूब कहे है—

दुरफ़िशानी ने तेरी क़तरो के दरिया कर दिया
दिल को रौशन कर दिया आँखो को बीना कर दिया
खुद न थे जो राह पर औरों के हादी बन गये
क्या नज़र थी जिसने मुर्दा को मसीहा कर दिया

दोस्त

दिल मेरा जिससे बहलता कोई ऐसा न मिला
बुत के बंदे मिले अल्लाह का बंदा न मिला

प्रेम की बेसुधी

वाह क्या राह दिखाई है हमे मुर्शिद ने
कर दिया काबे को गुम और कलीसा न मिला

इसी ज़मीन में दो हास्यरस के शेर है :

रंग चेहरे का तो कालिज ने भी रक्खा कायम
रंगे बातिन में मगर बाप से बेटा न मिला
सैयद उट्ठे जो गज़ट लेकर तो लाखों लाये
शेख कुरआन दिखाते फिरे पैसा न मिला

मगर यह शेर ग़ज़ल से अलग किसी नज़्म में शामिल किये जाते तो दिलचस्पी बढ़ जाती मगर जनाब अकबर की बेतकल्लुफ़ तबीयत ने इसका खयाल नही किया।

॥ विविध प्रसंग ॥

आशिकाना रंग में यह शेर तारीफ के काबिल है और खूबी यह है कि इनमें तसव्वुफ की झलक भी मौजूद है—

गुन्चये दिल को नसीमे इश्क ने वा कर दिया
मैं मरीज़े होश था मस्ती ने अच्छा कर दिया
दीन से इतनी अलग हद्दे फ़ना से यूं करीब
इस कदर दिलत्रस्त क्यूं फिर रगे दुनिया कर दिया
सबके सब बाहर हुए वहमो खिरद होशोतमीज
खानये दिल में तुम आओ हमने परदा कर दिया

ईश्वर एक है

तसव्वुर उसका जब बँधा तो फिर नजर मे क्या रहा
न बहसे ईनो आँ रही न शोरे मासेवा रहा

आजादी

जो मिल गया वो खाना दाता का नाम जपना
इसके सिवा बताऊँ क्या तुमसे काम अपना

आशिकाना

अक्ल को कुछ न मिला इल्म मे हैरत के सिवा
दिल को भाया न कोई रंग मुहब्बत के सिवा
बढने तो जरा दो असरे जज़बये दिल को
क़ायम नहीं रहने का ये इनकार तुम्हारा
बाइसे तसकी न था बागे जहाँ का कोई रंग
जिस रविश पर मैं चला आखिर परीशाँ हो गया

जनाब अकबर ने यह शेर खूब कहा है और गोया गालिब के मज़मून को दूसरे ढंग से नज्म में बाँधा है—

बूये गुल नालये दिल दूदे चिरागे महफिल
जो तेरी बज्म से निकला सो परीशाँ निकला

बुढ़ापे की शिकायत

बस यही दौलत मुझे दी तूने ऐ उम्रे अजीज़
सीना इक गंजीनए दागे अज़ीज़ाँ हो गया
है गज़ब जलवा तेरे दैरे फ़ानी का
पूछना क्या है उसके बानी का
होश भी बार है तबीयत पर
क्या कहूँ हाल नातवानी का

मआरिफ़त (ब्रह्मज्ञान)

नसीम मस्ताना चल रही है चमन में फिर रुत बदल रही है
सदा ये दिल से निकल रही है वही है ये गुल खिलानेवाला

वैराग्य

खुदी गुम कर चुका हूँ अब खुशी व ग़म से क्या मतलब
ताल्लुक होश से छोडा तो फिर आलम से क्या मतलब

जिसे मरना न हो वह हश्र तक की फ़िक्र में उलझे
बदलती है अगर दुनिया तो बदले हमसे क्या मतलब
मेरी फ़ितरत मे मस्ती है हकीक़त में है दिल मेरा
मुझे साकी को क्या हाजत है जामे जम से क्या मतलब

दिल हो वफ़ा-पसंद नजर हो हया-पसंद
जिस हुस्न में यह वस्फ़ हो वह है खुदा-पसंद
तोडों प तेरे झूमने लगती है शाखे गुल
बेहद है तेरा नाच मुझे ऐ सबा पसंद

उर्दू के सिलसिले में कुछ फारसी गजलें भी दर्ज कर दी गई है और इंसाफ यह है कि जनाब अकबर फारसी मे भी एक फारसीदाँ की हैसियत से कहते है। दो-एक शेर मुलाहिज़ा हों—

वक्ते वहारे गुल दिलम अज़ होश दूर बूद
मौजे नसीम दुश्मने शमये शऊर बूद
यक जलवा गरदद सूरते परवाना सोख्तम
आरी हमी इलाज दिले नासुबूर बूद
खुश बूद औं ज़मां खुदी अज़ खुद खबर न दाश्त
होशम ब ख्वाब बूद दिलम अज हुजूर बूद

उर्दू

मौकूफ कुछ नही है फ़कत मैंपरस्त पर
जाहिद को भी है वज्द तेरी चश्मे मस्त पर
उस बावफा को हश्र का दिन होगा रोजे वस्ल
कायम रहा जो दह्र में अहदे अलस्त पर

नई तरकीब और दिल्लगी के रंग में यह शेर मुलाहिज़ा हो—

मैंले नजर है ज़ुल्फे मिसे कज कुलाह पर
सोना चढ़ा रहा हूँ मैं तारे निगाह पर

आशिक़ी और उम्मीद

तबा करती है तेरे इश्क़ की ताईद हनोज
इन जफ़ाओं पे भी टूटी नहीं उम्मीद हनोज

दूसरा शेर अक्सर हिन्दुस्तानियों के हाल के मुताबिक़ है—

न खुशी होती है दिल को न तबीयत को उभार
फिर भी सालाना किये जाते हैं हम ईद हनोज

विरह की रात का दृश्य

विरह की रात का काल्पनिक चित्र कवियों ने अलग-अलग ढंग से उतारा है। ग़ालिब ने इस ख्याल को यूँ नज़्म किया है—

दाग़े फ़िराक़े सोहबते शब को जली हुई
एक शम्ग्र रह गई है सो वह भी खमोश है

जनाब अकबर ने भी इस खयाल को बड़े पुरअसर अंदाज़ से बिठाया है—

नहीं कोई शबे तारे फ़िराक मे दिलसोज़
खमोश शम्ग्र है खुद जल रहे हैं शाम से हम
निगाहे पीरे मुगाँ कहती है मुरीदों से
रहे सलूक मे वाकिफ़ हैं हर मुकाम से हम

जनाब अकबर का यह शेर हाफ़िज़ शीराज़ी के इस शेर से मिलता-जुलता है—

ब मय सज्जादा रंगीं कुन गरत पीरे मुगाँ गोयद
के सालिक बेखबर न बुवद ज़े राहो रस्मे मंज़िलहा

ज़माने का इंक़लाब

फ़लक के दौर में हारे हैं बाज़ीए इक़बाल
अगरचे शाह थे बदतर हैं अब गुलाम से हम

नाज़ुक खयाली

मेरी बेताबियाँ भी जुज़्व हैं इक मेरी हस्ती की
ये जाहिर है कि मौजें खारिज अज़ दरिया नहीं होतीं

दिल की उदासी

हुआ हूँ इस क़दर अफ़सुर्दा रंगे बाग़े हस्ती से
हवाएं फ़स्ले गुल को भी निशात-अफज़ा नहीं होतीं
क़ज़ा के सामने बेकार होते हैं हवास अकबर
खुली होती हैं गो आँखें मगर बीना नहीं होतीं

आज़ादी के लाले

इतनी आज़ादी भी गनीमत है साँस लेता हूँ बात करता हूँ

सच्चाई के रास्ते में कठिनाइयाँ

मआरिफत खालिक की आलम में बहुत दुश्वार है
शहरे तन मे जब कि खुद अपना पता मिलता नहीं

दोस्तों की याद

जिंदगानी का मज़ा मिलता है जिनकी बज़्म मे
उनकी क़ब्रों का भी अब मुझको पता मिलता नही

परदेश की बेकसी

बेकसी मेरी न पूछ ऐ जादए राहे तलब
कारवाँ कैसा कि कोई नक्शे पा मिलता नही
यूँ कहो मिल आऊँ उनसे लेकिन अकबर सच ये है
दिल नहीं मिलता तो मिलने का मज़ा मिलता नही

आशिक़ाना ज़िन्दगी

दिल ज़ीस्त से बेज़ार है मालूम नही क्यूँ
सीने पै नफ़्स बार है मालूम नही क्यूँ
जिससे दिले रंजूर को पहुँची है अज़ीयत
फिर उसका तलबगार है मालूम नही क्यूँ
अंदाज़ तो उश्शाक के पाये नही जाते
अकबर जिगर अफ़गार है मालूम नही क्यूँ

नीचे लिखी हुई तरह में आपने एक लंबी ग़जल लिखी है और खूब-खूब शेर निकाले हैं। गालिबन यह गज़ल मुशायरे में कही है। यह सारी गज़ल बहुत सजी हुई है। दो-तीन शेर मुलाहिज़ा हो—

हिज्र की रात यूँ हूँ मैं हसरते क़द्देयार मे
जैसे लहद मे हो कोई हश्र के इंतज़ार मे
रंगे जहाँ कि शाद काश मेरी भी यूँ ही हो बसर
जैसे गुलो नसीम की निभ गई चाह प्यार मे
आँख की नातवानियाँ हुस्न की लनतरानियाँ
फिर भी हैं जाँफ़िशानियाँ कूचए इंतज़ार मे

सद चार की शिक्षा

आइना रख दे बहारें गफलत अफज़ा हो चुकी
दिल सँवार अपना जमाना भी खुद-आरा हो चुकी

खानए तन की खराबी पर भी लाज़िम है नज़र
जीनते आराइशे क़स्रे मुअल्ला हो चुकी
बेखुदी की देख लज़्ज़त करके तर्के आरज़ू
हो चुकी हद्दे हवस मश्क़े तमन्ना हो चुकी
चल बसे याराने हमदम उठ गये प्यारे अज़ीज़
आखिरत की अब कर अकबर फ़िक्रे दुनिया हो चुकी

एयादत को आये शिफा हो गई
अलालत हमारी दवा हो गई
पढ़ी यादे रुख मे जो मैंने नमाज़
अजब हुस्न के साथ अदा हो गई
बुतों ने भुलाया जो दिल से मुझे
मेरे साथ यादे खुदा हो गई
मरीजे मुहब्बत तेरा मर गया
खुदा की तरफ़ से दवा हो गई
न था मंज़िले आफ़ियत का पता
कनाअत मेरी रहनुमा हो गई
इशारा किया बैठने का मुझे
इनायत की आज इंतहा हो गई
दवा क्या कि वक्ते दुआ भी नहीं
तेरी हालत अकबर ये क्या हो गई

दुनिया की हकीक़त

दो आलम की बिना क्या जाने क्या है
निशाने मासेवा क्या जाने क्या है

ईश्वर एक है

मेरी नज़रों में है अल्लाह ही अल्लाह
दलीले मासेवा क्या जाने क्या है

जुनूने इश्क़ में हम काश मुबतिला होते
खुदा ने अक़्ल जो दी थी तो बाखुदा होते

ज़बान का लुत्फ़

ये खाकसार भी कुछ अर्ज़े हाल कर लेता
हुज़ूर अगर मुतवज्जो इधर ज़रा होते

मै उनकी बेखबरी जुल्म से भी अफ़ज़ूं है
अब आरज़ू है कि वो मायले जफा होते

संसार की असारता

दो ही दिन में रुखे गुल ज़र्द हुआ जाता है
चमने दह्र से दिल सर्द हुआ जाता है

प्रेम से होड़

मेरे हवारा इश्क़ में क्या कम है मुंतशर
मजनूं का नाम हो गया क़िस्मत की बात है

हुस्न औ इश्क़ के ताल्लुक़

सौ रंग तसव्वुर में हम ।जान दर आए
हर रंग में तुम आफते ईमां नज़र आए

आशिक़ाना

दम लबों पर था दिलेज़ार के घबराने से
आ गई जान में जान आप के आ जाने से

ज़माने का इंक़लाब और एकता का लोप

कल तक मुहब्बतो के चमन थे खिले हुए
दो दिल भी आज मिल नहीं सकते मिले हुए

तुम्ही से हुई मुझको उल्फ़त कुछ ऐसी
न थी वरना मेरी तबीयत कुछ ऐसी
गिरे मेरी नज़रों से खूबाने आलम
पसंद आ गई तेरी सूरत कुछ ऐसी

नीचे के ग़ज़ल मे क़ाफ़िया और रदीफ़ किस क़दर चुस्त हैं। नाज़ुक ख़्यालों के साथ तग़ज़्ज़ुल की शान भी देखने क़ाबिल है—

ये दर्दे दिल भी न था सोज़िशे जिगर भी न थी
इन आफ़तों की तो उल्फ़त में कुछ खबर भी न थी
ज़मानासाज़ी है अब यह कि मुंतज़िर था मैं
हमारे आने की तुमको तो कुछ खबर भी न थी
लिपट गये वो गले से मेरे तो हैरत क्या
वह संगदिल भी न थे आह बेअसर भी न थी
शहीदे नल्वये मस्ताना हो गया शबे वस्ल
खुशी नसीब में आशिक़ के रात भर भी न थी

यहाँ तक जो कुछ चुना गया वह ग़ज़ल के पुराने रंग को लिये हुए है।

॥ विविध प्रसंग ॥

अकबर ने हुस्नो-इश्क़, माशूक की शोखी और ज़िद सब चीज़ों पर खूब-खूब लिखा है मगर हम उस प्रसंग में लेख के लंबे हो जाने के डर से अब इतना उद्धरण देना काफ़ी समझते हैं और अब आपकी शायरी की उस विशेषता की ओर ध्यान देते हैं जिसने आपको आज के शायरों का सरदार बना दिया है और जिसने आपकी शायरी को एक निराली और बहुत प्यारी शान दे दी है। हमारा मतलब आपकी हँसी-दिल्लगी के रंग की शायरी से है जो आपकी तमाम रचनाओं में पाई जाती है और जिससे आपकी नसीहतें बहुत सुहानी और पुरअसर और आपकी लताड़ दिल मे बहुत घर करनेवाली और कामयाब होती है। संयोग कहिए या भगवान की इच्छा कहिए आपका जन्म देश के बौद्धिक उत्थान की दृष्टि से भारतीय इतिहास के एक नाजुक ज़माने में हुआ है जिसमें दो शानदार ताक़तवर तहज़ीबों की कशमकश हो रही है। एक तरफ पश्चिमी सभ्यता का सिक्का फिर रहा है दूसरी तरफ पूर्वी सभ्यता दिलों पर आधिपत्य जमाये हुए है। विचारो और सामाजिक रहन-सहन, ग़रज़ कि जिन्दगी के हर पहलू में उलट-पुलट का ज़माना है। अभी तक किसी हालत पर ठहराव की सूरत पैदा नहीं हो रही है और इसलिए तरह-तरह की बुराइयाँ दिखाई दे रही है और देशवासियो के विचारों और वार्तो, ज्ञान और आचार, धर्म और सामाजिकता, भावनाओ और संवेदनाओ में अजब विरोध और जल्दी-जल्दी होनेवाले परिवर्तन और तरह-तरह की एक-दूसरे की विरोधी चीजें दिखाई दे रही हैं। ऐसी हालत में एक प्यार से नसीहत करनेवाला आदमी दिल्लगी और मज़ाक से जो काम ले सकता है वह नीति और उपदेश के वाक्यों से संभव नहीं है और यही जनाब अकबर की हँसी-दिल्लगी का असल कारण है। इस रंग में उनकी शायरी ने जो कमाल हासिल किया है वह उर्दू में आज तक किसी को नसीब ही नहीं हुआ। एक लफ्ज़, एक फ़िक़रे में आप वह बात पैदा कर देते हैं* जो दूसरों से पन्ने के पन्ने रंग डालने पर भी मुमकिन नहीं। कुछ शेर तो बिल्कुल केसर की क्यारियाँ है। पोलीटिकल वाक़यात का भी आपने मज़ाक़ उड़ाया है—

कर्ज़न ओ किचनर की हालत पर जो कल
वह सनम तशरीह का तालिब हुआ

---

* मसलन् जब लार्ड कर्जन ने कलकत्ता यूनिवर्सिटी में आम एशियाई क़ौमों और खासकर हिन्दुस्तानियों पर झूठ बोलने का अभियोग लगाया तो आपने 'ज़माना' में क्या खूब लिखा था कि—

बेढब ये झूठ सच की छिड़ी हिन्द में बहस
झूठे हैं हम तो आप हैं झूठों के बादशाह

कह दिया मैंने कि है यह साफ बात
देख लो तुम जन पे नर गालिब हुआ

वक्त की मुनासिबत

शेख साहब यह तो अपने अपने मौक़े की है बात
आप क़िब्ला बन गये मैं एस्क्वायर हो गया

इस जमाने के नौजवानों के हाल पर ये शेर भी खूब कहा है—

परी के ज़ुल्फ़ में उलझा न रोशे वाइज़ मे
दिले ग़रीब हुआ लुकमा इम्तहानों का
वह हाफिज़ा जो मुनासिब था एशिया के लिए
खज़ाना बन गया योरप की दास्तानों का

आसाइशे उम्र के लिए काफी है
बीवी राज़ी हों और कलक्टर साहब

पर्दा और हिन्दुस्तानी

परदे में जरूर है तवालत बेहद
इंसाफ-पसंद को नही चाहिए हट
तशबीह बुरी नहीं अगर मैं यह कहूँ
बेगम साहब पेचवां लेडी सिगरेट

हर रंग की बातों का मेरे दिल मे है झुरमुट
अजमेर मे कुलचा हूँ अलीगढ़ में हूँ बिस्कुट
पाबंद किसी मशरब ओ मिल्लत का नही हूँ
घोड़ा मेरी आज़ादी का अब जाता है बगट्टुट

बी शेख़ानी भी हैं बहुत जोहोश
कहती हैं शेख़ से बजोशो खरोश
ख्वाह लुंगी हो ख्वाह हो तहमत
दर अमलकोश हरचे ख्वाहो पोश

शमा से तशबीह पा सकते हैं यह ऐयाश अमीर
रात भर पिघला करें दिन भर रहें बालाए ताक
मेरे मन्सूबे तरक्की के हुए सब पायेमाल
बीज मग़रिब ने जो बोया वह उगा और फल गया
बूट डासन ने बनाया मैंने एक मज़मूं लिखा
मुल्क में मज़मूं न फैला और जूता चल गया

कोठी मे जम है न डिपाजिट है बैंक्स में
कुल्लाश कर दिया मुझे दो चार थैंक्स मे

पाइनियर के सफ़े अव्वल मे जिसका नाम हो
मैं वली समझूँ जो उसको आकबत की फ़िक्र हो

जाले दुनिया से बेखबर है आप
गो तक़द्दुस मआब बेशक है
शेख जी पर यह क़ौल सादिक है
चाहे जमज़म के आा मेंढक है

माशा अल्लाह वह डिनर खाते है
बंगाली भाई उनका सर खाते है
बस हम है खुदा के नेक बंदे अकबर
उनकी गाते है अपने घर खाते है

मुवक्किल छुटे उनके पंजे से सब
तो बस कौमे मरहूम के सर हुए
पपीहे पुकारा किये पी कहाँ
मगर वह पिलीडर से लीडर हुए

शू मेकरो शुरू जो की एक अज़ीज़ ने
जो सिलसिला मिलाते थे बहराम गोर से
पूछा कि भाई तुम तो थे तलवार के धनी
मूरिस तुम्हारे आये थे गजनी व गोर से

कहने लगे है इसमें भी एक बात नोक की
रोटी अब हम कमाते है जूती के ज़ोर से

अपने भाई के मुकाबिल किब्र से तन जाइए
गैर का जब सामना हो बस कुली बन जाइए
चंदे की मजलिस मे पढिए रो के कुरआने मजीद
मजहबी महफ़िल में लेकिन मिस्ले दुश्मन जाइए

आपकी अंजुमन की है क्या बात
आह छुपती है वाह छपती है
अपनी गरह से कुछ न मुझे आप दीजिए
अखबार में तो नाम मेरा छाप दीजिए

॥ अकबर की शायरी पर एक नज़र ॥

मुहताज और वकील ओ मुख्तार हैं आप
सारे अमलों के नाज़बरदार हैं आप
आवारा ओ मुतशर हैं मानिन्दे गुवार
मालूम हुआ मुझे जमीन्दार हैं आप

पाठक देखें कि अकबर ने हँसी-मजाक में भी कैसी खूबियाँ पैदा की हैं और सचमुच आधुनिक सभ्यता और समाज-व्यवस्था का खाका खींच दिया है। इस रंग मे सैकड़ों शेर लिखे हैं। हँसी-दिल्लगी के इस नये रंग मे आपको बड़ी मेहनत करनी पड़ी होगी इसलिए कि यह हँसी-दिल्लगी का रंग बिल्कुल नया है।

ऊपर के उद्धरणो मे पाठको को मालूम हो गया होगा कि हज़रत अकबर राजनीति की बारीकियों मे भी कैसी खूबी के साथ मजाक़ के ढंग में अपनी बात कहते हैं। आपके विचार बिलकुल स्वतंत्र हैं। राष्ट्रीय मामलों में अनुचित जोश को बुरा समझते हैं। इसके साथ ही साथ खुशामद और चापलूसी की पॉलिसी भी पसद नही करते। कहते हैं—

मेरे नज़दीक यह पजाब का बलवा भी बुरा
साथ ही इसके अलीगढ का ये हलवा भी बुरा
आप इजहारे वफ़ा कीजिए तमकीन के साथ
लेट जाना भी बुरा नाज का जलवा भी बुरा
न निरे ऊँट हो न हो बुलडाग
न तो मिट्टी ही हो न हो तुम आग
चाल है एतदाल की अच्छी
साज़े हिकमत का जोड़ है यह राग

मगर नरम रास्ते पर चलने का मतलब यह नही कि आज की जमाने की असलियत को सही तौर पर महसूस न किया जाय या उससे आँख बन्द कर ली जाय। आपने क्या खूब कहा है—

यह बात ग़लत दारुस्सलाम है हिन्द
यह झूठ कि मुल्के लछमन ओ राम है हिन्द
हम सब हैं मुतीअ व खैरख्वाहे इंगलिश
योरप के लिए बस एक गोदाम है हिन्द
दिल उस बुते फ़िरंग से मिलने की शकल क्या
मेरी ज़बान और है उसकी ज़बान और
बंगाली हाथ में क़लम ले तो क्या
मुस्लिम जो मिसाले बज़्मे जम ले तो क्या

हिन्दी की नजात है निहायत मुश्किल
सौ मर्तबा मरके वो जनम ले तो क्या
या स्टेशन के बदले दूध चा और खाँड ले
या एजीटेशन के बदले तू चला जा माँडले

बहसे मुल्की में तो पड़ना है तेरी दीवानगी
पॉलिसी उनकी रहे क़ायम हमारी दिल्लगी

दिलचस्प हवायें सूए गुलशन पहुँचीं
जुल्फें शिमले से ता-ब-दामन पहुँची
दुर्गाबाई से राजा जी जब रूठे
सदके होने को बी नसीबन पहुँचीं

आप हिन्दू-मुसलिम एकता की सख्त ज़रूरत को महसूस करते हैं और उस पर बड़े मज़ेदार और असर करनेवाले ढंग से जगह-जगह ज़ोर देते और अफ़सोस करते हैं कि—

वह लुत्फ़ अब हिन्दू व मुसलमाँ मे कहाँ
अगियार उन पर गुजरते हैं खंदाज़ना
झगड़ा कभी गाय का जबाँ की कभी बहस
है सख्त मुज़िर यह नुसखये गाओज़बाँ

फिर कहते हैं कि—

हिन्दू व मुस्लिम एक हैं दोनों
यानी ये दोनो एशियाई हैं
हम-वतन हम-ज़बाँ व हम-क़िस्मत
क्यों न कह दूँ कि भाई भाई हैं

समय की आवश्यकता को समझनेवाले एक विचारक की हैसियत से आप आपसी झगड़ों और दोनों की कमज़ोरियों को समझते हैं। आप जानते हैं कि आये दिन की आपस की होड़ और कनबतियाँ दिलों को एक-दूसरे से फेर रही हैं। दोनों—

चुगलियाँ एक दूसरे की वक़्त पर जड़ते भी हैं
नागहाँ गुस्सा जो आ जाता है लड़ पड़ते भी हैं
हिन्दू व मुस्लिम हैं फिर भी एक और कहते हैं सच
है नज़र आपस को हम मिलते भी हैं लड़ते भी हैं
कहता हूँ मैं हिन्दू व मुसलमाँ से यही
अपनी अपनी रविश पे तुम नेक रहो

लाठी है हवाए दहर पानी बन जाओ
मौजों की तरह लडो मगर एक रहो

आप एक जगह मजाक के ढंग में यहाँ तक कहते है कि एक को अपनो हज़ल छोड कर दूसरे के जटल तक में शरीक हो जाना चाहिए। इसमें यह ज़रूर होगा कि "न लाट साहब खिताब देंगे न राजा जी से मिलेगा हाथी" लेकिन "यह तो कोई न कह सकेगा तुम्हारे दुश्मन कहाँ, बगल मे।"

आप समझते है और किस खूबी से इस बात को कहते है कि कौम अपनी ही बाजुओं की ताकत से उभर सकती है क्योकि—

दुनिया में ज़रूरत ज़ोर को है और आप में मुतलक ज़ोर नही
यह सूरते हाल रही क़ायम तो अम्न की जा जुज गोर नहीं
ऐ भाइयो बाबू साहब से खिचने का नही है कोई महल
गो नस्ले अलाउद्दीन में हो मसकन तो तुम्हारा गोर नहीं

एक दूसरे राजनीतिक मसले को कैसे कविता के रूपक मे बांधा है—

ऊँट ने गावों की जिद पर शेर को साझी किया
फिर तो मेढक से भी बदतर सबने पाया ऊँट को
जिसपे रक्खा चाहते हो बाकी अपनी दस्तरस
मुँह में हाथी के कभी ऐ भाई वह गन्ना न दो

देश की उन्नति के सब अच्छे आंदोलनों के साथ आपको पूरी सहानुभूति है। आपकी शायरी मे ऐसे शेर अक्सर मिलते है जो देश का काम करनेवालों के लिए मशाल बन सकते है। मजाक उडाने के काबिल बातों का खाका उडाने के साथ-साथ अच्छे आदोलनों के समर्थन में आप दिल भी किस तरह बढ़ाते हैं। स्वदेशी के आंदोलन पर क्या खूब कहा है—

दाखिल मेरी दानिस्त में ये काम है पुन में
पहुँचायेगा कूते शजरे मुल्क के बुन में
तहरीके स्वदेशी पे मुझे वज्द है अकबर
क्या खूब ये नगमा है छिड़ा देस के धुन में

आधुनिक सभ्यता के मज़ाक के क़ाबिल पहलुओं पर हम हज़रत अकबर के खयाल जाहिर कर चुके है। इस वक्त चंदों की भरमार और अमली और असली काम की कमी इस नई सभ्यता की एक निराली शान है जिस पर हँसी आती है। रुपये का ज़ोर, रुपये का वक्त-बेवक़्त ज़िक्र, इसके वसूल करने की भाँति-भाँति की युक्तियाँ—गरज़ इन सब बातों पर आपने खूब ले-दे की है। आप

अलीगढ कालेज के संस्थापक के मित्रो मे है मगर किसी के पिछलगू नहीं बल्कि बिल्कुल स्वतंत्र विचार के आदमी है और जिसमे जो कमजोरी देखते है इस तरह कह देते हैं कि किसी को बुरा भी न लगे और सब के कान भी खुल जायें।

अलीगढ कालेज के नामी संस्थापक की आपने अक्सर मौकों पर बडे जोर से तारीफ की है मगर पकड़ की बातों पर मजाक भी खूब उड़ाया है। यहाँ पर हम सिर्फ़ कुछ बातों पर आपके हँसा देनेवाले रिमार्क और फब्तियाँ पाठको के मनोरंजन के लिए पेश करते है—

कीजिए साबित खुश अखलाकी मे अपनी खूबियाँ
यह नमूदे जुब्बा औ दस्तार रहने दीजिए
जालिमाना मशविरों मे मैं नही हूँगा शरीक
ग ही को महरमे असरार रहने दीजिए
खुल गया मुझ पर बहुत हैं आप मेरे खैरख्वाह
खैर चन्दा लीजिए तूमार रहने दीजिए

असीरे दामे जुल्फे पालिसी मुद्दत से बंदा है
फ़साहत नज्र लेक्चर है रियासत नज्र चदा है

जज़िये को सिधारे हुए मुद्दत हुई अकबर
अलबत्ता अलीगढ की लगी एक यह पख है

अब कहाँ तक बुतकदे में सर्फ़े ईमाँ कीजिए
ता कुजा इश्के बुताने सुस्त पैमाँ कीजिए
हैं यही बेहतर अलीगढ जाके सैयद से कहूँ
मुझसे चंदा लीजिए मुझको मुसलमाँ कीजिए

जेब खाली फिरा किया बंदा
ले गये अहबाब इस कदर चंदा

ईमान बेचने पे हैं अब सब तुले हुए
लेकिन खरीद हो जो अलीगढ के भाव से

शेख साहब चल बसे कालिज के लोग उभरे हैं अब
ऊँट रुखसत हो गये पोलो के घोड़े रह गये

गरज कहाँ तक चुनिए, उस युग-कवि ने जिन्दगी के हर पहलू पर बड़ी गहरी नजर डाली है और मजाक-मजाक़ में सब कुछ दिल मे बैठा दिया है।

॥ अकबर की शायरी पर एक नज़र ॥

निजी बातों की भी कहीं-कहीं झलक मिल जाती है। हज़रत अकबर ने अपने कुल्लियात से जीवनचरित का काम नहीं लिया है तो भी कहीं-कहीं पर दिल के भावों के साथ एक-आध निजी विचार भी शामिल हो गये हैं। कई साल से आपको आँखों की सख़्त शिकायत है—

कौंसिल से हर तरह का क़ानून आ रहा है
मतबे से हर तरह का मज़मून आ रहा है
लेकिन पढ़ूँ मैं क्योंकर आँखों की है यह हालत
अश्क आ रहे थे पहले अब खून आ रहा है

बिसारत ने कमी की इनहिताते उम्र में अकबर
बसीरत है तो आँखें मुझसे अब आँखें चुराती हैं

एक लम्बे अर्से तक आपके साहबज़ादे लंदन में और आप यहाँ, निश्चित अवधि के बाद उनकी जल्द वापसी के लिए बेचैन थे। अक्सर जगहों पर यह बेचैनी ज़ाहिर हो गई है—

हिन्द में मैं हूँ मेरा नूरे-नज़र लंदन में है
सीना पुरग़म है यहाँ लख़्ते जिगर लंदन में है
दफ़्तरे तदबीर तो खोला गया है हिन्द में
फ़ैसला किस्मत है ऐ अकबर मगर लंदन में है

अब हम इस लेख को समाप्त करते हैं। आपकी शायरी बहुत सी ख़ूबियों का ख़ज़ाना है और शायरी की उस कसौटी पर, जो आपने ख़ुद अपने यहाँ क़ायम की है, पूरी उतरती है।

—ज़माना, सन् १६०६

गालियाँ

हर एक जाति का बोल-चाल का ढंग उसकी नैतिक स्थिति का पता देता है। अगर इस दृष्टि से देखा जाये तो हिन्दुस्तान सारी दुनिया की तमाम जातियों में सबसे नीचे नज़र आयेगा। बोलचाल की गम्भीरता और सुथरापन जाति की महानता और उसकी नैतिक पवित्रता को व्यक्त करती है और बदज़बानी नैतिक अन्धकार और जाति के पतन का पक्का प्रमाण है। जितने गन्दे शब्द हमारी ज़बान से निकलते हैं शायद ही किसी सभ्य जाति की ज़बान से निकलते हों। हमारी ज़बान से गालियाँ ऐसे धडल्ले से निकलती है कि जैसे उनका ज़बान पर आना एक ज़रूरी बात है। हम बात-बात पर गालियाँ बकते है और हमारी गालियाँ सारी दुनिया की गालियो से निराली, घृणित और गंदी होती है। हमीं है कि एक दूसरे के मुँह से माँओ, बहनों, बेटियों के बारे में गंदी से गंदी गालियाँ सुनते है और पैंतरे बदलकर रह जाते है बल्कि बहुत बार हमें इसका एहसास भी नही होता कि हमारा कुछ अपमान हुआ है। जिन गालियो का जवाब किसी दूसरी कौम का आदमी तलवार और पिस्तौल से देगा उससे कई गुना घृणित और गंदी गालियाँ हम इस कान से सुन कर उस कान उडा देते है। हमारी गालियों से माँ, बहन, बीबी, भाई, कोई नही बचता। हम अपनी नापाक ज़बानों से इन पाक रिश्तों को नापाक करते रहते है।

यों तो गालियाँ बकना हमारा सिंगार है मगर खास तौर पर ज़बर्दस्त गुस्से की हालत में हमारी ज़बान के पर लग जाते है। गुस्से की घटा सर पर मँडलाई और मुँह से गालियाँ मूसलाधार मेह की तरह बरसने लगी। अपने दुश्मन या विरोधी को दूर से खडे खरी-खोटी सुना रहे है, आस्तीनें चढाते है, पैंतरे बदलते हैं, आँखें लाल-पीली करते है और सारा जोश चन्द नापाक गालियों पर खत्म हो जाता है। विरोधी की सत्तर पुश्तो को ज़बान की गंदगी से लथपथ कर देते है। उसी तरह विरोधी भी दूर ही से खड़ा हमारी गालियों का तुर्की बतुर्की जवाब दे रहा है। इसी तरह घंटों तक गाली-गलौज के बाद हम धीमे पड़ जाते है और हमारा गुस्सा पानी हो जाता है। इससे बढ़कर हमारे जातीय कमीनेपन और नामर्दी का सुबूत नही मिल सकता कि जिन गालियों को सुन कर हमारे खून में जोश आ जाना चाहिये उन गालियों को हम दूध की तरह पी जाते हैं। और

फिर अकड़कर चलते हैं कि जैसे हमारे ऊपर फूलों की वर्षा हुई है। यह भी जातीय पतन की एक देन है। जातीय पतन दिलो की इज्जत और स्वाभिमान की चेतना मिटाकर लोगों को बेगैरत और बेशर्म बना देती है। जब अनुभूति की शक्ति मिट गई तो खून मे जोश कहाँ से आये। जो कुछ थोडा-बहुत बासी कढी का सा उबाल आता है उसका जोर जबान से कुछ थोडे से गंदे शब्द निकाल देने पर ही खत्म हो जाता है।

गुस्से की हालत मे ज़बान की यह रवानी औरतों मे ज्यादा रंग दिखाती है। दो हिन्दुस्तानी औरतो की तू-तू मैं-मैं देखिए और फिर सोचिए कि जो लोग हमको अर्ध-बर्बर कहते हैं वे किस हद तक ठीक कहते हैं। कुंजडे, खटिक, भठियारे यह सब जातियाँ जबानी गंदगी के लिए (क्या नैतिक गंदगी नही ?) खास तौर पर मशहूर हैं। क्या-क्या गंदगियाँ उनकी ज़बान से निकलती हैं कि तौबा। जिन शब्दों की याद एक लज्जाशील स्त्री के गालो को लाज से लाल कर देगी वे शब्द *इन औरतो की ज़बान से बेधडक और मोटरकार की रवानी के साथ निकलते हैं।* अब्बासी और दुलरिया ज़रा पुरज़ोर लहजे में विचारो का लेन-देन कर रही है। अब्बासी दुलरिया के बेटे को चबा जाती है। दुलरिया उसके शौहर को कच्चा खा जाती है। *तब अब्बासी उसके दामाद को निगल लेती है।* इसके जवाब मे दुलरिया उसके दामाद को देवी की भेंट चढा देती है। अब्बासी झुँझला कर दुलरिया के बूढे दादा की लम्बी दाढी को जलाकर खाक कर देती है क्योंकि इस गरीब के बदन में अब हड्डियो को छोड़कर गोश्त का नाम भी नही रहा वर्ना शायद उसे भी निगल जाती। दुलरिया जामे से बाहर होकर अब्बासी के सातों पुश्त के मुँह पर तारकोल लपेट देती है। बदक़िस्मती से यह रवानी अधिकाश श्रेणियों की औरतो में कमोबेश पाई जाती है, और यह गालियाँ उन गंदी नापाक गालियों के मुकाबले मे कुछ भी नही है जो हम आये दिन बाजारो और गलियों में सुना करते हैं।

गालियों से हमें कुछ प्रेम-सा हो गया है। गालियाँ बकने और सुनने से हमारा जी ही नही भरता। साफ़-सुथरा मज़ाक हमारे यहाँ करीब-क़रीब गायब है। मज़ाक जो कुछ है वह गाली-गलौज पर खत्म हो जाता है। हमने गालियाँ देने और सुनने के लिए रिश्ते मुक़र्रर कर लिये हैं। बीवी का भाई अपने बहनोई और बहनोई के दोस्त और उन दोस्तों के परिचितों और टोले-मुहल्ले के हर आदमी के लिए यकसाँ तौर पर फ़ोहश मज़ाक़ का निशाना है। जो होता है उसे अपनी हैसियत के हिसाब से गालियाँ देता है। उसकी बहनें और उसके घर की बड़ी-बूढियाँ एक भी इस भेड़ियाधसान हमले से बेदाग नहीं रहने पातीं। इस गरीब

को गंदी-गंदी बातें सुनाना हर आदमी अपना हक समझता है। उसे गंदे शब्दों से पुकारना, उसे ललचाई नजरों से देखना हर बड़े-बूढे का जरूरी काम है। उसी तरह जब कोई आदमी अपने ससुराल जाता है तो सारा मुहल्ला उसे गालियाँ सुनाता है। जवान लोग खामखाह उसकी बहन से ब्याह करने पर आमादा होते हैं और बूढ़े उसकी माँ से औरत-मर्द का रिश्ता मिलाते हैं और यह बेहूदा बातचीत जिन्दादिली में दाखिल समझी जाती है। शादियों में दूल्हे के साथ ससुराल में क़दम-कदम पर ज़बानी और अमली मजाक किये जाते हैं। सालियाँ, सलहजें, सास सभी उसे गालियाँ देने और उसके मुँह से गालियाँ सुनने की तमन्ना रखती हैं। देवर-भौजाई की नोक-झोक कौन नहीं जानता। भावज के साथ हर तरह की दिल्लगी जायज है। और वह दिल्लगी क्या है ? गालियाँ। हमारे यहाँ गालियों का कुछ कम घृणित नाम दिल्लगी है।

हमारे देश मे गालियाँ केवल गद्य में ही नही पद्य में भी दी जाती है। हम गालियाँ गाते है और वह भी खुशी के मौके पर। अगर शोक के अवसर पर गालियाँ गाई जायें तो शायद उसकी यह व्याख्या की जा सके कि हम जालिम आसमान और बेवफा तकदीर को कोस रहे है। लेकिन खुशी के जलसों मे गालियाँ गाना अनोखी बात है। हाँ, इन गालियों में वह शैतानियत, वह खूँख़ारी और वह दिल को दुख पहुँचाने की बात नही होती जो गुस्से की हालत में गालियों में पाई जाती है। तब भी इन गीतो का एक-एक शब्द दिलो मे गंदे खयाल और गंदी भावनायें उभारता है। इसकी व्याख्या इसके सिवा और क्या की जा सकती है कि हमारा कामुक स्वभाव वासना उभारनेवाली गालियाँ सुनकर खुश होता है। बारात दरवाजे पर आई और गालियों से उसका स्वागत किया गया और फिर लोग उसके आतिथ्य-सत्कार में लग गये लेकिन ज्यो ही खाने का वक्त आया, लोग हाथ-पांव धो-धो कर पत्तलो पर कढ़ी-भात खाने बैठे कि चारों तरफ से गालियों की बौछार होने लगी और गालियाँ भी ऐसी-वैसी नही, पंचमेल, कि शैतान सुने तो जहन्नुम से निकल भागे। लोग सपड़-सपड भात खा रहे हैं, ढोल-मजीरे बज रहे है, वाह-वाह मची है और गालियाँ गाई जा रही है गोया पेट भरने के लिए भात के अलावा गालियाँ खाना भी जरूरी है। और है भी ऐसा ही। लोग ऐसे शौक़ से गालियाँ सुनते है कि शायद रामायण, महाभारत और सत्यनारायण की कथा भी न सुनी होगी। मुस्कराते है, मुग्ध हो कर गर्दन हिलाते है और एक दूसरे का नाम गंदगी में लिथेड़े जाने के लिए पेश करते है। जिन महाशयों के नाम इस तरह पेश होते है वे इसे अपना सौभाग्य समझते है। और दावत खत्म होने के बाद कितने ही ऐसे लोग बच रहते है जिनके दिल में गालियाँ खाने की

फिर अकड़कर चलते हैं कि जैसे हमारे ऊपर फूलों की वर्षा हुई है। यह भी जातीय पतन की एक देन है। जातीय पतन दिलों की इज्जत और स्वाभिमान की चेतना मिटाकर लोगों को बेगैरत और बेशर्म बना देती है। जब अनुभूति की शक्ति मिट गई तो खून में जोश कहाँ से आये। जो कुछ थोड़ा-बहुत बासी कढ़ी का सा उबाल आता है उसका जोर जबान से कुछ थोड़े से गंदे शब्द निकाल देने पर ही खत्म हो जाता है।

गुस्से की हालत में जबान की यह रवानी औरतों में ज्यादा रंग दिखाती है। दो हिन्दुस्तानी औरतों की तू-तू मैं-मैं देखिए और फिर सोचिए कि जो लोग हमको अर्ध-बर्बर कहते हैं वे किस हद तक ठीक कहते हैं। कुंजड़े, खटिक, भटियारे यह सब जातियाँ जबानी गंदगी के लिए (क्या नैतिक गंदगी नहीं ?) खास तौर पर मशहूर हैं। क्या-क्या गंदगियाँ उनकी जबान से निकलती हैं कि तौबा। जिन शब्दों की याद एक लज्जाशील स्त्री के गालों को लाज से लाल कर देगी वे शब्द इन औरतों की जबान से बेधड़क और मोटरकार की रवानी के साथ निकलते हैं। अब्बासी और दुलरिया जरा पुरजोर लहजे में विचारों का लेन-देन कर रही हैं। अब्बासी दुलरिया के बेटे को चबा जाती है। दुलरिया उसके शौहर को कच्चा खा जाती है। तब अब्बासी उसके दामाद को निगल लेती है। इसके जवाब में दुलरिया उसके दामाद को देवी की भेंट चढ़ा देती है। अब्बासी भुँझला कर दुलरिया के बूढ़े दादा की लम्बी दाढ़ी को जलाकर खाक कर देती है क्योंकि इस ग़रीब के बदन में अब हड्डियों को छोड़कर गोश्त का नाम भी नहीं रहा वर्ना शायद उसे भी निगल जाती। दुलरिया जामे से बाहर होकर अब्बासी के सातों पुश्त के मुँह पर तारकोल लपेट देती है। बदकिस्मती से यह रवानी अधिकांश श्रेणियों की औरतों में कमोबेश पाई जाती है, और यह गालियाँ उन गंदी नापाक गालियों के मुकाबले में कुछ भी नहीं हैं जो हम आये दिन बाजारों और गलियों में सुना करते हैं।

गालियों से हमें कुछ प्रेम-सा हो गया है। गालियाँ बकने और सुनने से हमारा जी ही नहीं भरता। साफ़-सुथरा मजाक हमारे यहाँ करीब-क़रीब गायब है। मजाक़ जो कुछ है वह गाली-गलौज पर खत्म हो जाता है। हमने गालियाँ देने और सुनने के लिए रिश्ते मुकर्रर कर लिये हैं। बीवी का भाई अपने बहनोई और बहनोई के दोस्त और उन दोस्तों के परिचितों और टोले-मुहल्ले के हर आदमी के लिए यकसाँ तौर पर फ़ोहश मजाक़ का निशाना है। जो होता है उसे अपनी हैसियत के हिसाब से गालियाँ देता है। उसकी बहनें और उसके घर की बड़ी-बूढ़ियाँ एक भी इस भेड़ियाधसान हमले से बेदाग नहीं रहने पातीं। इस ग़रीब

को गंदी-गंदी बातें सुनाना हर आदमी अपना हक समझता है। उसे गंदे शब्दों से पुकारना, उसे ललचाई नजरों से देखना हर बड़े-बूढ़े का ज़रूरी काम है। उसी तरह जब कोई आदमी अपने ससुराल जाता है तो सारा मुहल्ला उसे गालियाँ सुनाता है। जवान लोग खामखाह उसकी बहन से ब्याह करने पर आमादा होते हैं और बूढ़े उसकी माँ से औरत-मर्द का रिश्ता मिलाते हैं और यह बेहूदा बातचीत ज़िन्दादिली में दाखिल समझी जाती है। शादियों मे दूल्हे के साथ ससुराल में क़दम-कदम पर ज़बानी और अमली मजाक किये जाते हैं। सालियाँ, सलहजें, सास सभी उसे गालियाँ देने और उसके मुँह से गालियाँ सुनने की तमन्ना रखती हैं। देवर-भौजाई की नोक-झोक कौन नही जानता। भावज के साथ हर तरह की दिल्लगी जायज़ है। और वह दिल्लगी क्या है ? गालियाँ। हमारे यहाँ गालियों का कुछ कम घृणित नाम दिल्लगी है।

हमारे देश मे गालियाँ केवल गद्य में ही नही पद्य मे भी दी जाती है। हम गालियाँ गाते है और वह भी खुशी के मौके पर। अगर शोक के अवसर पर गालियाँ गाई जायें तो शायद उसकी यह व्याख्या की जा सके कि हम ज़ालिम आसमान और बेवफ़ा तकदीर को कोस रहे है। लेकिन खुशी के जलसो में गालियाँ गाना अनोखी बात है। हाँ, इन गालियो मे वह शैतानियत, वह खूँखारी और वह दिल को दुख पहुँचाने की बात नही होती जो गुस्से की हालत में गालियों मे पाई जाती है। तब भी इन गीतो का एक-एक शब्द दिलों में गंदे खयाल और गंदी भावनायें उभारता है। इसको व्याख्या इसके सिवा और क्या की जा सकती है कि हमारा कामुक स्वभाव वासना उभारनेवाली गालियाँ सुनकर खुश होता है। बारात दरवाज़े पर आई और गालियों से उसका स्वागत किया गया और फिर लोग उसके आतिथ्य-सत्कार में लग गये लेकिन ज्यों ही खाने का वक्त आया, लोग हाथ-पाँव धो-धो कर पत्तलो पर कढ़ी-भात खाने बैठे कि चारों तरफ से गालियो की बौछार होने लगी और गालियाँ भी ऐसी-वैसी नही, पँचमेल, कि शैतान सुने तो जहन्नुम से निकल भागे। लोग सपड़-सपड भात खा रहे है, ढोल-मजीरे बज रहे हैं, वाह-वाह मची है और गालियाँ गाई जा रही है गोया पेट भरने के लिए भात के अलावा गालियाँ खाना भी जरूरी है। और है भी ऐसा ही। लोग ऐसे शौक़ से गालियाँ सुनते हैं कि शायद रामायण, महाभारत और सत्यनारायण की कथा भी न सुनी होगी। मुस्कराते है, मुग्ध हो कर गर्दन हिलाते है और एक दूसरे का नाम गंदगी में लिथेड़े जाने के लिए पेश करते है। जिन महाशयो के नाम इस तरह पेश होते है वे इसे अपना सौभाग्य समझते है। और दावत खत्म होने के बाद कितने ही ऐसे लोग बच रहते है जिनके दिल में गालियाँ खाने की

हवस बाकी रहती है। खुशनसीब है वह आदमी जो इस वक्त गालियाँ खाता है। सारी विरादरी की आँखें उसकी तरफ़ उठती हैं। बावजूद इस आदर-सम्मान के वह गरीब बड़े विनयपूर्वक गर्दन झुकाये हुए है। कहीं-कहीं घर की औरतें यह फर्ज अदा करती है लेकिन ज्यादातर जगहों में डोमनियाँ यह पाक रस्म अदा करने के लिए बुलाई जाती हैं। नहीं मालूम ये गीत किसने बनाये हैं। किन्हीं-किन्हीं गीतों में शायरी का रंग पाया जाता है। क्या अजब हैं, किसी रौशन तबीयत के आदमी ने इसी रंग मे अपने फ़न का कमाल दिखाया हो। इस गाने के लिए गानेवालियों को इनाम देना पड़ता है। दुनिया में हिन्दुओं के सिवा और कौन ऐसी जाति है जो गालियाँ खाये और गाँठ से रुपया खर्च करके। इस मैदान मे कायस्थ लोग सभी फ़िरक़ों से बाज़ी ले गये हैं। उनके यहाँ बहुत जमाना नहीं गुजरा कि महफ़िलों मे गालियाँ बक-बककर इल्मी लियाकत दिखाई जाती थी। दूसरी जातियाँ शास्त्रार्थ और इल्मी बहसें करती है और कायस्थ हज़रात गंदी गालियाँ बकने मे अपना पाडित्य दिखाते हैं। क्या उल्टी अक्ल है! शुक्र है कि यह रिवाज अब कम होता जाता है वर्ना गाँव मे किसी लड़के या लड़की की शादी ठहरी और गाँव भर के नौजवान और होनहार लड़के गालियों की गजलें याद करने लगते थे। हफ़्तों और महीनो तक गालियों को रटने के अलावा उन्हें कोई और काम न था। घर के बड़े-बूढ़े शाम को दफ्तर और कचहरी से लौटते तो लड़कों से यह गंदी गजलें सबक़ की तरह सुनते और लबोलहजा दुरुस्त करते। जब बच्चों को गालियाँ माँ के दूध के साथ पिलाई जायें तो जाति मे नैतिक शक्ति क्यों कर आ सकती है।

गुस्से मे हम गाली बकें, दिल्लगी में हम गाली बकें, गालियाँ बककर लियाक़त का ज़ोर हम दिखायें, गीत मे गाली हम गायें—जिन्दगी का कोई काम इससे खाली नहीं, यहाँ तक कि धार्मिक मामलों में भी हमारे यहाँ गाली बकने की जरूरत है। दूसरे सूबों का हमे तजुर्बा नहीं मगर संयुक्त प्रांत के कुछ हिस्सों में दीवाली के दो दिन बाद दूज के रोज गाली बकनेवाली पूजा होती है। सारे गाँव या मुहल्ले की औरतें नहा-धोकर जमा होती हैं, ज़मीन पर गोबर का एक पुतला बनाया जाता है, इस पुतले के इर्द-गिर्द औरतें बैठती हैं और कुछ पान-फूल चढ़ाने के बाद गाली बकना शुरू कर देती हैं। यह त्योहार इसीलिए बनाया गया है। आज के दिन हर औरत का फ़र्ज़ है कि वह अपने प्यारों को गालियाँ दे। जो आज के दिन गालियों से बच जायेगा उसे साल भर के अंदर जरूर यमराज घसीट ले जायेंगे। गोया यमराज से बचने के लिए गालियों की यह मोटी दीवार उठाई गई है! हमने काल से लड़ने के लिए कैसा हथियार निकाला!

॥ विविध प्रसंग ॥

कहीं कहीं यह रिवाज है कि दूज के दिन बजाय अपने प्यारो के दुश्मनों को गालियाँ दी जाती है और गोबर का पुतला फर्जी दुश्मन समझा जाता है। दुश्मन को खूब जी भर कोसने के बाद औरतें इस पुतले की छाती पर ईंट का एक टुकड़ा रख देनी है और फिर उसे मूसल से कूटना शुरू करती है। इस तरह दुश्मन का निशान गोया हस्ती के सफे से मिटा दिया जाता है। गालियों से केवल धर्म खाली था, वह कसर भी पूरी हो गयी।

हमारी रुचि इतनी विकृत हो गई है कि हममें से कितने ही शौकीन, रंगीन तबियत के लोग ऐसे निकलेंगे जो सुन्दरियो के मुंह से गालियाँ सुनना सबसे बड़ा सौभाग्य समझते है। बदजबानी भी गोया हसीनो के नखरे मे दाखिल है। प्रेमीजनों का यह सम्प्रदाय उस सुन्दरी को हरगिज प्रेमिका न कहेगा जिसकी जबान मे शोखी और तेजी नही। जबान का शोख होना माशूक़ियत का सबसे जरूरी जुज समझा जाता है। मगर अफ़सोस कि जबान की शोखी का मतलब कुछ और ही खयाल किया जाता है। अगर माशूक दिल्लगीबाज हाजिरजवाब हो तब तो गोया चार चाँद लग गये। मगर हमारे यहाँ ज़बान की शोखी गाली बकने का दूसरा नाम है। मियाँ मजनूँ लैला से हुस्न का जकात तलब करते है। लैला तेवर बदलकर गालो दे बैठती है। मियाँ मजनूँ ज़रा और सरगर्म होते है तो लैला उनकी मैयत देखने की तमन्ना जाहिर करने लगती है। इस गाली-गलौज का शुमार माशूकाना शोखी मे दाखिल है। जिस हालत मे कि जबान से सच्चाई और आत्मीयता मे डूबे हुए शब्द निकलने चाहिए उस हालत में हमारे यहाँ गाली-गलौज होने लगता है, और अक्सर निहायत गन्दा, फोहश। मगर हमारे स्वर्ग-जैसे देश मे ऐसे लोग भी हैं जिन्हें इन गालियों मे मुहब्बत की दुगनी तेज शराब का मजा आता है और जिनकी महफिलें इस ज़बानो तेजी के बगैर सूनी और बेरौनक रहती हैं। हमारी तहजीब का ढंग ही निराला है। इसी नैतिक पतन ने हिन्दुस्तान को आज ऐसी बेगैरत और बेशर्म क़ौम बना रखा है।

विलायत में बिलिंग्सगेट नाम का एक बाज़ार है। वहाँ की बदज़बानी सारे इंगलिस्तान मे मशहूर है और किताबों में उसकी मिसाल दी जाती है, मगर हमारे हिन्दुस्तान की मामूली बोलचाल के आगे बिलिंग्सगेट के मल्लाह भी शर्म से पानी-पानी हो जायेंगे।

गाली हमारा जातीय स्वभाव हो गई है। किसी इक्के पर बैठ जाइये और सुनिए कि इक्केवान अपने घोड़े को कैसी गालियाँ देता है ऐसी गंदी कि जी मतलाने लगे। वह गरीब घोड़ा और उसकी नेक माँ और बुजुर्ग बाप और नालायक़ दादा, सब इस नेकबख्त औलाद की बदौलत गालियाँ पाते हैं। हिन्दुस्तान

ही तो है, यहाँ के जानवरों को भी गालियों से लगाव है। बैलगाड़ीवाला भी अपने बैलों को ऐसी ही फ़र्माइशी गालियाँ देता है। और तो था ही, सरकार बहादुर ने आजकल गालियाँ बकने के लिए एक महकमा क़ायम कर रक्खा है। इस महकमें में शरीफ़ज़ादे और रईसज़ादे लिये जाते हैं, उन्हें अच्छी अच्छी तनख्वाहें दी जाती हैं और रिआया के अमन-चैन की ज़िम्मेदारी उन पर रक्खी जाती है। इस महकमे के लोग गालियों से बात करते हैं। उनके मुँह से जो बात निकलती है, गंदी, घिनौनी। ये लोग गालियाँ बकना हुकूमत की निशानी और अपने ओहदे की शान समझते हैं। यह भी हमारी टेढ़ी अक्ल की एक मिसाल है कि हम गाली बकने को अमीरी की शान समझते हैं। और देशों में ज़बान का सुथरापन और मिठास, चेहरे की गम्भीरता, शराफ़त और अमीरी के अंग समझे जाते हैं और हिन्दुस्तान में ज़बान की गंदगी और चेहरे का झल्लापन हुकूमत का जुज़ ख़याल किया जाता है। देखिए मोटे ज़मींदार साहब अपने असामी को कैसी गालियाँ देते हैं। जनाब तहसीलदार साहब अपने बावर्ची को कैसी खरी-खोटी सुना रहे हैं और सेठ जी अपने कहार पर किन गंदे शब्दों में गरम होते हैं, गुस्से से नहीं सिर्फ़ अपनी हुकूमत की शान जताने के लिए। गाली बकना हमारे यहाँ रईसी और शराफ़त में दाख़िल है। वाह रे हम!

इन फुटकर गालियों से तबियत भरती न देख कर हमारे बुज़ुर्गों ने होली नाम का एक त्योहार निकाला कि एक हफ़्ते तक हर ख़ास व आम खूब दिल खोल कर गालियाँ देते हैं। यह त्योहार हमारी ज़िन्दादिली का त्योहार है। होली के दिनों में हमारी तबियतें खूब उभार पर होती हैं और हफ़्ते भर तक ज़बानी गंदगी का एक गुबार-सा हमारे दिल व दिमाग़ पर छाया रहता है। जिसने होली के दिन दो-चार कबीर न गाये और दो-चार दर्जन गंदी बातें ज़बान से न निकालीं वह भी कहेगा कि हम आदमी हैं! ज़िन्दगी तो ज़िन्दादिली का नाम है। लखनऊ में एक ज़िन्दादिल अख़बार है। वह भी होली में मस्त हो जाता है और मोटे-मोटे अक्षरों में पुकारता है—

आई होली आई होली, हमने अपनी धोती खोली

यह इस ज़िन्दादिल अख़बार की ज़िन्दादिली है! वह सभ्य और सुसंस्कृत रुचि का समर्थक समझा जाता है। लेकिन जिस देश में गालियों का ऐसा रिवाज हो वहाँ इसी का सुथरे मज़ाक में शुमार है। कुछ हिन्दी अख़बारों की ज़िन्दादिली उन दिनों अथाह हो जाती है। निरन्तर कबीरें छपती हैं और अधिकांश कबीरें शब्दों के अलंकार के पर्दे में गालियों से भरी हुई होती हैं। अगर किसी दूसरी क़ौम का आदमी इन दो हफ़्तों के हिन्दी अख़बार उठाकर देखे तो शायद

दुबारा उनकी सूरत देखने का नाम न लेगा ! हमारे क़ौमी अखबारों की यह हालत हो जाती है ।

तकिया कलाम के तौर पर भी गालियाँ बकने का रिवाज है और इस मर्ज़ मे ज्यादातर नीम-पढे लोग गिरफ्तार पाये जाते है। ये लोग कोई एक गाली चुन लेते है और बातचीत के दौरान मे उसे इस्तेमाल करना शुरू करते हैं, यहाँ तक कि वह उनका तकिया कलाम हो जाती है और बहुत बार उनके मुँह से अनायास निकल पडती है। यह निहायत शर्मनाक आदत है। इससे नैतिक दुर्बलता का पता चलता है और बातचीत की गंभीरता बिल्कुल धूल मे मिल जाती है । जिन लोगों को ऐसी आदत पड गई हो उन्हें तबियत पर ज़ोर डालकर ज़बान में सफाई पैदा करने की कोशिश करनी चाहिए।

क़िस्सा कोताह, हम चाहे किसी और बात में शेर न हों, बदज़बानी मे हम बेजोड़ है । कोई कौम इस मैदान में हमको नीचा नही दिखा सकती । यह हम मानते है कि हममें से कितने ही ऐसे लोग है जिनकी ज़बान की पाकीजगी पर कोई एतराज नही किया जा सकता मगर कौमी हैसियत से हम इस जबर्दस्त कमज़ोरी का शिकार हो रहे है । कौम की उन्नति या अवनति थोड़े से चुने हुए लोगों के निजी गुणो पर निर्भर नही हो सकती ।

सच तो यह है कि अभी तक हमारे मार्गदर्शकों ने इस महामारी को जड से खोदने की सरगर्म कोशिश नही की, शिक्षा की मंदगति पर इसके सुधार को छोड़ दिया और जन साधारण की शिक्षा जैसी कुछ उन्नति कर रही है वह सूरज की तरह रौशन है । इस बात को दुहराने की जरूरत नही कि गालियों का असर हमारे आचरण पर बहुत खराब पड़ता है । गालियाँ हमारी बुरी भावनाओं को उभारती है और स्वाभिमान व लाज-संकोच की चेतना को दिलों से कम करती है जो हमको दूसरी क़ौमों की निगाहों मे ऊँचा उठाने के लिए जरूरी है ।

—ज़माना, दिसम्बर १९०९

भारतीय चित्रकला

भारत की राष्ट्रीय जागृति का सबसे महत्वपूर्ण और शुभ परिणाम वे बैंक और डाकखाने नहीं हैं जो पिछले कुछ सालों में स्थापित हुए और होते जाते हैं, न वे विद्यालय हैं जो देश के हर भाग में खुलते जाते हैं बल्कि वह गौरव जो हमें अपने प्राचीन उद्योग-धन्धों और ज्ञान-विज्ञान व साहित्य पर होने लगा है और वह आदर का भाव जिससे हम अपने देश की कारीगरी के प्राचीन स्मारकों को देखने लगे हैं। हम अब होमर और मिल्टन को कविता का सम्राट् नहीं मानते बल्कि सादी और कालिदास को। यही स्वाभिमान हर एक क्षेत्र में दिखायी देता है। हमारी प्राचीन मूर्तिकला और स्थापत्य कभी क़द्रदानी का मुहताज नहीं रहा। वह अब भी दुनिया में आश्चर्य की दृष्टि से देखा जाता है और उसके जो कुछ चिन्ह वक्त की तबाही से बच रहे हैं वह इस कला में हमको हमेशा बेजोड़ साबित करते रहेंगे। मगर हमारी प्राचीन चित्रकला बहुत ज़माने से गुमनामी के गड्ढे में पड़ी रही और न सिर्फ़ योरप के छान-बीन करनेवालों ने यह नतीजा निकाल लिया था कि भारत में इस कला का कभी उन्नयन नहीं हुआ बल्कि हिन्दुस्तानी भी इस विचार में उनका साथ देने लगे थे। मगर इस राष्ट्रीय जागृति ने हमारा ध्यान इस कला की ओर उन्मुख कर दिया है और जहाँ कुछ साल पहले एक व्यक्ति भी ऐसा न था जो विश्वास के साथ कह सके कि हिन्दुस्तान ने इस कला में भी कमाल हासिल किया था वहाँ आज हज़ारों हिन्दुस्तानी ऐसे हैं जो अपनी प्राचीन चित्रकला का महत्व समझने लगे हैं, और वह आसानी से इस बात को हरगिज़ न मानेंगे कि इस ललित कला को कमाल पर पहुँचाने का सेहरा इटली के सर है। जिस दिमाग़ ने कविता और स्थापत्य में अपने चमत्कार दिखाये वह चित्रकला में कैसे न दिखाता। यह तीनों कलायें परस्पर इतनी सम्बद्ध हैं कि एक का उन्नति करना और दूसरे का जन्म ही न लेना असम्भव है यद्यपि यह सम्भव है कि कविता की तुलना में मूर्तिकला और चित्रकला की उन्नति अधिक दिनों में हो। बड़े संतोष की बात है कि इतने दिनों की बेखबरी के बाद हमारे दिलों में इस कला का सम्मान करने का भाव उत्पन्न हुआ और इसके लिए हमको कलकत्ते के महान् चित्रकार बाबू अवनीन्द्र नाथ टागुर का कृतज्ञ होना चाहिए। उन्होंने प्राचीन पद्धति पर नये रंग का रोगन देकर

भारत की नयी चित्रकला की नींव डाल दी है और योरोपियन चित्रकारों की नक़्क़ाली के कलंक से इस कला को बचा लिया है। उनके कई शिष्य जिनमे से कुछ के चित्र योरप और हिन्दुस्तान मे बडे सम्मान की दृष्टि से देखे गये है, उन्हीं पद चिन्हों पर चल रहे है। इस स्कूल का नैतिक मानदण्ड बहुत ऊँचा है, और वह अपने चित्रों पर राष्ट्र के सर्वोत्तम विचारों और भावो का प्रतिबिम्ब उत्पन्न कर देता है जो हर देश की चित्रकला की जान है। बाबू अवनीन्द्र नाथ के चित्र अधिकतर ऐतिहासिक और धार्मिक होते है। कालिदास के ऋतुसंहार के भी कई दृश्य आपने अपने जोरदार क़लम से खीचे है। मगर यह चित्र चाहे साहित्यिक हों, चाहे ऐतिहासिक उनका सबसे बड़ा गुण यह है कि वे जातीयता की भावना से भरपूर होते है। सीलोन के प्रसिद्ध कला-मर्मज्ञ डा० आनन्द कुमारस्वामी ने भी हमारी चित्रकला को अंधेरे और गुमनामी के कोने से निकालने मे जबर्दस्त कोशिश की है।

पिछले तीन-चार साल से आपने इसी विषय पर हिन्दुस्तान और योरप की नामी पत्रिकाओं में कई जोरदार लेख लिखे है और प्राचीन चित्रकला के कितने ही ऐसे नमूने पेश कर दिये है जिनसे यह ख्याल जम जाता है कि इस कला में कभी हमको भी कमाल था। यह उन्हीं की जोरदार आलोचनाओं का प्रभाव है कि योरप में हमारी चित्रकला की कुछ-कुछ चर्चा होने लगी है और शायद इस विषय पर आगे चलकर जो किताब लिखी जायगी उसका लेखक भारतीय चित्र-कला को इतनी उपेक्षा की दृष्टि से न देख सकेगा कि उसकी चर्चा ही न करे। इन्हीं महानुभावों की प्रेरणा और प्रभाव से लंदन के कुछ नामी चित्रकारों और आलोचको ने एक संस्था स्थापित की है जिसका उद्देश्य यह है कि वह भारतीय चित्रकला की छान-बीन करे और योरप की कलारुचि में भारतीय चित्रों और भारतीय भावनाओं को समझने की योग्यता पैदा करे और हमारे प्राचीन चित्रों को जमा करने और प्रकाशित करने का प्रबन्ध करे। अभी हाल ही मे मेजर बर्डवुड साहब ने भारतीय चित्रकला को बुरा-भला कहा था और इस धरती को उच्चकोटि की कला के पनपने के लिए हानिकर ठहराया था। यह महाशय बहुत दिनों तक हिन्दुस्तानी उद्योग-धन्धों के प्रशंसक रहे है और कई प्रामाणिक पुस्तकें इस विषय पर लिखी है। मगर जब आपकी वाणी से यह विचार निकले तो लोगों की आँखें खुली लेकिन उनका व्यावहारिक खंडन इसी संस्था के सदस्यों ने किया। उन्होने अंग्रेज़ी पत्रों मे एक लेख प्रकाशित किया जिसमें बर्डवुड की रुचि-हीनता की क़लई खोली गई थी। खेद है कि यह लेख जितने लोगो के नाम से प्रकाशित हुआ उनमें सिर्फ़ दो हिन्दुस्तानी नाम नजर आते थे, बाक़ी सब अंग्रेज थे। ऐसी संस्था का

लंदन में स्थापित होना इस बात का प्रबल प्रमाण है कि भारतीय चित्रकला की खूबियो के पारखी जितने अंग्रेज हैं उतने हिन्दुस्तानी नहीं। हमारे शिक्षित देशवासी अपनी निजी व्यस्तताओं मे इस हद तक फंसे हुए है कि उन्हें इन प्रश्नों की ओर ध्यान देने की जरा भी फुर्सत नही। इसका सबसे बड़ा कारण यह है कि हमारा शिक्षा-क्रम कलारुचि के संस्कार को ओरसे बिलकुल उदासीन है और हमारी चेतनाओं मे वह अनुभूति नहीं जो अपने पुरखों के बड़े कामों पर उत्साह और उमंग के साथ गर्व करे। क्या यह दुख की बात नही है कि योरप और अमरीका के पर्यटक जो कुछ हफ्तों के लिए हिन्दुस्तान आये वे अजन्ता और साँची का दर्शन करना अपना कर्तव्य समझें और हिन्दुस्तानियों को अपने पुरखों की कारीगरी के इन चमत्कारों को देखने की फुर्सत न हो!

भारतीय चित्रकला ऐतिहासिक दृष्टि से तीन युगों में विभाजित होती है—प्राचीन, मध्य और आधुनिक। पहला युग ईसा के दो शताब्दी पूर्व से ईसा की सातवी शताब्दी तक चलता है। यह युग बौद्धों के उदय और विकास का था। बौद्धों ने मूर्तिकला और स्थापत्य को जिस उत्कर्ष तक पहुँचाया उस पर आज सारी दुनिया के लोग अचरज करते हैं मगर जो अधिकार उन्हें चित्रकला पर प्राप्त था उसके बारे मे आमतौर पर लोग नही जानते और न उस युग के चित्र इतनी संख्या में मिलते है जिनसे उनकी महान उपलब्धि का अनुमान सामान्यत. किया जा सके। इस युग के सबसे प्रसिद्ध और प्रशंसनीय स्मारक अजन्ता की गुफाओं के चित्र है। यह गुफायें जो संख्या में उन्नीस है शायद दूसरी और सातवी शताब्दी के बीच बनायी गयी और इन्हें बौद्धों की मूर्तिकला, स्थापत्य और चित्र-कला की प्रौढता के आरम्भ और उत्कर्ष का इतिहास समझना चाहिए। आमतौर पर लोग यह जानते है कि यह गुफा निजाम की सल्तनत के दक्षिणी भाग मे स्थित है। उस युग के चित्रकारो और मूर्तिकारों ने इस गुफा की छतो और दीवारों को अपनी उत्कृष्ट कला के नमूनो से सजाया था। मूर्तियाँ और बेल-बूटे, अब तक अच्छी हालत में है किन्तु अधिकाश चित्र जमाने की उदासीनता के कारण मिट गये फिर भी उनमें से कुछ अब तक क़ायम है। ये चित्र उस युग के सामाजिक रहन-सहन, आचार-विचार, और रीति-रिवाज के विशद इतिहास हैं। इन चित्रों में शरीर के अंगों का अनुपात, शिल्प की सहजता और भावनाओं की वास्तविकता अपने चरम शिखर पर पहुँची हुई है। योरप के कला-पारखियों ने दिल खोलकर इन चित्रों की प्रशंसा की है और उन्हें इटली के चौदहवीं सदी के चित्रों का समकक्ष ठहराया है। इन चित्रों का विषय अधिकतर बौद्ध धर्म से संबंध रखता है मगर कही-कहीं महत्वपूर्ण ऐतिहासिक और सास्कृतिक स्थितियाँ भी बड़ी

खूबी से दिखायी गई है। उस युग की एक आश्चर्यजनक विशेषता यह है कि जहाँ कही उस युग के चित्र मिलते हैं उन सब में एक विशेष प्रकार का साम्य और सादृश्य मिलता है कि जैसे सब एक ही स्कूल के कारीगरो का काम हो। और यह साम्य केवल भारतवर्ष तक सीमित नही। सिगरिया नामक स्थान मे जो सीलोन में स्थित है, छठी और सातवीं शताब्दी के चित्र पाये गये हैं, वे अजन्ता के चित्रों से बहुत मिलते-जुलते हैं। जावा द्वीप मे उस युग के चित्रों का पता चला है और उनमे भी वही सादृश्य और विशेषता पाई गई है। अधिकाश कलामर्मज्ञो का विचार है कि यह साम्य उससे जरा भी कम नही है जो आधुनिक योरपीय चित्रकला में पाई जाती है। योरप के रुचि-साम्य का रहस्य समझ मे आ जाता है क्योंकि उसके अनगिनत साधन उपस्थित हैं, मगर उस पुराने युग मे इस प्रकार का रुचि-साम्य जिन बातों पर आधारित था उनका अंदाज़ा लगाना कठिन है। चूंकि बौद्ध स्थापत्य और चित्रकला का जन्म-स्थान बिहार था इसलिए आवश्यक है कि बिहार के कारीगर हिन्दुस्तान के हर एक हिस्से मे गये होगे और सारे देश मे एक ही रंग का रिवाज पैदा हुआ होगा जो सदियो तक क्रमिक विकास के साथ जारी रहा। मगर यह केवल साधारण अनुमान है जिसकी पुष्टि का कोई साधन उपस्थित नही है। सातवी शताब्दी के बाद भारतीय चित्रकला के सुन्दर मुखडे पर एक अंधेरा पर्दा-सा पड जाता है और मुगल बादशाहों के जमाने तक उसका कुछ हाल नही मालूम होता, न इस बीच के दौर की तस्वीरें मिलती हैं जो अपनी खामोश जबान से अपना कुछ किस्सा सुनायें। इस बीच मे देश की बिलकुल कायापलट हो गई। बौद्ध धर्म जड से उखड़ गया है और उसके साथ उसका स्थापत्य, उसकी मूर्तिकला और चित्रकला ने भी भारतवर्ष को अंतिम नमस्कार कर लिया है। देश के उत्तरी भाग में इस्लामी आक्रमणकारियो ने पैर जमा लिये है और आखिरकार मुल्क का बड़ा हिस्सा उनके अधिकार मे आ गया है। इन बडे-बडे उलटफेरों के साथ-साथ तुर्रा यह कि हिन्दुस्तान के इन नये बादशाहों को चित्रकला से घृणा थी जिसे मौलवी लोग कुफ़ (पाप) खयाल करते थे। ऐसी हालत में चित्रकला का विकास करना तो दूर की बात है जिन्दा रहना मुहाल था। कुछ तो उनके अत्याचारों और कुछ उस अशान्ति और हलचल से जो ऐसे सार्वदेशिक उलटफेरों का ज़रूरी नतीजा हुआ करती है, भारतीय चित्रकला अगर एक सिरे से मिट नही गई तो मिटने के करीब जरूर हो गई।

शहंशाह अकबर के जमाने तक हमको इस कला के फलने-फूलने की तनिक भी सूचना नही मिलती। मगर अकबर का जमाना हर तरफ तरक्कियों का जमाना था। चित्रकला ने भी इसमें अपना हिस्सा पाया। अकबर खुद पढ़ा-

लिखा न था मगर उसको प्रकृति ने वे योग्यताएँ प्रदान की थी जिनमें पुस्तकीय ज्ञान कोई वृद्धि नही कर सकता। उसको संगीत और मूर्तिकला, इतिहास और साहित्य, चित्रकला और स्थापत्य से समान अनुराग था। फतेहपुर सीकरी मे उसने जो इमारतें बनवाईं उनमे हिन्दू और मुसलमान स्थापत्य को इस खूबी से मिलाया है कि उसकी निगाह पर हैरत होती है। हिन्दू चित्रकारों की उसने बड़ी कद्र की। एक मौके पर उसने उनके बारे में कहा था—"उनके चित्र हमारी कल्पना से परे होते है।" इससे पता चलता है कि जब तक हिन्दू चित्रकारों को कला में कुछ विशेष गुण न होते अकबर जैसा सूक्ष्मदर्शी व्यक्ति, जो फ़ारस की चित्रकला की महान उपलब्धियों से परिचित था, हरगिज़ ऐसा न कहता। चित्रकारों की उसकी सच्ची क़द्रदानी का सुबूत इन शब्दों से मिलता है—

"ऐसे बहुत से लोग हैं जो चित्रकला से घृणा करते हैं। मेरी दृष्टि मे ऐसे लोगों का कुछ मूल्य नही। मुझे ऐसा लगता है कि चित्रकार को परमात्मा के ज्ञान के विशेष अवसर प्राप्त हैं क्योंकि जब चित्रकार जीवित प्राणियों की तस्वीरें उतारता और उनकी अंग-रचना को रेखाओं में बाँधता है तो उसके दिल में यह खयाल जरूर आता है कि मै काया मे प्राण नहीं डाल सकता और इस तरह खुदा का बड़प्पन और उसकी जबर्दस्त ताकत तस्वीर बनानेवाले के दिल मे घर कर लेती है और वह योगी के पद पर पहुँच जाता है।"

फतेहपुर सीकरी के कुछ महलों की दीवारो पर, खासतौर पर अकबर के शयनकक्ष में, उस युग के चित्रो के कुछ मिटे हुए चिन्ह बाकी है मगर उनकी संख्या बहुत कम है। उस जमाने की सबसे अनमोल यादगार किताबी तस्वीरें है। पढ़ने वालो को ऊपर मालूम होगा कि बौद्धों के युग मे चित्र दीवारों पर बनाये जाते थे। कागज पर तस्वीर खींचकर, चौखटों से सजाकर उन्हें दीवारो पर लटकाने का रिवाज उस वक्त क्या अकबर के जमाने तक नही था। यह रिवाज योरप से आया है। मुग़लों के जमाने तक दीवारों पर तस्वीर बनाने का रिवाज कमोबेश बाकी था मगर उसका पतन उसी जमाने में शुरू हो गया। लिहाजा उस जमाने की सब तस्वीरें किताबों की शक्ल में है। मगर उस पुराने रिवाज का हिन्दुस्तान में अब तक कुछ कुछ निशान बाक़ी है और अब भी पुराने ढंग के कुछ मकानो की दीवारों पर हाथी, घोड़े, ऊँट, मछली, सिपाही, प्यादे वगैरह की रंगीन तस्वीरें नजर आ जाती है। हाँ, अब यह कला बहुत थोड़े हाथों में आ गई है और इसके कद्रदाँ अब बहुत थोड़े से लोग रह गये है। मुगल जमाने की तस्वीरों का जिक्र करते हुए योरप का एक जाना-माना आलोचक लिखता है—

"उनके प्रकृति-चित्रण में वह उमंग और चाव है जो हम नये जमाने के

प्राकृतिक दृश्यों के चित्रों में दिखाई देता है, और धूप-छाँव का सुहाना असर दिखाने में वे विशेष रूप से दक्ष थे। जहाँ चित्रकार ने इंसानो की तस्वीरें उतारीं वहाँ मानव-अंगों के सूक्ष्म निरीक्षण का प्रमाण मिलता है। उसकी पैनी दृष्टि, उसके निरीक्षण की स्वच्छता, रेखाओं पर उसका अधिकार और उसके चेहरे से मन की भावनाओं को प्रकट करने की योग्यता ने मिल-जुल कर ऐसी तस्वीरें बनायी हैं जो पश्चिम के छोटे पैमाने की बेहतरीन तस्वीरों से आँख मिला सकती हैं।"

मगर अकबर का युग चित्रकला के चरम विकास का युग नहीं था। यह गौरव शाहजहाँ के युग को प्राप्त है। शाहजहाँ इस कला का बड़ा उत्साही पारखी था। मुगल खानदान के पतन और विनाश के साथ-साथ चित्रकला का भी पतन और विनाश हो गया। वह लूट-पाट जो इस खानदान के पतन के बाद देश में आयी, चित्रकला के लिए जानलेवा साबित हुई। अठारहवीं सदी के अंत तक इस कला की दशा रद्दी होती गई। आखिर उन्नीसवी सदी मे पश्चिमी सभ्यता और कला की अंधी गुलामी ने हमारी इस कला का किस्सा तमाम कर दिया।

मुगल जमाने की ज्यादातर तस्वीरें आम तौर पर गैर-मजहबी हैं। उनमें संसार के इतिहास के एक महान् युग की समाज-व्यवस्था और आचार का प्रतिबिम्ब मिलता है। कही चित्रकार इश्क और मुहब्बत की कहानी और लडाई के मैदानों और नाच-गाने की महफिलो की दास्तान सुनाता हुआ नज़र आता है, कही दरबार के अमीरो और उनके माशूको की तस्वीरें और उनकी मज़ेदार सोहबतो का जलवा दिखाता हैं। कभी-कभा उसकी दृष्टि एकांत के उन अवसरों पर जा पहुँचती है जहाँ साधारण आँखों की पहुँच नही। कही पहलवानों के ताल ठोंकने की आवाज कानो मे आती है और कही शिकार के मैदान का दृश्य आँखों के सामने आ जाता है। ब्रह्मज्ञान की सुरा पीनेवाले और उनके सुराही-प्यालों के दृश्य भी बीच-बीच मे दिखाई दे जाते हैं। गरज़ यह कि उस युग की चित्र-कला शुरू से आखीर तक शाही दरबार के रंग मे रँगी हुई है जिसका उद्देश्य शौक़ीन अमीरों की नर्म-नाज़ुक तबीयतो को खुश करना है। इन तस्वीरो में अक्सर यथार्थ-चित्रण अपनी सीमा पर पहुँच गया है। चित्रकार वास्तविकता पर ऐसा असलियत का रंग चढाता है और ऐसे खास कोमल ढंग से कि कही गाने की महफिल की सुहानी पुकार कानो में आने लगती है, कही उन स्वर्ग से स्पर्धा करनेवाले बागीचों की ठण्डी-ठण्डी हवा और फूलो की सुगन्ध दिलोदिमाग को ताज़ा कर देती है, जहाँ परिस्तान की परियाँ बारीक रेशमी कपड़े पहने गाने और सितार का लुत्फ उठा रही हैं।

इन चित्रों मे एक और विशेषता उनके हाशिये की नफ़ीस सजावट है।

अक्सर बहुत अच्छे रंगों के खूबसूरत फूल बनाये जाते थे जो उस जमाने की संगमरमर की गुलकारियों से बहुत हो मिलते-जुलते हैं।

रंगों की मिलावट में उस युग के चित्रकारों का कमाल था। वह आम तौर पर पानी के रंग इस्तेमाल करते थे। उस जमाने में कलाकार अपने रंग खुद बना लिया करते थे। बहुत बार वह रंग मिलाने के लिए बुरश वगैरह यहाँ तक कि अपने मसव्वर का कागज भी खुद ही बना लेते थे। जमीन आमतौर पर सफेद चीनी मिट्टी से तैयार की जाती थी। कुछ नमूनों में सिर्फ स्केच या खाका बनाकर संतोष कर लिया गया है।

इस मौके पर मुगल जमाने की सिर्फ तीन तस्वीरें दी जाती हैं।*

पहली तस्वीर एक ऐतिहासिक घटना की है। जहांगीर का जमाना है। फारस से राजदूत आये हैं। उस जमाने के रिवाज के मुताबिक राजदूत बादशाह के लिए बेशकीमत घोड़े और अनमोल तोहफे साथ लाये हैं। बादशाह सलामत अभी नहीं आये। दोनों राजदूत उनके इंतजार में सर झुकाये बैठे हैं। उनके चेहरे से सम्मान और सम्भ्रम प्रकट हो रहा है। नौबतखाने में शाही स्वागत का राग अलापा जा रहा है। दरबार के महल में दरबारी बड़े अदब के साथ खड़े हैं। इस नकल से असल तस्वीर के कमाल का अंदाजा नहीं किया जा सकता मगर तस्वीर के देखने से दिल पर बादशाह के तेज और प्रताप का रोब पड़ता है। नौबतखाने का दृश्य चित्रकार के सूक्ष्म निरीक्षण का सुन्दर प्रमाण है।

दूसरी तस्वीर जहांगीर या शाहजहाँ के जमाने के किसी मुंशी की है। इस तस्वीर में चित्रकार ने आकृति-चित्रण की कला को कमाल पर पहुँचा दिया है धूप और छाव ऐसे उस्तादी ढंग से मिलाये गये हैं कि तस्वीर में पत्थर की मूर्ति की शान आ गई है। चेहरे की गंभीरता बहुत उपयुक्त है और कंधों का झुकाव कह देता है कि कागजों के बोझ ने मेरी यह गत बना रखी है। जिन लोगों को योरप के मशहूर पोरट्रेट बनानेवालों मसलन् रेम्ब्रान्ट की तस्वीरों की नक़लें देखने का मौका मिला है वह खुद यह फैसला कर सकते हैं कि इस तस्वीर का उनके मुकाबले में क्या स्थान है।

तीसरी तस्वीर हिन्दू धार्मिक रंग में है। यह अकबर के जमाने के हिन्दू चित्रकारों की श्रेष्ठ कला का नमूना है। रात का वक्त है। तस्वीर में बड़ी आकर्षक गंभीरता और सुखदायी शांति मिलती है।

उमा अपनी दो सखियों के साथ शिव की पूजा के लिए आयी है। दाहिनी

* इस लेख के साथ 'जमाना' के उस अंक में ये तीन रंगीन चित्र भी प्रकाशित हुए थे।—सं०

ग्रोर शिवजी की मूर्ति सुशोभित है। ऊपर से पानी की एक पतली धार मूर्ति के ऊपर गिरती हुई दिखाई देती है। यह गंगा है जो पहले शिवजी के सिर से होकर जमीन पर ग्राती है। उमा के चेहरे से वर्णनातीत भक्ति का भाव प्रकट हो रहा है ग्रोर चित्र समग्र रूप से दर्शक के हृदय पर एक पवित्र शांतिदायक प्रभाव उत्पन्न करता है।

खेद है कि मुगल जमाने ग्रौर मध्य युग की भारतीय चित्रकला की ग्रब तक योरपवालो ग्रौर उनके साथ ही साथ हिन्दुस्तानियों ने यह क़द्र नही की जिसको वह ग्रधिकारी है। उनको जमा करने ग्रौर उनके कमाल को जाहिर करने की ग्रब तक कोई बाक़ायदा कोशिश नहीं की गई। मगर इसका कारण यह हरगिज नही कि उस जमाने के चित्र लुप्त है बल्कि यह कि जिनके बाप-दादो के विचार कल्पना ग्रौर सामाजिक जीवन के भाण्डार वे चित्र है वे लोग खुद उनकी खूबियों ग्रौर उनके महत्व से ग्रपरिचित है। भारतीय चित्रकला पर ग्रब तक जितनी पुस्तकें लिखी गई है वे सब योरपवालो ने लिखी है ग्रौर यह स्वाभाविक बात है कि वे योरपीय चित्रकला की तुलना मे भारतीयों की कला को नीचा समझें। यह बड़ी लज्जाजनक लेकिन सच बात है कि भारतीय कला के पारखी हिन्दुस्तान मे इतने नहीं है जितने कि योरप मे ग्रौर शायद हिन्दवाले उस पर ग़ौर करना उस वक़्त तक न सीखेंगे जब तक कि योरपवाले उसकी सिफ़ारिश न करेंगे।

—जमाना ग्रक्तूबर १९१०

से ओझल न होने देना यह पश्चिमी सभ्यता के लक्षण हैं। यह सभ्यता स्वार्थ और लाभ को एक क्षण के लिए भी भूल नही सकती। अगर वह कभी उदारता करती है तो उसकी उदारता अलिफ लैला के उस देव जैसी उदारता होती है जो आदमियो को पकड कर कैद करता और बादाम खिलाता था ताकि उनके शरीर पर गोश्त चढे और वह गोश्त ज्यादा मजेदार और मात्रा में अधिक हो। मगर हिन्दुओं ने अपने धार्मिक और आध्यात्मिक आदर्शों को सासारिकता से दूर रखकर केवल नैतिकता और आध्यात्मिकता के आधार पर जन साधारण की समृद्धि, लोकहित और मानव कष्टो और आपदाओं को दूर करने मे जितनी सफलताएँ प्राप्त की थी उन्हे आज की पश्चिमी सभ्यता ईर्ष्या की दृष्टि से देख सकती है। इन कोशिशो मे हम जरूरत से ज्यादा लग गये। नैतिक बन्धनो की पाबन्दियो मे अपने व्यक्ति और स्वार्थ की परवाह न की और इन्ही कारणो ने हमको दुर्बल और दरिद्र बना दिया। वहाँ हम जहाँ कही चूके है, सच्चाई की दिशा मे चूके है। हम आज उस दरिद्र व्यक्ति के समान है जिसने अपनी सारी सम्पदा अच्छे कामो में खर्च कर दी हो। ऐसे व्यक्ति की बुद्धि पर हम आपत्ति कर सकते है मगर उसके ऊँचे आदर्श, उसकी दानशीलता, उसके आत्मोत्सर्ग और उसके चारित्रिक साहस से इनकार नही कर सकते। लेकिन पश्चिम के विद्वानो और इतिहासकारो की दृष्टि की सकीर्णता और अनुचित राष्ट्र-गौरव उन्हे यह नहीं स्वीकार करने देता कि प्राचीन काल में हिन्दुओं ने मनुष्य और पशु दोनो ही के शारीरिक कष्टो को दूर करने और उनके साथ सहानुभूति का बर्ताव करने मे दुनिया के सामने एक उदाहरण प्रस्तुत किया है। हाल की एक अँग्रेजी पुस्तक मे जो योरप में बहुत पसन्द की गयी है विद्वान् लेखक लिखता है, 'यह खयाल रखना चाहिए कि हिन्दोस्तान के शानदार धार्मिक सम्प्रदाय, चाहे वह हिन्दू हों या बौद्ध या मुसलमान, उन्हें इन परोपकारी, उदार और सहानुभूतिशील कार्यो का बिलकुल पता न था जो ईसाइयत की अपनी विशेषता है। उनके चिकित्सालय, अनाथालय और औषधालय कहाँ हैं ? कोढ़ के मरीजों, अँधों, गूँगों और बहरों के लिए घर कहाँ है ? इन धर्मों की समाज-व्यवस्था में इन चीजो को दखल नही है।' इसी तरह एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका मे जो एक जानी मानी प्रामाणिक पुस्तक है और जो इस बात का दावा करती है कि वह योरोपियनों की जानकारी का भाण्डार है, उसमे भी इन्ही विचारों को व्यक्त किया गया है—'सम्भव है कि प्राचीनकाल में यात्रियों और पर्यटकों की सुविधा के लिए सराएँ बनायी जाती हो लेकिन इस बात में सन्देह है कि उस जमाने में रोगियों के कष्ट दूर करने के लिए ऐसे खैराती अस्पताल भी थे जो ईसाई मजहब के साथ-साथ दिखायी दिये।'

हिन्दू सभ्यता और लोक-हित

इसमें कोई सन्देह नहीं है कि ईसाई धर्म और पश्चिमी सभ्यता से ज़िन्दगी की खुशियों और सांसारिक सुख-सुविधाओं में बहुत कुछ वृद्धि हुई है और इन सुख-सुविधाओं का शुक्रिया दुनिया काफी तौर पर जबान से नहीं अदा कर सकती। शिक्षा, शारीरिक रोगों का उपचार अनाथों की सहायता इत्यादि कामों को पश्चिमी सभ्यता ने ज़ोर पहुँचाया है, इससे कोई सच्चाईपसन्द आदमी इनकार नहीं कर सकता। मगर जब यह कहा जाता है कि ईसाई धर्म के अवतरित होने से पहले यह सारी बातें हरेक दूसरे मज़हब में गायब थी या नाममात्र के लिए थी तो यह जरूरी मालूम होता है कि इस गलत खयाल को उचित और प्रामाणिक वृत्तान्तों और युक्तियों से काटा जाय। भौतिक सुख-सुविधाओं और ऐश्वर्य की दृष्टि से हिन्दुओं की प्राचीन सभ्यता का पल्ला सम्भव है हलका दिखाई पड़े। मगर आध्यात्मिक और नैतिक सम्पदाओं और आत्मोत्सर्ग तथा सहानुभूति की प्रेरणाओं की दृष्टि से हिन्दू क़ौम जिस शिखर पर पहुँच गयी थी वहाँ तक कोई पश्चिमी क़ौम नहीं पहुँच सकी और न उसके वर्तमान रंग-ढंग से यह आशा की जा सकती है कि वह भविष्य में भी इस शानदार सफलता के नज़दीक पहुँच सकेगी। वह ईसाई क़ौम जो बेज़बान और बेकस जानवरों के मारने को ज़िन्दगी की ज़रूरतों में दाखिल समझती है, जिसमें कम-से-कम पंचानवे आदमियों की खूराक गोश्त है, जिस पश्चिमी क़ौम ने पशुओं की कितनी ही जातियों को दुनिया के पर्दे से मिटा दिया और जो अफ्रीका, अस्ट्रेलिया और अमरीका में हब्शियों के साथ ऐसी कायरों-जैसी क्रूरता से पेश आ रही है वह अपनी बाजू की कूवत, अपनी ताकत और अन्य भौतिक उपलब्धियों पर चाहे जितना घमण्ड करे, मगर जब वह इतने पर संतोष न करके बुलन्द आवाज़ से पुकारती है कि अस्पताल, मदरसे, जानवरों के अस्पताल वगैरह ईसाई सभ्यता के आने के बाद अस्तित्व में आये तो वह तथ्यों के घेरे से बाहर हो जाती है। भौतिकता पश्चिमी सभ्यता की आत्मा है। अपनी ज़रूरतों को बढ़ाना और सुख-सुविधाओं के लिए आविष्कार इत्यादि करना, अपने नफ़े के लिए दूसरों के जान-माल की परवाह न करना— यह पश्चिमी सभ्यता की विशेषताएँ हैं। जीवन के हर क्षेत्र में व्यापार के नियम को लागू करना और नफ़े या नुकसान के खयाल को एक क्षण के लिए भी आँख

से ओझल न होने देना यह पश्चिमी सभ्यता के लक्षण हैं। यह सभ्यता स्वार्थ और लाभ को एक क्षण के लिए भी भूल नहीं सकती। अगर वह कभी उदारता करती है तो उसकी उदारता अलिफ लैला के उस देव जैसी उदारता होती है जो आदमियों को पकड़ कर कैद करता और बादाम खिलाता था ताकि उनके शरीर पर गोश्त चढ़े और वह गोश्त ज्यादा मजेदार और मात्रा में अधिक हो। मगर हिन्दुओं ने अपने धार्मिक और आध्यात्मिक आदर्शों को सांसारिकता से दूर रखकर केवल नैतिकता और आध्यात्मिकता के आधार पर जन साधारण की समृद्धि, लोकहित और मानव कष्टों और आपदाओं को दूर करने में जितनी सफलताएँ प्राप्त की थी उन्हें आज की पश्चिमी सभ्यता ईर्ष्या की दृष्टि से देख सकती है। इन कोशिशों में हम जरूरत से ज्यादा लग गये। नैतिक बन्धनों की पाबन्दियों में अपने व्यक्ति और स्वार्थ की परवाह न की और इन्हीं कारणों ने हमको दुर्बल और दरिद्र बना दिया। वहाँ हम जहाँ कहीं चूके हैं, सच्चाई की दिशा में चूके हैं। हम आज उस दरिद्र व्यक्ति के समान हैं जिसने अपनी सारी सम्पदा अच्छे कामों में खर्च कर दी हो। ऐसे व्यक्ति की बुद्धि पर हम आपत्ति कर सकते हैं मगर उसके ऊँचे आदर्श, उसकी दानशीलता, उसके आत्मोत्सर्ग और उसके चारित्रिक साहस से इनकार नहीं कर सकते। लेकिन पश्चिम के विद्वानों और इतिहासकारों की दृष्टि की संकीर्णता और अनुचित राष्ट्र-गौरव उन्हें यह नहीं स्वीकार करने देता कि प्राचीन काल में हिन्दुओं ने मनुष्य और पशु दोनों ही के शारीरिक कष्टों को दूर करने और उनके साथ सहानुभूति का बर्ताव करने में दुनिया के सामने एक उदाहरण प्रस्तुत किया है। हाल की एक अँग्रेजी पुस्तक में जो योरप में बहुत पसन्द की गयी है विद्वान् लेखक लिखता है, 'यह खयाल रखना चाहिए कि हिन्दोस्तान के शानदार धार्मिक सम्प्रदाय, चाहे वह हिन्दू हों या बौद्ध या मुसलमान, उन्हें इन परोपकारी, उदार और सहानुभूतिशील कार्यों का बिलकुल पता न था जो ईसाइयत की अपनी विशेषता है। उनके चिकित्सालय, अनाथालय और औषधालय कहाँ हैं? कोढ़ के मरीजों, अँधों, गूंगों और बहरों के लिए घर कहाँ हैं? इन धर्मों की समाज-व्यवस्था में इन चीजों को दखल नहीं है।' इसी तरह एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका में जो एक जानी मानी प्रामाणिक पुस्तक है और जो इस बात का दावा करती है कि वह योरोपियनों की जानकारी का भाण्डार है, उसमें भी इन्हीं विचारों को व्यक्त किया गया है—'सम्भव है कि प्राचीनकाल में यात्रियों और पर्यटकों की सुविधा के लिए सराएँ बनायी जाती हों लेकिन इस बात में सन्देह है कि उस जमाने में रोगियों के कष्ट दूर करने के लिए ऐसे खैराती अस्पताल भी थे जो ईसाई मजहब के साथ-साथ दिखायी दिये।'

इन दो उदाहरणो से यह बात बिलकुल स्पष्ट हो गयी कि इस बारे में योरोपियन
विद्वानो के क्या विचार है। यह एक स्वाभाविक बात है कि धन-सम्पदा के
अंतिम शिखर तक पहुँची हुई योरोपियन कौमें किसी दूसरी कौम की, जिसे अब
वह नीची दृष्टि से देख रही है, प्राचीन महत्ता को स्वीकार न करें और इस
ख्याल में डूबे रहें कि दुनिया में जो कुछ शिक्षा और संस्कृति, रोशनी और तरक्की
है वह सब उन्ही के प्रयत्नो का फल है। इसलिए उनसे इस बारे में निष्पक्ष होकर
न्याय कर सकने की आशा करना व्यर्थ है। मगर ऐसा होता है कि हम भी
योरोपियन दावों को अपने अज्ञान के कारण आँख बन्द करके स्वीकार कर लेते
है और इस तरह अपनी कौम के पुराने कारनामो और मौजूदा खूबियों पर ठीक
से कोई राय कायम नही करते बल्कि खुद अपने आप को धिक्कारने लगते है।
नीचे की पंक्तियो में पाठको के सामने वह प्रमाण प्रस्तुत किये जायेंगे जिनसे इस
योरोपियन दावे का खण्डन होता है और जिनसे यह बात प्रमाणित हो जाती है
कि यह तमाम साधन और योजनाएँ जो कि ईसाइयो की उदारता के कारण योरप
में दिखायी दे रही हैं वह ईसाई धर्म के जन्म से हजारों वर्ष पहले हिन्दोस्तान में
भी किसी न किसी सूरत मे मौजूद थीं और हिन्दू संस्कृति का एक आवश्यक अंग
समझी जाती थी। यह प्रमाण हम ज्यादातर सीलोन के इतिहास से लेंगे जिसने
न सिर्फ हिन्दू सभ्यता को ग्रहण कर लिया था बल्कि उसको खूब उजागर भी
किया था। यह बात आँख के सामने रखनी चाहिए कि योरप में लोकहित की यह
योजनाएँ, बावजूद इसके कि बाइबिल मे गरीबो को मदद और अनाथों की सहा-
यता पर विशेषरूप से जोर दिया गया है, दसवो सदी के पहले बिलकुल गायब थी।
सोलहवी सदी तक यह काम धार्मिक संस्थाओ के हाथ मे रहा और इस वक्त तक
उसमे कुछ ज्यादा तरक्की न हुई। अठारहवीं और उन्नीसवी सदी मे योरप ने
इन साधनों को इकट्ठा करने मे जो आश्चर्यजनक और प्रशंसनी[illegible] किये हैं
वह धार्मिकता के प्रभाव से नही [illegible] सभ्यता के [illegible] यही
वजह है कि पादरियो और वैरागि[illegible] काम को [illegible] प्राप्त
हुई।

के घेरे में बनाये गये थे जिनमें इतना पानी भरा रहता था कि अगर लगातार कई साल तक बारिश न हो तब भी मुसीबत का सामना न करना पड़े। यह कोशिश की जाती थी कि आसमान से जितना पानी ज़मीन पर आये उसकी एक बूंद भी बेकार समुद्र में न जाने पाये। सब पानी ज़मीन पर कृत्रिम साधनों से रोक लिया जाता था, और यह सारी कोशिशें धर्म के लोकहितकारी पक्ष का परिणाम थीं। आजकल की पश्चिमी क़ौमों की तरह वह लोग इन नेक कामों को इज़ाफा लगान या किसी और व्यावसायिक विचार के साथ लपेटते न थे। सीलोन का प्रसिद्ध इतिहासकार मिस्टर टेंट सीलोन के अपने इतिहास में लिखता है कि 'सीलोन के अगले बादशाहों ने सिंचाई के लिए ऐसे बड़े और इतने ज़्यादा तालाब बनवाये थे कि आज उन पर विश्वास करना कठिन है।' आनरेबुल जार्ज टर्नर ने जो सीलोन सिविल सर्विस में एक ऊँचे ओहदे पर थे, सीलोन का एक बहुमूल्य इतिहास लिखा है। वह कहते हैं, 'सीलोन के बादशाहों ने पानी के ऐसे बड़े-बड़े खजाने और सिंचाई के ऐसे विस्तृत साधन एकत्रित किये थे कि यद्यपि अब वह बहुत बुरी हालत में पड़े हुए हैं, मगर उनकी लम्बाई-चौड़ाई और घेरा देखकर योरोपियन पर्यटक आश्चर्य से दाँतों तले उँगली दबाते हैं। और इतना ही नहीं, परती ज़मीन को खेती के क़ाबिल बनाने और कृषि को उन्नत करने में भी उन्होंने आश्चर्यजनक प्रयत्न किये थे और यह समस्त पवित्र कार्य धर्म की प्रेरणा पर आधारित था। हिन्दू धर्म ने लोकमंगल और आचार की संस्कृति, स्वार्थ और परमार्थ दोनों का ऐसा समन्वय कर दिया है कि एक क़दम आगे बढ़ाना और दूसरे पहलू को नजर से ओझल कर देना नामुमकिन है। मिस्टर टेंट कहते हैं, 'कालावापी तालाब के खँडहर साबित करते हैं कि उसका घेरा चालीस मील से किसी तरह कम न होगा। बारह मील लम्बा तो सिर्फ़ बाँध था। यह झील राजा धातुसेन ने चौथी सदी में बनवाई थी।' सिंहली इतिहास 'राज-रत्नाकर' में इतिहासकार लिखता है कि राजा महासेन ने 'मनहरी' नाम की झील बनवायी। उसके पानी से बीस हज़ार धान के खेतों की सिंचाई होती थी। सीलोन में चावल की पैदावार बढाने के लिए इस राजा ने गुलगामी, सालूरा, कांला, महामन्या, सोकूरम, रतमल, कादू और इनके अलावा पच्चीस और बड़े-बड़े तालाब बनवाये।' ग़रज़ यह कि सिंचाई के साधन जुटाने में हिन्दुओं की उदारता ने जो प्रयत्न किये और जो नतीजे हासिल किये उनकी मिसाल दुनिया के किसी दूसरे हिस्से में मिलनी कठिन है। मिस्टर टेंट कहते हैं, 'राजा पराक्रमबाहु ने खेती को बहुत लाभ पहुँचाया। उसने एक हज़ार चार सौ सत्तर तालाब सीलोन के विभिन्न भागों में बनवाये जिनमें से तीन इतने बड़े थे कि उन्हें पराक्रम-सागर के नाम से याद करते थे। उसने तीन

के घेरे में बनाये गये थे जिनमें इतना पानी भरा रहता था कि अगर लगातार कई साल तक बारिश न हो तब भी मुसीबत का सामना न करना पड़े। यह कोशिश की जाती थी कि आसमान से जितना पानी ज़मीन पर आये उसकी एक बूंद भी बेकार समुद्र में न जाने पाये। सब पानी ज़मीन पर कृत्रिम साधनों से रोक लिया जाता था, और यह सारी कोशिशें धर्म के लोकहितकारी पक्ष का परिणाम थीं। आजकल की पश्चिमी क़ौमों की तरह वह लोग इन नेक कामों को इज़ाफ़ा लगान या किसी और व्यावसायिक विचार के साथ लपेटते न थे। सीलोन का प्रसिद्ध इतिहासकार मिस्टर टॅट सीलोन के अपने इतिहास में लिखता है कि 'सीलोन के अगले बादशाहों ने सिंचाई के लिए ऐसे बड़े और इतने ज्यादा तालाब बनवाये थे कि आज उन पर विश्वास करना कठिन है।' आनरेबुल जार्ज टर्नर ने जो सीलोन सिविल सर्विस में एक ऊँचे ओहदे पर थे, सीलोन का एक बहुमूल्य इतिहास लिखा है। वह कहते हैं, 'सीलोन के बादशाहो ने पानी के ऐसे बडे-बड़े ख़ज़ाने और सिंचाई के ऐसे विस्तृत साधन एकत्रित किये थे कि यद्यपि अब वह बहुत बुरी हालत में पड़े हुए हैं, मगर उनकी लम्बाई-चौड़ाई और घेरा देखकर योरोपियन पर्यटक आश्चर्य से दाँतों तले उँगली दबाते हैं। और इतना ही नहीं, परती ज़मीन को खेती के क़ाबिल बनाने और कृषि को उन्नत करने में भी उन्होने आश्चर्यजनक प्रयत्न किये थे और यह समस्त पवित्र कार्य धर्म की प्रेरणा पर आधारित था। हिन्दू धर्म ने लोकमंगल और आचार की संस्कृति, स्वार्थ और परमार्थ दोनो का ऐसा समन्वय कर दिया है कि एक क़दम आगे बढाना और दूसरे पहलू को नज़र से ओझल कर देना नामुमकिन है। मिस्टर टॅट कहते हैं, 'कालावापी तालाब के खँडहर साबित करते हैं कि उसका घेरा चालीस मील से किसी तरह कम न होगा। बारह मील लम्बा तो सिर्फ बाँध था। यह झील राजा धातुसेन ने चौथी सदी में बनवाई थी।' सिंहली इतिहास 'राज-रत्नाकर' मे इतिहासकार लिखता है कि राजा महासेन ने 'मनहरी' नाम की झील बनवायी। उसके पानी से बीस हज़ार धान के खेतों की सिंचाई होती थी। सीलोन में चावल की पैदावार बढ़ाने के लिए इस राजा ने गुलगामी, सालूरा, कांला, महामन्या, सोकूरम, रतमल, कादू और इनके अलावा पच्चीस और बड़े-बड़े तालाब बनवाये।' गरज़ यह कि सिंचाई के साधन जुटाने में हिन्दुओं की उदारता ने जो प्रयत्न किये और जो नतीजे हासिल किये उनकी मिसाल दुनिया के किसी दूसरे हिस्से में मिलनी कठिन है। मिस्टर टॅट कहते हैं, 'राजा पराक्रमबाहु ने खेती को बहुत लाभ पहुँचाया। उसने एक हज़ार चार सौ सत्तर तालाब सीलोन के विभिन्न भागो मे बनवाये जिनमे से तीन इतने बडे थे कि उन्हें पराक्रम-सागर के नाम से याद करते थे। उसने तीन

अंग समझ लिया था। और है भी ऐसा ही क्योंकि फ़ाक़ाकशी और भूख के मर्ज से ज्यादा तकलीफदेह और कोई मर्ज नही होता।

हिन्दुओं की उदारता केवल सिचाई तक सीमित न थी। शारीरिक रोगों के उपचार के लिए भी, चाहे वह मनुष्य हो या पशु, हिन्दुओं ने उसी व्यापक सहानुभूति और असीम प्रेम से काम लिया था। राजा चन्द्रगुप्त के जमाने में जब कि बौद्ध धर्म अपने शैशव मे था और हिन्दोस्तान व सीलोन दोनों ही में ब्राह्मण धर्म का जोर था, चिकित्सालयों के स्थापित होने का प्रमाण मिलता है। राजा चन्द्रगुप्त का मंत्री चाणक्य एक बड़ा विलक्षण पण्डित था। उसने एक मोटी पोथी 'अर्थशास्त्र' के नाम से लिखी है, जिसमे उसने राजा चन्द्रगुप्त के राज्यकाल की व्यवस्थाओं और प्रबन्ध, कायदे और कानून, संस्कृति और जीवन-प्रणाली और देश की सामान्य अवस्था का विस्तार के साथ विवेचन किया है। इस पुस्तक से उस युग के घटाटोप अँधेरे पर बहुत कुछ प्रकाश पड़ता है। वह शहरों की आबादी के बारे मे निर्देश करते हुए लिखता है—

'उत्तर की तरफ लुहार, बढई, संगतराश और ब्राह्मणों को आबाद करना चाहिए। पश्चिम की तरफ जुलाहे, सूत कातनेवाले, बांस की चटाइयां बनानेवाले, चमडा बेचनेवाले, हथियार बनानेवाले और शूद्र आबाद किये जायें। दक्षिण की तरफ़ शहर के प्रबन्धकर्ता, कारबार और व्यापार करनेवाले, शराब और गोश्त का रोजगार करनेवाले, नाच-गानेवाले और वैश्यों के मकान बनाये जायें। पूरब की तरफ़ इत्रफरोश, गल्ला बेंचनेवाले और क्षत्रिय वर्ण के लोग आबाद हों। दक्षिण-पूर्व की तरफ खज़ाना, हिसाब-किताब के दफ्तर और कारखाने बनाये जायें। उत्तर-पश्चिम की तरफ़ दूकानें और अस्पताल क़ायम किये जायें। उत्तर-पूरब की तरफ गौशाले और अस्तबल वगैरह बनाये जायें।'

इस उद्धरण से सिद्ध हो जाता है कि इस प्राचीनकाल में हिन्दू क़ौम सामाजिक जीवन के किस ऊँचे शिखर पर पहुँची हुई थी और स्वास्थ्यरक्षा के सिद्धान्तों का किस बुद्धिमत्ता से पालन किया जाता था। और चिकित्सालयों के स्थापित होने का एक ऐसा शक्तिशाली प्रमाण मिल जाता है जिसका खंडन नहीं किया जा सकता। मानों चिकित्सालय हर एक आबादी के आवश्यक अग समझे जाते थे। ऐसे प्रमाणों के होते हुए भी योरप में यह खयाल फैला हुआ है कि चिकित्सालय पश्चिमी सभ्यता के परिणाम है और लॉर्ड कर्जन जैसे जानकार व्यक्ति ने अपने एक भाषण में जो उन्होंने ग्लासगो युनिवर्सिटी के रेक्टर की हैसियत से हाल में दिया है, कहा कि, 'ग़ैर-ईसाई धर्म जनता की भलाई की ऊँची भावनाओं से

अपरिचित थे।' इसे देखनेवाले की दृष्टि की संकीर्णता और राष्ट्रीय द्वेष के अलावा और क्या कहा जा सकता है।

जैसा हम पहले कह चुके हैं सीलोन अपनी सभ्यता के स्तर के लिए हमेशा हिन्दोस्तान पर आश्रित रहा। चन्द्रगुप्त ईसा से लगभग पांच सौ बरस पहले हुआ और विद्वान चाणक्य ने साफ़ बतला दिया है कि उस समय हिन्दोस्तान में चिकित्सालयों का आम रिवाज था। इस जमाने में सीलोन में भी अस्पतालों के क़ायम होने का सबूत मिलता है। महावंश के दसवें अध्याय मे, जो सीलोन के प्राचीन युगों का एक प्रामाणिक इतिहास है, सिंहली इतिहासकार राजा पण्डूक भाई के राज्यकाल का जिक्र करते हुए लिखता है, 'राजा ने पांच सौ चाण्डाल (यानी मेहतर) शहर की सफ़ाई के लिए नियुक्त किये। डेढ़ सौ चाण्डाल लावारिसो की लाश उठाने के लिए और इतने ही आदमी चिताओं की निगरानी और सफ़ाई के लिए नियुक्त किये। विभिन्न धर्मों के माननेवालों की सुविधा के लिए पांच सौ मकान बनवाये और इसी तरह और भी कई जगहों में राजा ने अनेक धर्मशाले और चिकित्सालय बनवाये।'

यह तो ईसा से पांच सौ बरस पहले की बात हुई और इस वक्त हिन्दू क़ौम पतन की ओर बढ़ रही थी। बौद्ध धर्म ने गिरती हुई दीवार को सम्हाला। महाराज अशोक के जमाने मे बौद्ध धर्म ने बड़ी तेज़ी से क़दम बढ़ाया और धर्म के साथ-साथ जनता की भलाई के साधन भी बढ़ते गये। अशोक के अभिलेख नं० २ और १३ से इस बात का स्पष्ट प्रमाण मिलता है कि, 'महाराज अशोक की निगरानी में और उनकी आज्ञा से हिन्दोस्तान, सीलोन, हिन्दोस्तान के उत्तरी और पश्चिमी सीमाप्रान्त, पूर्वी योरप, पश्चिमी एशिया और उत्तरी अफ्रीका के देशों में जहां के सम्राटों से महाराज अशोक के मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध थे, आदमियों और जानवरों दोनों ही की तकलीफें दूर करने के लिए औषधालय और चिकित्सालय बनवाये गये। आदमियों और जानवरों दोनों ही को लाभ पहुंचानेवाली बूटियां दूसरी-दूसरी जगहों से मंगाकर लगाई गयी और सड़कों पर मुसाफिरो और जानवरों की सुविधा के लिए कुएं और बावलियां बनवायी गयी और पेड़ लगा दिये गये।'

महाराज अशोक के जमाने में सीलोन के राजा ने भी बौद्ध धर्म स्वीकार कर लिया और तब से तेरहवीं शताब्दी तक चिकित्सालयों का निर्माण, सड़कों की सफ़ाई और मरम्मत, अपाहिजों की देख-भाल और दूसरे ऐसे ही लोकहितकारी कार्यों की तरफ़ उत्साह और संकल्प की कमी नहीं रही और मुफ्त और सबको मिलनेवाली शिक्षा की ऐसी चर्चा रही कि कोई बौद्ध मन्दिर ऐसा न था

जहाँ पाठशाला न हो। आज भी बर्मा और सीलोन में शिक्षित व्यक्तियों की संख्या हिन्दोस्तान के मुकाबिले में बहुत ज्यादा है। इन बातों के बहुत से लिखित और प्रामाणिक साक्ष्य मिलते हैं। हम उनमें से कुछ पाठकों के सामने पेश करते हैं।

१—राजा बुद्धदास ने (सन् ३४१ से लेकर ३६३ ई०) सिंहल द्वीप के रहनेवालों पर कृपा-दृष्टि करके अनेक चिकित्सालय स्थापित किये और हरेक गाँव के लिए वैद्य नियुक्त किये।

२—राजा दुतगामिनी ने (१६१ से लेकर १३७ ई० पू०) अठारह स्थानों पर चिकित्सालय बनवाये जहाँ मरीज़ों के भोजन का प्रबन्ध भी किया जाता था।

३—राजा अपातीसू ने (३६८ से ४१० ई०) गर्भवती स्त्रियों, अंधों और अपाहिजों के लिए अस्पताल बनवाये।

४—राजा धातुसेन ने (४५९ ई०) अपाहिजों के लिए अस्पताल बनवाये।

५—राजा दिकपोला द्वितीय ने (७६५ ई०) अस्पताल बनवाये और आयुर्वेद के विद्यार्थियों के लिए एक विद्यालय स्थापित किया।

६—राजा दिकपोला तृतीय ने (८४३ ई०) लंगड़े और अंधे आदमियों के लिए विभिन्न स्थानों पर चिकित्सालय बनवाये।

७—राजा कस्सप चतुर्थ ने शहर में महामारियों के लिए दवाखाने खुलवाये।

८—राजा महिन्दा चतुर्थ ने (६६१ ई०) खैरातखाने और ग़रीबों के लिए घर बनवाये। उसने कुल अस्पतालों में दवाओं और पलंग का प्रबन्ध किया।

९—राजा पराक्रमबाहु ने (११६४ से ११६७ ई०) एक स्वास्थ्य-गृह बनवाया जिसमें कई सौ रोगी रह सकते थे। हर एक रोगी की परिचर्या के लिए एक दाई और एक नौकर तैनात किया जो उसे ज़रूरी खाना दें और दवायें पिलायें। वहाँ उसने एक भंडारघर भी बनवाया जहाँ ग़ल्ला और तरह-तरह की दवायें और रोगों की चिकित्सा से सम्बन्ध रखनेवाली अन्य चीज़ें इकट्ठा की जाती थी। उसने उन पण्डितों और विद्वानों के लिए जीविका का प्रबन्ध किया जो रोगों के कारण और रहस्यों की छानबीन करते थे।

इन ऐतिहासिक प्रमाणों के सामने कौन न्यायप्रेमी व्यक्ति कह सकता है कि ईसाई धर्म के अस्तित्व में आने से पहले हिन्दू और बौद्ध धर्मों में मनुष्यों और मूक पशुओं के कष्टों को दूर करने का एक ऊँचा मानदण्ड नहीं स्थापित हुआ था। इसके विपरीत, कदाचित् यह प्रमाणित हो चुका है कि जिस उत्साह और पवित्र भावना से इस ज़माने में यह नेक और अच्छा काम किया जाता था, वह आजकल के ऐसे ही कामों में नहीं पाया जाता और इसमें आश्चर्य की कोई बात

नहीं। हिन्दुओं की उदारता का स्रोत उनका धार्मिक विश्वास था। ईश्वर ने हम सब को पैदा किया, हम सब भाई हैं, हमारा कर्तव्य है कि अपनी शक्तिभर अपने भाई की सहायता करें—यह भावना और यह विश्वास था जो हिन्दू क़ौम के दिलों में एक स्पष्ट जीता-जागता रूप लेकर उन्हें उदारता के अच्छे से अच्छे और ऊँचे से ऊँचे मानदण्ड की ओर ले जाता था। पश्चिमी क़ौमों के उदार प्रयत्नों में यह धार्मिक उत्साह शायद ही कहीं देखने को मिलता है। वह इन कामों में भी क़ौमी, पोलिटिकल और व्यावसायिक स्वार्थ छिपाये रहते हैं। वह पश्चिमी सभ्यता जो गर्भवती स्त्रियों और छोटी उम्र के लड़कों को जीविका-निर्वाह के लिए विवश करती है, जहाँ विधवाओं और अनाथों के लिए अनाथालयों के सिवाय और कोई ठिकाना नहो, वह पश्चिमी सभ्यता जहाँ मालिक मजदूर के हक़ हड़प कर जाने की ताक में बैठा रहता है और मजदूर इस ताक में रहता है कि मालिक की जेब से रुपया निकाल लूँ, वह सभ्यता जो धर्म के प्रचार को राजनीतिक उद्देश्यों का साधन बनाती है और जहाँ मिशनरी हमेशा विजेता का झण्डाबरदार साबित होता है, वह हिन्दू या बौद्ध धर्म को कभी रास्ता नहीं दिखा सकती। देशों को जीत लेना और चीज है, ऊँची सभ्यता और चीज है। इटली ने निम्न स्तर की सभ्यता रखते हुए यूनान को जीत लिया जो उस जमाने मे सभ्यता के उच्चतम शिखर पर पहुँचा हुआ था। सभ्यता और हिंस्र भावनाओं का बैर है। बर्बर कौमें सभ्य क़ौमों के मुकाबिले में ज्यादा लड़ाकू और जान पर खेलनेवाली होती हैं। पश्चिमी सभ्यता में सबसे बड़ी ख़ूबी यह है कि उसने बर्बर क़ौमों की विशेषताओं को सभ्यता के गंभीर प्रभावों से बचाये रक्खा! खुलासा यह कि हिन्दोस्तानी सभ्यता की इमारत धर्म और नेकी की बुनियाद पर थी और पश्चिमी सभ्यता की बुनियाद लाभ, ईर्ष्या और ऐश्वर्य पर है। यह पवित्र दृश्य हिन्दोस्तान के सिवा और कहाँ दिखायी पड़ता है कि अगर एक घर में दस विधवाएँ हैं तो दसों इज्जत के साथ जिन्दगी बसर करती हैं। सम्भव है हिन्दुओं ने सभ्यता का यह मानदण्ड स्थापित करने में बहुत-सी भूलें की हों और जरूर कीं मगर इससे इनकार नहीं किया जा सकता कि उनके पीछे उदारता की ऊँची भावना थी और ईसाइयों का उपरोक्त कथन बिलकुल झूठ है।

—ज़माना, मार्च, १९१२

रामायण और महाभारत

यों तो संस्कृत साहित्य मे पद्य-बद्ध आख्यायिकाओ की कमी नहीं है मगर जैसा कि हर व्यक्ति जानता है रामायण और महाभारत हिन्दुओं के दो विशेष महाकाव्य है। हिन्दू जाति को उन पर जितना गर्व हो उचित है। अगर संस्कृत साहित्य मे सिर्फ यही दो किताबें होतीं तो भी किसी भाषा का लिटरेचर संस्कृत से आँखें न मिला सकता। विचारों की उच्चता, विषयों की पवित्रता, वर्णन का सौन्दर्य और कैरेक्टरों की महानता ने उसी ज़माने से, जब कि ये पुस्तकें कवि के हृदय से निकलीं, संसार को आश्चर्य में डाल रक्खा है। रामचन्द्र निश्चय ही उच्चतम मानवता के उदाहरण थे और सीता स्त्रियों के पवित्र धर्म की एक पावन मूर्ति। युधिष्ठिर निश्चय ही न्याय की मूर्ति थे और भीष्मपितामह की वीरता और आत्मोत्सर्ग संसार के इतिहास में अद्वितीय है। कृष्ण सिद्ध योगी और मनुष्य के दीप्तमान गुणों का संग्रह थे। मगर यह वाल्मीकि और व्यास के कवित्व का सौन्दय है जिसने हमारी आँखों में उनको मनुष्यो की श्रेणी से उठाकर देवताओं की पंक्ति में बिठा दिया है। यह उन्ही कवियों की लेखनी का प्रसाद है कि आज हर एक हिन्दू उनके नाम को पूजनीय समझता है; उस भक्ति और आदर की कोई सीमा नही है जो इन बड़े लोगों के संबंध में हर एक हिन्दू बच्चे के हृदय में स्थायी रूप से है। यहाँ तक कि राम और कृष्ण का नाम असंख्य हिन्दुओं के लिए मुक्ति का साधन बन गया है। कवि को अपने काव्य के लिए बड़ा से बडा जो प्रतिदान मिल सकता है वह उन कवियो ने प्राप्त कर लिया है यानी उनके कैरक्टरों को हमने अपना देवता या ईश्वर मान लिया। और उन कवियो के काव्य-गुणों पर दृष्टि डालते हुए यह नहीं कहा जा सकता कि हमने अनुचित उदारता से काम लिया है। उन्होंने वह काम कर दिखाया है जो संसार के किसी कवि से न हो सका। उन्होंने हमारी आँखों के सामने, इसलिए कि हम उन्हे अपने जीवन का आदर्श बनायें, पूर्ण मनुष्य उपस्थित कर दिये हैं जो केवल निर्जीव-निस्पन्द चित्र नही बल्कि जीते-बोलते पूर्ण मनुष्य है। ऐसे पूर्ण मनुष्य शेक्सपियर और दाँते, होमर और वर्जिल, निज़ामी और फिरदौसी की कल्पना की परिधि से बहुत ऊँचे हैं। प्रोफ़ेसर मोनियर विलियम्स कहते है, "यद्यपि यूनानवालो की तरह हिन्दुओं के यहाँ भी ख़ास दो ही मसनवियाँ या महाकाव्य है मगर 'रामायण'

ग्रौर 'महाभारत' को 'इलियड' ग्रौर 'ग्रोडोसो' से तुलना करना वैसा ही है जैसा इण्डस ग्रौर गंगा का, जो हिमालय के बर्फ़िस्तानी इलाके से निकलती हैं ग्रौर ग्रपनी सहायक नदियों से गले मिलती हुई, कही बेहद फैली हुई ग्रौर कहीं ग्रथाह गहरी, शान-शौकत के साथ बहती हैं, ग्रटीका ग्रौर थेसिली के नालों ग्रौर पहाडी सोतों से तुलना करना।" इन काव्य-गुणों के ग्रतिरिक्त इन पुस्तकों का ग्राकार यूरोपवालों को ग्रौर भी ग्रचरज में डाल देता है। यहाँ उनकी तुलना दुनिया के दूसरे प्रसिद्ध महाकाव्यो से करना दिलचस्पी से खाली न होगा।

महाभारत—२२०००० श्लोक।

रामायण—४८००० श्लोक।

होमर का इलियड—१५६६३ शेर।

वर्जिल का ईनिड—९८६८ शेर।

जर्मनी का प्रसिद्ध दार्शनिक श्लेगल लिखता है, 'रामायण संसार का सबसे महान् महाकाव्य है।'

सर विलियम जोन्स कहते हैं, 'रामायण में राम की कहानी लिखी गई है जो कल्पना की उर्वरता ग्रौर वर्णन के सौन्दर्य की दृष्टि से मिल्टन के काव्य से कही बढकर है।'

प्रोफ़ेसर हेरन रामायण की कहानी संक्षेप में बताने के बाद कहते हैं, 'यह है थोडे से शब्दों में रामायण की कहानी जो इतने सरल छंदों में ऐसी खूबसूरती ग्रौर ग्रनूठेपन से बाँधी गई है कि संसार की ग्रच्छी से ग्रच्छी काव्य-कृति की तुलना में भी उसका पल्ला भारी रहेगा।'

प्रोफ़ेसर मोनियर विलियम्स कहते हैं, 'संस्कृत साहित्य में रामायण से ग्रधिक सुन्दर कोई काव्य नही। इसकी वर्णन-शैली की सरलता ग्रौर स्वच्छता ग्रौर प्रौढ़ता, सच्चे कवित्व की सुकुमार चुटकियाँ, वीरतापूर्ण घटनाग्रों के सजीव चित्रण, प्रकृति के सुन्दर दृश्य, मानव-हृदय के उतार-चढाव ग्रौर कोमलतम भावनाग्रों की गहरी जानकारी—ये सब खूबियाँ इस कृति को संसार की किसी भी देश या काल की श्रेष्ठतम कृतियों में ऊँचा स्थान पाने का ग्रधिकारी ठहराती है। ये एक बड़े से सुन्दर उपवन के समान है जिसमें फूल ग्रौर फल की बहुतायत है, प्रकृति के चिरंतन जलस्रोत जिसको सींचते है ग्रौर यद्यपि कही-कहीं उपज जरूरत से ज्यादा हो गई है मगर वहाँ भी स्वच्छ ग्रौर सुव्यवस्थित क्यारियाँ मौजूद है।'

प्रिंसिपल ग्रिफ़िथ, जिन्होने रामायण को ग्रंग्रेजी कविता का बहुत सुन्दर ग्रावरण पहनाया है, कहते है 'रामायण हर देश, जाति ग्रौर युग के लिटरेचर को ऐसा काव्य प्रस्तुत करने का उच्च स्वर में निमंत्रण देती है जिसमें राम ग्रौर

सीता के समान पूर्ण मनष्य हों। कवित्व और नैतिकता में ऐसी आकर्षक एकता और कहीं दिखाई नहीं देती जैसी कि इस पवित्र पुस्तक में।'

अमरीका के प्रसिद्ध डाक्टर हेलियर इन शब्दों में महाभारत की चर्चा करते है, 'मुझे अपनी ज़िन्दगी में किसी किताब से इतनी दिलचस्पी नही हुई जितनी पुराने हिन्दुस्तान की इस महान् और पवित्र कृति से। पिछले कुछ सालों मे मैंने जितनी बार इस पुस्तक का अध्ययन किया है उतनी बार किसी दूसरी पुस्तक का नही किया। महाभारत ने मेरे मानस-चक्षुओ के आगे एक नई दुनिया खोल दी है और मुझे उसके विद्वत्तापूर्ण विचारों, उसकी सच्चाई, उसके सत्य चित्रण और पाडित्य पर असीम आश्चर्य है।'

सिलवें लेवी जो पेरिस के प्रसिद्ध विद्वान हैं कहते हैं, 'महाभारत संसार की सबसे बड़ी ही नही बल्कि सबसे सुन्दर कृति है। इसमें शुरू से आखिर तक सुन्दर परिधान में सदाचार के गम्भीर प्रश्नों की शिक्षा दी गई है।'

अमरीका का प्रसिद्ध साहित्यकार जेरेमिया क्रीटन लिखता है, 'मैं सच्चे हृदय से कहता हूँ कि मुझे किसी दूसरी पुस्तक के अध्ययन से कभी इतना आत्मिक उल्लास नहीं प्राप्त हुआ।'

सेण्ट बार्थालोम्यू जो यूरोप के एक दुनिया देखे हुए फ़िलासफर हैं लिखते हैं, 'एक सदी गुजरी जब कि विलकिन्सन ने महाभारत के एक हिस्से का अनुवाद प्रकाशित किया तो संसार उसके कवित्व की महानता को देख कर दंग रह गया; व्यास, जो महाभारत का रचयिता है, होमर से भी बडा मालूम होने लगा और लोगों को यह स्वीकार करने में ज्यादा अड़चन न हुई कि हिन्दुस्तान यूनान से बढ़कर है।'

प्रोफेसर मोनियर विलियम्स कहते हैं, 'रामायण में ऐसे अनेक वर्णन हैं जो काव्य-सौन्दर्य की दृष्टि से होमर से भी आगे बढ़े हुए हैं। उनकी वर्णन-शैली अधिक रोचक, अधिक कोमल और अधिक प्रौढ़ है और भाषा होमर की तुलना में अधिक उन्नत है। पारिवारिक जीवन का चित्र दिखाने में हिन्दू कवि यूनान और रोम के कवियो से कही बढकर हैं।'

—ज़माना मई-जून, १९१२

भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र

हिन्दी भाषा के कवियों में बाबू हरिश्चन्द्र का स्थान बहुत ऊँचा समझा जाता है। यह ठीक है कि उन्हें तुलसी, सूर, बिहारी या केशव की सी लोकप्रियता नहीं प्राप्त हुई मगर इसका कारण यह नहीं कि वे योग्यता में इन कवियों से घटकर थे। तुलसीदास पद्य-बद्ध आख्यायिका के सम्राट् थे। सूर ने अध्यात्म और बिहारी ने सौन्दर्य और प्रेम को कमाल पर पहुँचाया। कबीर ने संसार की निस्सारता का राग गाया मगर हरिश्चन्द्र ने हर रंग की कविता की। वह काव्य-प्रतिभा जो किसी एक रंग को बहुत ऊँचाई तक पहुँचा सकती थी, बिखर गई। इसलिए ये कवि ऊँचाई और गंभीरता में यद्यपि हरिश्चन्द्र से बढे हुए हैं मगर काव्य-विस्तार की दृष्टि से हरिश्चन्द्र का स्थान बहुत ऊँचा है। उनकी प्रतिभा बहुमुखी थी और उनको गद्य और पद्य दोनों पर समान अधिकार था। गद्य में तो उन्हें मार्गदर्शक का स्थान प्राप्त है। उनके पहले राजा लक्ष्मण सिंह और राजा शिव प्रसाद ने हिन्दी गद्य में ख्याति पायी थी मगर राजा लक्ष्मण सिंह की योग्यता अधिकतर अनुवादों में खर्च हुई और राजा शिव प्रसाद की हिन्दी में उर्दू शब्द बड़ी संख्या में रहते थे। शुद्ध हिन्दी की नींव भारतेन्दु ही के कलम ने डाली और उस जमाने से अब तक हिन्दी गद्य ने बहुत कुछ तरक्की हासिल कर ली है मगर आज भी हरिश्चन्द्र के हिन्दी गद्य की प्रौढता, चुलबुलापन और शुद्धता प्रशंसनीय है। उनकी सबसे अधिक स्मरणीय और स्थायी साहित्यिक पूँजी उनके नाटक है। इस मैदान में कोई उनका प्रतियोगी नहीं। हिन्दी नाट्य-कला के वे प्रवर्तक है। उनके पहले हिन्दी भाषा में नाटको का अस्तित्व न था। राजा लक्ष्मण सिंह ने कालिदास की 'शकुन्तला' का अनुवाद अवश्य किया था पर वह केवल अनुवाद था। मौलिक नाटक अप्राप्य थे। बाबू हरिश्चन्द्र ने हिन्दी साहित्य की इस कमी को पूरा करने की कोशिश की। उन्होंने छोटे-बडे अठारह नाटक लिखे जिनमें कुछ मौलिक और कुछ अनुवाद है। मौलिक नाटकों में 'सत्य हरिश्चन्द्र' और 'चन्द्रावली' ऐसी किताबें हैं जो संसार की किसी भाषा का गौरव हो सकती है, और 'मुद्राराक्षस' यद्यपि एक संस्कृत नाटक का अनुवाद है तथापि उच्चकोटि की रचना के सारे गुणों से भरपूर। इस सारे साहित्यिक कृतित्व पर दृष्टि डालकर कह सकते हैं कि हरिश्चन्द्र जैसी सर्वतोमुखी

प्रतिभा का कवि हिन्दी भाषा में शायद ही दूसरा पैदा हुआ होगा।

बाबू हरिश्चन्द्र एक नामवर बाप के बेटे थे। उनके पिता बाबू गोपाल चंद्र बनारस के एक जाने-माने रईस थे। वह 'गिरधर' उपनाम से कविता करते थे। नीति-परक विषयों पर लिखने में वह बेजोड़ थे। हरिश्चन्द्र ने धन-सम्पत्ति के साथ काव्य-रचना की योग्यता भी उत्तराधिकार में पाई थी और यद्यपि सम्पत्ति उनके खुले हाथों मे बहुत दिन न रही मगर काव्य-रचना के उत्तराधिकार में उन्होंने सपूत बेटे की तरह बहुत कुछ वृद्धि की। वह सम्वत् १६०७ में पैदा हुए और कुछ दिनों घर पर हिन्दी और फ़ारसी पढने के बाद वह क्वीन्स कालेज मे दाख़िल हुए मगर यहाँ पढ़ाई का सिलसिला ज्यादा दिनों तक न चल सका। वह पाँच ही साल के थे कि उनकी माँ का देहान्त हो गया और सम्वत् १६१७ में जब उनकी उम्र दस साल से ज़्यादा न थी, बाबू गोपाल चंद्र का देहान्त हो गया। इन कारणों से उनकी पढ़ाई ढंग से न हुई और छुटपन मे ही गृहस्थी का बोझ भी सिर पर आ पड़ा। पढ़ने-लिखने मे यूँ ही उनकी तबियत न लगती थी, गृहस्थी एक बहाना हो गई, पढ़ना छोड़ बैठे। मगर इसी उम्र मे वह काव्य-रचना की प्रतिभा का प्रमाण दे चुके थे। यह गुण उनमें दैवी था। पाँच ही साल की उम्र में एक दोहा लिखकर अपने कवि पिता को आश्चर्य में डाल दिया था और जिस समय उन्होंने पढ़ना छोड़ा वह अपने काव्यमर्मज्ञ मित्रों के बीच काफी ख्याति पा चुके थे। जीवन के आरंभिक वर्षों में उन्होने विद्योपार्जन के प्रति बहुत उत्साह नही दिखलाया लेकिन अपनी दैवी बुद्धि से इस कमी को बहुत जल्द पूरा किया और हिन्दुस्तान की कुल भाषाओं पर अधिकार प्राप्त कर लिया। उनका अंग्रेज़ी ज्ञान बहुत अच्छा था। यह बात उनके 'दुर्लभ बन्धु' से प्रकट होती है जो शेक्सपियर के 'मर्चेन्ट आफ़ वेनिस' का अनुवाद है। मराठी, गुजराती, बंगला, पंजाबी, उर्दू, मैथिली इन सब भाषाओं में वह केवल अपने विचार ही प्रकट नहीं कर सकते थे बल्कि कविता भी कर सकते थे। इससे उनकी प्रखर बुद्धि का अंदाज़ा किया जा सकता है।

बाबू हरिश्चन्द्र का खानदान बनारस के जाने-माने और पैसेवाले घरानों में था। उन्हें कई लाख की जायदाद उत्तराधिकार मे मिली थी मगर उन्होंने धन-सम्पदा की परवाह करना न सीखा था। दोस्तों के आतिथ्य-सत्कार, विलासपूर्ण जीवन, गरीबों की मदद और कवियों की क़द्रदानी में वह रुपया पानी की तरह बहाते थे। दीवाली के रोज़ तेल की जगह इत्र से दिये जलाते थे और सिर और शरीर में तो वह तेल के बदले आमतौर पर खूब मँहगे इत्र मला करते थे। कवियों की क़द्रदानी का यह हाल था कि एक एक दोहे पर खुश होकर सैकड़ों

रुपये इनाम दे देते। याचक को जवाब देना उन्होंने सीखा ही न था। जैसा कि दुनिया का क़ायदा है, ऐसे खर्चीले आदमियों की कमज़ोरी से फ़ायदा उठानेवाले भी ढेरों पैदा हो जाते हैं। बाबू हरिश्चन्द्र की दौलत उनकी नाज़बरदारियों में सब खर्च होती थी। उनके इस खर्चीलेपन को देखकर एक बार महाराज बनारस ने उनसे कहा, 'बाबूजी, घर देख कर काम करो।' इसका जवाब आपने दिया, 'महाराज, यह दौलत मेरे कितने ही पुरखों को निगल गई है, अब मैं इसे खा जाऊँगा।' इससे उनके स्वभाव की मस्ती का सबूत मिल सकता है।

भारतेन्दु बड़े रँगीले, बाँके, सुन्दर, सजीले आदमी थे। सौन्दर्य-प्रेम उनमें कूट-कूटकर भरा हुआ था। सुन्दरता खुद ब खुद उनकी आँखों में खुब जाती थी और कवि में यह एक विशेष गुण है। चित्रों से उन्हें बड़ा प्रेम था। बड़ी तलाश और खर्च से उन्होंने एक अनूठा संग्रह एकत्र किया था मगर एक दोस्त को उनके प्रति बहुत अनुरक्त देखकर उन्हें दे डाला। सौन्दर्य की प्रशंसा और वर्णन से उनकी कविता भरी हुई है और साहित्य-रसिकों का विचार है कि इस रंग में उनकी तबियत असाधारण ज़ोर दिखा गई है। नाटकों को छोड़कर, उनका काव्य सौन्दर्य और प्रेम की भावनाओं से भरा हुआ है। प्रत्येक कवि चाहे उसने कैसी ही बहुमुखी प्रतिभा क्यों न पाई हो सिर्फ़ एक ही क्षेत्र में चोटी पर पहुँचता है। हरिश्चन्द्र ने करुणा, प्रेम, प्राकृतिक दृश्य, वीरता, वैराग्य, हास्य, नीति आदि सभी रंगों में अपनी काव्य-प्रतिभा का प्रदर्शन किया है। मगर वह घुलावट जो उनके सौन्दर्य-चित्रण में पैदा हो गई है, दूसरे रंगों में अपेक्षाकृत कम है।

ज़िन्दादिली बाबू हरिश्चन्द्र का विशेष गुण थी और वह जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में प्रकट होती थी। साहित्य-रचना, देशप्रेम, सामाजिकता—इन सब कार्यों में उन्होंने आगे बढ़कर योग दिया। उन्होंने गद्य और पद्य की कई पत्रिकाएँ जारी कीं और नुक़सान उठाकर चलाईं। साहित्य के विकास के लिए एक संस्था स्थापित की। कुछ दिनों तक एक रीडिंग क्लब चलाया और चौखम्भे में एक अंग्रेज़ी स्कूल क़ायम किया। इसके खर्च वह बारह साल तक खुद अदा करते रहे। उनका लगाया हुआ यह शिक्षा का पौधा अब एक ऊँचा-पूरा पेड़ हो गया है। इसमें अब स्कूल लीविंग तक की पढ़ाई होती है। मकान नया बन गया है और विद्यार्थियों की संख्या चौगुनी हो गई है। इन बातों से प्रकट होता है कि बाबू हरिश्चन्द्र ज़माने की रफ़्तार से और उसकी आवश्यकताओं से अपरिचित न थे। उनकी ज़िन्दादिली बहुधा चुहल और दिल्लगीबाज़ी में खर्च होती थी। होली के दिनों में उनके यहाँ अबीर और गुलाल का दरिया बहता था। वह खुद

कमर में एक मोटा-सा कुण्डा बाँधे, मसखरों का एक तूफाने-बेतमीज़ी साथ लिये बड़ी आज़ादी से कबीरें गाते निकलते थे। इन दिनों में वह फक्कड़, स्वाग, नकल, फोहश, किसी से बाज़ न आते थे। अप्रैल की पहली तारीख अंग्रेज़ो के यहाँ दिल्लगी का दिन है। आज के दिन हर किस्म का मज़ाक़ जायज़ है। बाबू हरिश्चन्द्र इस तारीख को शहरवालों के दिलबहलाव के लिए ज़रूर कोई न कोई गुल खिलाते थे। एक बार एलान कर दिया कि एक मशहूर उस्ताद हरिश्चन्द्र स्कूल में मुफ़्त गाना सुनायेंगे। जब हज़ारो आदमी जमा हो गये तो पर्दा खुला और एक आदमी मसखरो का भेस बनाये, उल्टा तम्बूरा हाथ में लिये बरामद हुआ और बड़ी भोंडी आवाज में रेंकने लगा। लोग समझ गये कि भारतेन्दु ने यह शगूफ़ा खिलाया है। शर्मिन्दा हो कर वापिस गये।

मगर इस आज़ादी और बेफ़िक्री के बावजूद उनके स्वभाव में संतोष भी बहुत था। वह अपनी कमजोरियों पर कभी कभी लज्जित भी होते थे मगर नानी* ने हरिश्चन्द्र के स्वभाव को देख कर उनके छोटे भाई के नाम सारी जायदाद का हिब्बेनामा कर दिया। हिब्बेनामे पर बाबू हरिश्चन्द्र के दस्तखत बहुत ज़रूरी थे मगर जब यह कागज़ उनके सामने आया तो उन्होने बेधड़क उस पर दस्तखत कर दिये और दो-ढाई लाख की जायदाद की ज़रा भी परवाह न की। यह उनकी उदारता और निस्पृहता का बहुत अनूठा उदाहरण है।

बाबू हरिश्चन्द्र का साहित्यिक जीवन बाकायदा तौर पर अठारहवें साल से शुरू हुआ और यद्यपि उन्होने उम्र बहुत कम पाई, देहान्त हुआ तो उनकी उम्र सिर्फ़ छत्तीस साल थी, तो भी इन्हीं अठारह वर्षों में उन्होंने अपने क़लम से हिन्दी ज़बान को मालामाल कर दिया। उनकी रचनाएँ तीन हिस्सों में बांटी जा सकती है—नाटक, कविताएँ और गद्य के विविध लेख। इनमें से हर एक की संक्षिप्त चर्चा करना ज़रूरी मालूम होता है।

बाबू हरिश्चन्द्र के नाम से सोलह सम्पूर्ण नाटक मिलते हैं मगर अधिकाश बहुत छोटे है जो कुछ ही पन्नों में ही खत्म हो गये हैं। इनमें अधिकाश संस्कृत नाटकों के अनुवाद या रूपान्तर है। मौलिक नाटकों की संख्या पाँच से अधिक नहीं। इनमें भी चंद्रावली, नीलदेवी और सत्य हरिश्चन्द्र के अलावा और किसी नाटक को ठीक अर्थों में नाटक नहीं कहा जा सकता। वैदिक हिंसा, अंधेर नगरी नाटक नहीं बल्कि राष्ट्रीय और सामाजिक प्रश्नों पर हास्य-व्यंगपूर्ण चुटकुले है जो बहुत लोकप्रिय हुए और बार-बार खेले गये। 'भारत दुर्दशा' में राष्ट्र की नैतिक और

* बाबू हरिश्चन्द्र की ननिहाल बहुत धनाढ्य थी। बाबू हरिश्चन्द्र और उनके भाई इस जायदाद के उत्तराधिकारी थे।

रुपये इनाम दे देते। याचक को जवाब देना उन्होंने सीखा ही न था। जैसा कि दुनिया का क़ायदा है, ऐसे खर्चीले आदमियों की कमज़ोरी से फ़ायदा उठानेवाले भी ढेरों पैदा हो जाते हैं। बाबू हरिश्चन्द्र की दौलत उनकी नाज़बरदारियों में खूब खर्च होती थी। उनके इस खर्चीलेपन को देखकर एक बार महाराज बनारस ने उनसे कहा, 'बाबूजी, घर देख कर काम करो।' इसका जवाब आपने दिया, 'महाराज, यह दौलत मेरे कितने ही पुरखों को निगल गई है, अब मैं इसे खा जाऊँगा।' इससे उनके स्वभाव की मस्ती का सबूत मिल सकता है।

भारतेन्दु बड़े रँगीले, बाँके, सुन्दर, सजीले आदमी थे। सौन्दर्य-प्रेम उनमें कूट-कूटकर भरा हुआ था। सुन्दरता खुद ब खुद उनकी आँखों में खुब जाती थी और कवि में यह एक विशेष गुण है। चित्रों से उन्हें बड़ा प्रेम था। बड़ी तलाश और खर्च से उन्होंने एक अनूठा संग्रह एकत्र किया था मगर एक दोस्त को उनके प्रति बहुत अनुरक्त देखकर उन्हें दे डाला। सौन्दर्य की प्रशंसा और वर्णन से उनकी कविता भरी हुई है और साहित्य-रसिकों का विचार है कि इस रंग में उनकी तबियत असाधारण ज़ोर दिखा गई है। नाटकों को छोड़कर, उनका काव्य सौन्दर्य और प्रेम की भावनाओं से भरा हुआ है। प्रत्येक कवि चाहे उसने कैसी ही बहुमुखी प्रतिभा क्यों न पाई हो सिर्फ़ एक ही क्षेत्र में चोटी पर पहुँचता है। हरिश्चन्द्र ने करुणा, प्रेम, प्राकृतिक दृश्य, वीरता, वैराग्य, हास्य, नीति आदि सभी रंगों में अपनी काव्य-प्रतिभा का प्रदर्शन किया है। मगर वह घुलावट जो उनके सौन्दर्य-चित्रण में पैदा हो गई है, दूसरे रंगों में अपेक्षाकृत कम है।

जिन्दादिली बाबू हरिश्चन्द्र का विशेष गुण थी और वह जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में प्रकट होती थी। साहित्य-रचना, देशप्रेम, सामाजिकता—इन सब कार्यों में उन्होंने आगे बढ़कर योग दिया। उन्होंने गद्य और पद्य की कई पत्रिकाएँ जारी की और नुक़सान उठाकर चलाईं। साहित्य के विकास के लिए एक संस्था स्थापित की। कुछ दिनों तक एक रीडिंग क्लब चलाया और चौखम्बे में एक अंग्रेज़ी स्कूल क़ायम किया। इसके खर्च वह बारह साल तक खुद अदा करते रहे। उनका लगाया हुआ यह शिक्षा का पौधा अब एक ऊँचा-पूरा पेड़ हो गया है। इसमें अब स्कूल लीविंग तक की पढ़ाई होती है। मकान नया बन गया है और विद्यार्थियों की संख्या चौगुनी हो गई है। इन बातों से प्रकट होता है कि बाबू हरिश्चन्द्र ज़माने की रफ़्तार से और उसकी आवश्यकताओं से अपरिचित न थे। उनकी ज़िन्दादिली बहुधा चुहल और दिल्लगीबाज़ी में खर्च होती थी। होली के दिनों में उनके यहाँ अबीर और गुलाल का दरिया बहता था। वह खुद

कमर में एक मोटा-सा कुण्डा बाँधे, मसखरों का एक तूफाने-वेतमीज़ी साथ लिये बड़ी आज़ादी से कबीरें गाते निकलते थे। इन दिनों में वह फक्कड़, स्वांग, नकल, फोहश, किसी से बाज न आते थे। अप्रैल की पहली तारीख अंग्रेज़ों के यहाँ दिल्लगी का दिन है। आज के दिन हर किस्म का मज़ाक जायज़ है। बाबू हरिश्चन्द्र इस तारीख को शहरवालों के दिलबहलाव के लिए ज़रूर कोई न कोई गुल खिलाते थे। एक बार एलान कर दिया कि एक मशहूर उस्ताद हरिश्चन्द्र स्कूल में मुफ्त गाना सुनायेंगे। जब हज़ारों आदमी जमा हो गये तो पर्दा खुला और एक आदमी मसखरों का भेस बनाये, उल्टा तम्बूरा हाथ में लिये बरामद हुआ और बड़ी भोंडी आवाज में रेंकने लगा। लोग समझ गये कि भारतेन्दु ने यह शगूफ़ा खिलाया है। शर्मिन्दा हो कर वापिस गये।

मगर इस आज़ादी और बेफ़िक्री के बावजूद उनके स्वभाव में संतोष भी बहुत था। वह अपनी कमज़ोरियों पर कभी कभी लज्जित भी होते थे मगर नानी* ने हरिश्चन्द्र के स्वभाव को देख कर उनके छोटे भाई के नाम सारी जायदाद का हिब्बेनामा कर दिया। हिब्बेनामे पर बाबू हरिश्चन्द्र के दस्तखत बहुत ज़रूरी थे मगर जब यह कागज़ उनके सामने आया तो उन्होंने बेधड़क उस पर दस्तखत कर दिये और दो-ढाई लाख की जायदाद की ज़रा भी परवाह न की। यह उनकी उदारता और निस्पृहता का बहुत अनूठा उदाहरण है।

बाबू हरिश्चन्द्र का साहित्यिक जीवन बाक़ायदा तौर पर अठारहवें साल से शुरू हुआ और यद्यपि उन्होंने उम्र बहुत कम पाई, देहान्त हुआ तो उनकी उम्र सिर्फ छत्तीस साल थी, तो भी इन्हीं अठारह वर्षों में उन्होंने अपने कलम से हिन्दी ज़बान को मालामाल कर दिया। उनकी रचनाएँ तीन हिस्सों में बांटी जा सकती हैं—नाटक, कविताएँ और गद्य के विविध लेख। इनमें से हर एक की संक्षिप्त चर्चा करना जरूरी मालूम होता है।

बाबू हरिश्चन्द्र के नाम से सोलह सम्पूर्ण नाटक मिलते हैं मगर अधिकांश बहुत छोटे हैं जो कुछ ही पन्नों में ही खत्म हो गये हैं। इनमें अधिकांश संस्कृत नाटकों के अनुवाद या रूपान्तर हैं। मौलिक नाटकों की संख्या पाँच से अधिक नहीं। इनमें भी चंद्रावली, नीलदेवी और सत्य हरिश्चन्द्र के अलावा और किसी नाटक को ठीक अर्थों में नाटक नहीं कहा जा सकता। वैदिक हिंसा, अंधेर नगरी नाटक नहीं बल्कि राष्ट्रीय और सामाजिक प्रश्नों पर हास्य-व्यंगपूर्ण चुटकुले हैं जो बहुत लोकप्रिय हुए और बार-बार खेले गये। 'भारत दुर्दशा' में राष्ट्र की नैतिक और

* बाबू हरिश्चन्द्र की ननिहाल बहुत धनाढ्य थी। बाबू हरिश्चन्द्र और उनके भाई इस जायदाद के उत्तराधिकारी थे।

लेकिन अगर इस नाटक को, जिसके कथानक की रचना में कवि को बहुत ज्यादा प्रयत्न नहीं करना पड़ा, अलग कर दिया जाये तो बाबू हरिश्चन्द्र के मौलिक नाटकों मे एक खास कमजोरी नजर आती है और वह है कथानक की दुर्बलता। यह दोष 'चंद्रावली' और 'नीलदेवी' में स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। इनमें वर्णन-शक्ति, भाव, दृश्य-चित्रण सब कुछ है मगर प्लाट कमजोर है और इसी प्लाट की कमजोरी ने अच्छे कैरेक्टरो को पैदा न होने दिया। 'हरिश्चन्द्र' के अलावा उनके बाकी मौलिक नाटकों मे कोई कैरेक्टर ऐसा नहीं—या है तो बहुत कम—जो मनुष्य के उच्च जीवन का आदर्श बन सके और नैतिकता के ऊँचे शिखरों तक पहुँचे। घटनाओं के प्रकार पर कैरेक्टरों की हीनता और उच्चता निर्भर है। दुर्बल घटनाओं की स्थिति मे ऊँचे कैरेक्टर क्योंकर पैदा हो सकते है।

बाबू हरिश्चन्द्र की कविताओ मे अगर्चे नाटको की सी मौलिकता नही, क्योंकि इस मैदान मे नया कुछ बहुत कम बचा है. लेकिन उसका स्थान बहुत ऊँचा है। काव्य-मर्मज्ञों ने उसको बहुत मान दिया है और हिन्दी के श्रेष्ठतम कवियों में उनकी गिनती की है। उर्दू में उदाहरण देकर उनकी कविता की विस्तृत चर्चा नही की जा सकती। सिर्फ इतना कहना काफ़ी है कि उन्होंने हर रंग में अपनी प्रतिभा का जौहर दिखाया। सौन्दर्य और वीरता का मैदान उनके लिए इतना ही आसान था जितना कायरता और घृणा का। तब भी जैसा हम ऊपर लिख चुके है, प्रेम के रंग मे उनकी कविता असाधारण रूप से सशक्त, प्रभावशाली और नैचुरल है। अध्यात्म और वैराग्य में भी उनकी तबियत ने जोर दिखाया है और जब यह खयाल करो कि यह ऐशपसन्द, शौकीन, रसीले कवि की रचना है तो सचमुच आश्चर्य होता है। वह अपने युग के केवल कवि नही बल्कि राष्ट्रीय कवि थे, और राष्ट्रभाषा की हैसियत से हर एक पब्लिक और राष्ट्रीय घटना पर उन्होंने आवश्यकतानुसार बधाई, शोक, स्वागत, विदाई आदि की कवितायें लिखी है मगर उनमे कोई विशेषता नहीं। कविता से और उसके असली उद्देश्यों से उनका कवि-स्वभाव कैसा परिचित था वह इस बात से बखूबी जाहिर हो जाता है कि उन्होने कविता के नौ रसों में चार और जोडे और काव्य-मर्मज्ञो ने इस संशोधन को एक मत से स्वीकार कर लिया।

बाबू हरिश्चन्द्र के गद्य-लेख विभिन्न विषयों पर हैं। ऐतिहासिक, धार्मिक, राष्ट्रीय, नैतिक—गरज कि सभी प्रश्नों पर उन्होने अपना मत व्यक्त किया है मगर उनमें न विचारों की ताजगी है न खोज, हाँ जबान अलबत्ता साफ़-सुथरी है।

हिन्दी के साहित्य संसार ने भारतेन्दु का यद्यपि उतना सम्मान नहीं किया जिसके वह अधिकारी हैं तो भी तुलसी और केशव जैसे उच्च कोटि के कवियों

लेकिन अगर इस नाटक को, जिसके कथानक की रचना में कवि को बहुत ज्यादा प्रयत्न नहीं करना पड़ा, अलग कर दिया जाये तो बाबू हरिश्चन्द्र के मौलिक नाटकों में एक खास कमज़ोरी नजर आती है और वह है कथानक की दुर्बलता। यह दोष 'चंद्रावली' और 'नीलदेवी' में स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। इनमें वर्णन-शक्ति, भाव, दृश्य-चित्रण सब कुछ है मगर प्लाट कमज़ोर है और इसी प्लाट की कमज़ोरी ने अच्छे कैरेक्टरों को पैदा न होने दिया। 'हरिश्चन्द्र' के अलावा उनके बाकी मौलिक नाटकों में कोई कैरेक्टर ऐसा नहीं—या है तो बहुत कम—जो मनुष्य के उच्च जीवन का आदर्श बन सके और नैतिकता के ऊँचे शिखरों तक पहुँचे। घटनाओं के प्रकार पर कैरेक्टरों की हीनता और उच्चता निर्भर है। दुर्बल घटनाओं की स्थिति में ऊँचे कैरेक्टर क्योंकर पैदा हो सकते हैं।

बाबू हरिश्चन्द्र की कविताओं में अगर्चे नाटकों की सी मौलिकता नहीं, क्योंकि इस मैदान में नया कुछ बहुत कम बचा है. लेकिन उसका स्थान बहुत ऊँचा है। काव्य-मर्मज्ञों ने उसको बहुत मान दिया है और हिन्दी के श्रेष्ठतम कवियों में उनकी गिनती की है। उर्दू में उदाहरण देकर उनकी कविता की विस्तृत चर्चा नहीं की जा सकती। सिर्फ इतना कहना काफ़ी है कि उन्होंने हर रंग में अपनी प्रतिभा का जौहर दिखाया। सौन्दर्य और वीरता का मैदान उनके लिए इतना ही आसान था जितना कायरता और घृणा का। तब भी जैसा हम ऊपर लिख चुके हैं, प्रेम के रंग में उनकी कविता असाधारण रूप से सशक्त, प्रभावशाली और नैचुरल है। अध्यात्म और वैराग्य में भी उनकी तबियत ने ज़ोर दिखाया है और जब यह खयाल करो कि यह ऐशपसन्द, शौकीन, रसीले कवि की रचना है तो सचमुच आश्चर्य होता है। वह अपने युग के केवल कवि नहीं बल्कि राष्ट्रीय कवि थे, और राष्ट्रभाषा की हैसियत से हर एक पब्लिक और राष्ट्रीय घटना पर उन्होंने आवश्यकतानुसार बधाई, शोक, स्वागत, विदाई आदि की कवितायें लिखी हैं मगर उनमें कोई विशेषता नहीं। कविता से और उसके असली उद्देश्यों से उनका कवि-स्वभाव कैसा परिचित था वह इस बात से बखूबी ज़ाहिर हो जाता है कि उन्होंने कविता के नौ रसों में चार और जोड़े और काव्य-मर्मज्ञों ने इस संशोधन को एक मत से स्वीकार कर लिया।

बाबू हरिश्चन्द्र के गद्य-लेख विभिन्न विषयों पर हैं। ऐतिहासिक, धार्मिक, राष्ट्रीय, नैतिक—गरज़ कि सभी प्रश्नों पर उन्होंने अपना मत व्यक्त किया है मगर उनमें न विचारों की ताज़गी है न खोज, हाँ ज़बान अलबत्ता साफ़-सुथरी है।

हिन्दी के साहित्य संसार ने भारतेन्दु का यद्यपि उतना सम्मान नहीं किया जिसके वह अधिकारी हैं तो भी तुलसी और केशव जैसे उच्च कोटि के कवियों

मजनूं

मजनूं फ़ारसी और अरबी इश्क की दुनिया का बादशाह है मगर उसकी दास्तान पढ़ कर ताज्जुब होता है कि उसे यह जगह कैसे मिल गई। न कोई दिलचस्पी है और न कोई वाकया। बस वह आशिक़ पैदा हुआ, आशिक जिया और आशिक मरा गोया उसकी जिन्दगी ही इश्क़ थी। इससे गरज नहीं कि इतिहास हमें उसका हवाला देता है या नहीं। इतिहास हुस्न-ओ-इश्क़ का जिक्र नहीं करता। हाँ, यह सब जानते हैं कि बड़े से बड़े नाम पैदा करनेवाले, बड़े से बड़े मुल्क जीतनेवाले को वह अमर जीवन नहीं मिला। उसके नाम पर शायर का क़लम झूमता है। उसके नाम से इश्क की दुनिया क़ायम है वर्ना अब ऐसे आशिक कहाँ। वह आशिक़ों की आहों, उम्मीदों, नाउम्मीदी, पागलपन, आत्म-विस्मृति की जिन्दा तस्वीर है। वह खुद एक कवि की सुन्दर कल्पना है। फारस और अरब के शायरों ने आशिक के लिए जो जगह कायम की है मजनूं उसी का हकदार है। वहाँ का आशिक एक लम्बा, कमजोर, दुबला-पतला आदमी होता है। उसके नाखून और बाल बड़े-बड़े होते हैं, बदन पर कोई कपड़ा नहीं होता और अगर होता है तो गरेबा से दामन तक फटा हुआ, आँखों से आँसुओं की नदी जारी, गाल पोले, नाखून से बदन खसोटे हुए, ज़मीन पर खाक-धूल में लोटता हुआ, पागल, मतवाला, हद से ज्यादा कमजोरदिल, मस्त ऐसा कि माशूक को भी न पहचाने, पहाड़ों और जंगलों में खाक छाने, न कुछ खाये न पिये, खाये तो गम, पिये तो आँसू, हवा के सहारे ज़िन्दा रहे, ये आशिकों की खासियतें हैं और मजनूं में ये खासियतें हद को पहुँच गई हैं।

पुराने ज़माने के हीरो का आम क़ायदा है कि वह उसी वक्त पैदा होते हैं जब उनके निराश माँ-बाप पहुँचे हुए फ़कीरों और अल्लाह के दोस्तों की चौखटों पर माथा रगड़ते-रगड़ते बूढ़े हो जाते हैं। मजनूं ने भी 'यही ढंग अपनाया। आप पैदा हुए तो बाप ने सारी दौलत लुटा दी। यह बच्चा माँ के पेट से आशिक पैदा हुआ, बूढ़ी दाई की गोद में उसे चैन न आता, रो-रोकर दुनिया सिर पर उठा लेता मगर जब कोई खूबसूरत औरत गोद में लेती तो आप खिल जाते।

वा दायये खुद न मी शुदे राम
बे माहरुख न दाश्त आराम

अपनी दाई के बस में नहीं आता था और किसी चंद्रमुखी के विना चैन न लेता था।

गर सौते खुशश बगोश रफ़्ते
आँ तिफ़्ल दमे जे होश रफ़्ते

अगर कोई अच्छी आवाज़ सुनता तो झूम उठता और मस्त हो जाता।

ज्योतिषियों ने जब इस आशिक़ लड़के का सितारा देखा तो बोले कि 'यह उठती जवानी में पागल हो जायेगा।'

काँ तिफ्ल व सँले रोजगारे
दीवाना शवद जे वहेयारे

जमाने के बहाव के साथ दीवाना हो जाये किसी माशूक़ के इश्क़ में।

दर इश्क़े वुते फ़साना गरदद
रुमवा शुदये जमाना गरदद

माशूक़ के इश्क में कहानी की तरह सारी दुनिया में मशहूर हो जायेगा।

लेकिन फ़ितदश गहे जवानी
दरसर हवसे चुना के दानी (हातिफ़ी)

लेकिन जब उस पर जवानी आयेगी तो उसके सर में एक हवस पैदा हो जायेगी जिसे इश्क़ कहते हैं।

अज इश्क़ बुते नजन्द गरदद
दीवाना ओ मुस्तमंद गरदद

इश्क़ मे बदनाम, पागल और परीशान होगा।

जब लड़के की पढ़ाई का वक़्त आया तो माँ-बाप ने उसे मक्तब में बिठा दिया। इस मक्तब में कुछ लड़कियाँ भी पढ़ती थीं। लैला उनकी रानी थी। हुस्न और नज़ाकत में लाजवाब। आशिक़ मजनूं ने उसे छाँटा। दोनों मक्तब में बैठे-बैठे इशारे-नजारे करते। इश्क रंग लाने लगा। (समझदार लड़के और लड़कियों को एक ही मक्तब में पढ़ाना ठीक है या नहीं इस सवाल पर राय क़ायम करने में यह दास्तान पढ़नेवालों को बहुत दिक्कत नहीं हो सकती।)

आँ गुलशने हुस्न रा ब एक बार
शुद क़ैस ब नक़्दे जाँ खरीदार

क़ैस यानी मजनूं इस हुस्न के बाग को फ़ौरन ही अपनी जान की क़ीमत देकर खरीदने पर तैयार हो गया।

लैला चू रफ़ीक़े खेश दीदश
ऊ नीज ब मेहे दिल खरीदश

लैला ने जब मजनूं को अपना दोस्त पाया तो उसने भी उसे अपने दिल की मेहरबानी से मोल ले लिया।

इश्क़ आमद व दर्द सीना जा कर्द
खुद रा बदो यार आशना कर्द

इश्क़ आया और सीने में दर्द की जगह पैदा की और अपने आप को दोनों से परिचित कराया।

दर खानये सब्र आतश उफ्ताद
शुद खिरमने नंगोनाम बरबाद

सब्र की जगह पर आग गिर पड़ी और इज्ज़त-आबरू का खलिहान बर्बाद हो गया।

धीरे-धीरे यह भेद लड़कों पर खुल गया। चर्चा फैली। लैला की माँ ने यह हालत देखी तो लड़की को मक्तब से उठवा लिया। समझाने लगी।

गुफ़्तश के शनीदम अज़ फ़लाने
का शुफ्तईतू शुदी जवाने

मैंने किसी से सुना है कि तू किसी जवान पर आशिक हो गई है।

वो हम के तू नीज असीरे रूये
आजुर्दा जे ज़ख्मे तीरा रूये

और यह भी कि तू इश्क़ में फँसी तो उसके जो काला सियाह है।

गीरम बुग्रदत हज़ार आशिक
माशूका शुदन जे तू चे लायक

मैंने माना कि तेरे हज़ारो आशिक़ हैं लेकिन तुझे किसी का आशिक होने की क्या जरूरत।

दुख़्तर कि ब ईनो आँ न शीनद
जुज रू सियही दिगर न बीनद

लैला ने माँ की बात न सुनी और सिवाय मुँह काला करने के कोई सूरत नज़र न आई।

गुल रा शरफ़ ओ लताफ़ते हस्त
चंदाँ के न कर्द कस बदूदस्त

फूल की इज्ज़त और उसकी नज़ाकत तभी तक है जब तक कि कोई उसे न छुए।

आँ कस के गिरफ़्त ओ कर्द बूयश
अज़ दस्त बेफ़गनद बकूयश

॥ मजनूं ॥

जैसे ही आदमी ने उसको छुआ और सूंघा, हाथ में रखने के बदले मुहल्ले में फेंक दिया।

तरसम के चू गरदद ईं खबर फ़ाश
बदनाम शवी मियाने औबाश

मैं डरती हूँ कि अगर यह बात फैली तो तू बदमाशों में बदनाम हो जायेगी।

सूफ़ी कि रवद व मजलिसे मैं
वक्ते बचकद प्याला बरवे

सूफी जब शराब की मजलिस में जाता है तो वह छलकता हुआ शराब का प्याला चढ़ा जाता है।

आँ कस कि मगस ज़े कासा रानद
नाखुरदन ओ खुरदनश न दानद (खुसरो)

वह आदमी जो प्याले में से मक्खी निकाल देता है तो वह उसका खाना और नहीं खाना नहीं जानता यानी खाना न खाना बराबर समझता है।

मगर लैला पर इन नसीहतों का वही असर हुआ जो आशिकों पर हुआ करता है।

उसने फौरन इन बातों से अपने को अनजान जताया, भोली-भाली लड़की बन गई और कहने लगी, 'अम्मां, इश्क क्या होता है ?'

कै मादर दहर इश्क़ गो चीस्त
माशूक़ कुदाम व आशिकम कीस्त

ऐ मेरी माँ, इश्क क्या चीज है, मैं किसकी आशिक हूँ और मेरा माशूक कौन है ?

आँ इश्क गुलेस्त दर बहारे
या नाम दिहेस्त दर दयारे

वह इश्क़ बहार का कोई फूल है क्या या किसी मुकाम का नाम है ?

या इश्क ज़े जिन्स खुर्द विनहास्त
अज बहरे खुदा ब मन बिगो रास्त

या वह इश्क कोई छिपी हुई चीज़ है, खुदा के वास्ते मुझे अच्छी तरह ठीक-ठीक बता।

हरगिज न शनीदाएम ईं नाम
लफ्ज़े के नीस्त दर जहाँ आम

मैंने यह नाम कभी नहीं सुना। ऐसा कोई लफ्ज़ दुनिया में आम नहीं है।

माँ बेचारी सीधी-सादी औरत थी। लड़की की बातों पर यकीन आ गया। इधर इश्क़ ने और पाँव निकाले। मियाँ मजनूं मदरसे जाते और रो पीटकर घर

चले आते । आखिर जब देखा कि इस रोने-धोने से काम न चलेगा तो एक दिन आप अंधे बन बैठे और लैला के दरवाज़े पर जाकर रास्ता पूछा। लैला ने उनका हाथ पकड़कर रास्ता बताया। दिल की कहानी कहने-सुनने का भी मौका मिल गया। अब तो आपको चस्का पड गया। अब आप फ़क़ीर बनकर लैला के दरवाज़े पर पहुँचे और आवाज लगाई। लैला ने आवाज़ पहचान ली। खुद भीख लेकर दरवाजे पर आई। नजरें मिली और दिल ठण्डे हुए। फिर तो मियाँ मजनूं रोज एक न एक स्वांग भरते यहाँ तक कि बहुरूप खुल गया। लोग मजनूं की ताक में रहने लगे कि मौका पायें तो हमेशा के लिए क़िस्सा पाक कर दें। यह पाँसा भी पट पड़ा। लैला की जुदाई ने मजनूं को पागल बना दिया।

दीवानए इश्क़ शुद ब एक बार
रुसवाये मुहल्ला गश्त ओ बाज़ार

वह इश्क में पागल हो गया। मुहल्ले-बाजार में बदनाम हो गया।

गश्ते सरोपा बरहना पैवस्त
तिफ्लाने कबीला संगे दरदस्त

हमेशा नंगे पांव और नंगे सर रहता और क़बीले के बच्चे उसे पत्थर मारते।

दर कू बफ़ुगाँ ज़े संगे एशाँ
दरख़ाना वजाँ ज़े पंदे ख़ेशाँ

मुहल्ले में उनके पत्थरों से परेशान और घर मे घरवालों की नसीहत से तंग।

हर हर सरे कोह फ़सानए ऊ
दर हर महफिले तरानए ऊ

हर पहाड़ की चोटी पर उसी की कहानी थी और हर महफिल में उसी का तराना था।

मजनू का इतना बुरा हाल देखा तो बाप को फ़िक्र हुई। पहले तो समझते रहे कि यह इश्क यूँ ही है, होश आयेगा तो आप ही असर जाता रहेगा। मगर जब देखा कि हर रोज रंग गाढा होता जाता है तो एक दिन आपने मजनूं से पूछा—तुम्हारी यह क्या हालत है? क्या फ़िक्र है? इस पागलपन का क्या सबब है? अगर इश्क ने सताया है तो माशूक कौन है?

परवानए शोलए चे शमई
आशुफ्ताये गुलरुख़े चे जमई

तू किस चिराग़ के शोले का परवाना है और किस फूल जैसे गालों वाले का आशिक है?

॥ मजनूं ॥

आहूए कुदाम लालाजारत
कर्द अज नजरे चुनी शिकारत

तेरा हिरन किस बाग़ का है जिसने एक निगाह में तुझे शिकार कर लिया ?

मगर मजनूं की अक्ल बिल्कुल ठिकाने न थी। बाप को भी न पहचान सका। पूछने लगा तुम कौन हो, कहाँ से आए हो ? और जब मालूम हुआ कि यह बुजुर्ग मेरे बाप हैं तो बोला—

मजनूं गुफ्तश विगो पिदर चीस्त
गैरज लैला कसे दिगर कीस्त

मजनूं ने उससे कहा—बाप क्या चीज है, सिवाय लैला के दूसरा कौन है।

नामद जे मए कि इश्क़ दादश
अज मादरो अज पिदर बयादश

उसको इश्क ने जो शराब पिलाई है उसमें वह माँ-बाप को भूल गया है।

बेटे का तो यह हाल, बूढ़े बाप ने नसीहतों का दफ्तर खोल दिया। दुनिया की ऊँच-नीच सुझाई, कमाल पैदा करने की नसीहत की और अपनी लंबी-चौड़ी बातें औरतों की बेरुखी और मक्कारी पर खत्म की।

जों शेफ्तगी व खामकारी
बिसियार कशी ज़े दहर खारी

इस मुहब्बत और नातजुर्बेकारी की वजह से तू दुनिया में बहुत बेइज्जत होगा।

खाही चू सआदते गरामी
दानिश तलब ओ बलंद नामी

अगर तू चाहता है कि खुशकिस्मत हो तो इल्म और बड़ा नाम हासिल कर।

अकनूं कि जवानओ होशमंदी
बायद तलबीदन अर्जुमंदी

अभी तू जवान और समझदार है, तुझे चाहिए कि इज्जत और नाम पैदा करे।

फ़र्दा कि शवी ब्साने मन पीर
अफसोस खुरी व नीस्त तदबीर

कल तू मेरी तरह बुड्ढा हो जायेगा फिर अफ़सोस करेगा लेकिन तब कोई इलाज न होगा।

बा अस्ल ओ नसब मवाश मगरूर
कॉं हस्त ज़े मर्दुमी दूर

॥ विविध प्रसंग ॥

खानदान और जात-पांत पर घमंड न कर क्योंकि ये बातें मर्दानगी से दूर हैं।

' कस मेह्रो वफ़ा ज़े ज़न न ज़ूयद
कज शोरा ज़मी समन न रूयद

कभी औरत से मुहब्बत और मेहरबानी की उम्मीद न रखनी चाहिए क्योंकि बंजर जमीन में चमेली कभी नहीं लगती।

चश्मश कि नज़र बनाज़ कर्दा
बर तू दरे फ़ितना बाज कर्दा

उसकी चितवन ने एक ख़ास नजर करके तुझ पर फ़ितने और फसाद का दरवाजा खोल दिया है।

मगर आशिकों पर नसीहतों का असर कब हुआ है। खास तौर पर ऐसी नसीहत का जिसमे दिल की हालत का ज़रा भी खयाल न रक्खा गया हो और जिसमें हमदर्दी का कोई पहलू न हो। मजनूं ने इसके जवाब में मजबूरी और बेबमी जतायी और किसी कदर बेअदबी के साथ कहा, 'आप इस गली से वाक़िफ़ नहीं, आप मेरे दर्द को क्या जानें, मुझे मेरे हाल पर छोड़ दीजिए।'

ईं शेफ्तगी बदस्ते मन नीस्त
कस दुश्मने जान खेशतन नीस्त

यह इश्क़ मेरे बस का नहीं है क्योंकि कोई आदमी अपनी जान का दुश्मन नहीं होता।

खाही ज़े फिराके ऊ न नालम
बरखेज़ ओ बरारश अज़ खयालम

अगर तू चाहता है कि मैं उसकी जुदाई में न रोऊँ-चिल्लाऊँ तो उठ और उसका खयाल मेरे दिल से निकाल दे।

खिजलतज़दा ओ सियाहकारम
वज कर्दये खेश शर्मसारम

मै कुसूरवार हूँ और अपने किये पर शर्मिन्दा हूँ।

चूं नीस्त बदस्त अख्तियारम
बगुज़ार पिदर, मरा बकारम॥

जब मुझे अपने पर अख्तियार नहीं तो यही अच्छा है कि ऐ बाप तू मुझे मेरी हालत पर छोड़ दे।

आं बेह कि नसीहतम न गोई
दस्त अज़ मनो कारे मन बशोई

॥ मजनूं ॥

यही अच्छा है कि तू मुझे कोई नसीहत न कर और मुझसे और मेरे काम से हाथ धो ले।

आं दीदा कि आमद अज़ अजल कूर ,
अज़ यारिए सुरमा के दिहद नूर

वह आँख जो पैदा ही अंधी हुई उसको सुरमे की मदद से क्या रोशनी मिल सकती है।

पन्दम चे दिही, चे जाये पन्दस्त
पन्दे तू मरा न सूदमन्दस्त

तू मुझे नसीहत करता है, यहाँ नसीहत की क्या जगह है, तेरी नसीहत से मुझे क्या फ़ायदा।

अब जवाब का आखिरी टुकड़ा मतलब से भरा हुआ है जो एक हद तक असलियत का रंग लिये हुए है।

ऊ नै लैला ओ मन न मजनूं
यक तन शुदाएम हर दो अकनूं

वह लैला नहीं है और मैं मजनूं नहीं हूँ। हम दोनों अब एक बदन हो गये हैं।

उधर लैला की हालत भी खराब थी। दिन-रात रोती-धोती रहती थी।

मी गुफ्त कि आह चूं कुनम चूं
मजनूं शुदाअम ज़े इश्के मजनूं

कहती थी कि हाय मैं क्या करूँ। मजनूं के इश्क में खुद मजनूं हो गई हूँ।

ऐ बादेसबा चू मी तवानी
कज़ मन खबरे बाऊ रसानी

कहती, ऐ सुबह की नर्म और ठंडी हवा, अगर तुझसे हो सके तो मेरी हालत उससे कह देना।

मन हम ज़े तू कुश्तए फ़िराकम
जुफ़्तम ब ग़मत ग़रज़ तू ताकम

मैं भी तेरी जुदाई की मारी हुई हूँ। अगरचे तुझसे जुदा हूँ लेकिन तेरे ग़म के साथ हूँ।

ऐ दोस्त बिया दवाये मन कुन
फ़िक्रे मनो दर्दहाय मन कुन

ऐ दोस्त आ और मेरी दवा कर, मेरे दर्द की फ़िक्र कर।

मसलत न हरीफे रंजो दर्दम।
दानी कि जनम न चूं तू मर्दम॥

॥ विविध प्रसंग ॥

तुझ-जैसा मेरे ग़म और दर्द का साथी नही है। तू जानता है कि मै औरत हूँ मर्द नहीं हूँ।

जन जे आतशे इश्क बेश सोजद
ख़ाशाके जईफ़ पेश सोजद

औरत इश्क की आग में ज्यादा जलती है जैसे कमजोर घास-फूस फौरन ही जलकर राख का ढेर हो जाते है।

मजनूं के बाप ने जब देखा कि खाली नसीहतो और तसल्लियो से काम न चलेगा और लड़का बिलकुल दीवाना हो चुका है तो लैला के बाप से दर्ख्वास्त की कि मजनूं से लैला की शादी कर दें मगर लैला के बाप ने बड़ी बेदर्दी से इन्कार कर दिया और अपनी मजबूरी इन शब्दो में व्यक्त की—

फ़र्ज़न्दे तू देव जिश्त खूईस्त
दीवाना ओ तुन्द ओ हर्ज़गोईस्त

तेरा बेटा शैतान की सी प्रकृति रखता है। वह पागल है, सख्त तबीयत है और बकवास करता रहता है।

इस्लाह पिज़ीर नीस्त मजनूँ
अज़ वर्तये अक्ल हस्त बेरूँ

मजनूं सीधे रास्ते पर नहीं आ सकता। वह अक्ल के घेरे से दूर जा पड़ा है।

बदनामतरे अज़ू न बीनम
खुदकामतरे अज़ू न बीनम

मैंने उससे ज्यादा बदनाम और उससे ज्यादा मतलबी दूसरा नहीं देखा।

दानी कि मरा न बा तू जंगस्त
न अज़ तू व ख़ेशिये तू नंगस्त

तू जानता है कि मेरी तुझसे लड़ाई नहीं है और न तुझसे और तेरे रिश्तेदारों से मैं कोई शर्म रखता हूँ।

ईं कार वले न कारे सहलस्त
दीवानए तू न यारे अहलस्त

लेकिन यह काम आसान नहीं है क्योंकि तेरा दीवाना दोस्ती के लायक नहीं है।

तूती कि व बोंद हम नफस कर्द
बुलबुल कि ब जाग दर कफस कर्द

यह एक ऐसी ही बात है जैसे तूती का साथी उल्लू को बनाना या बुलबुल

के साथ कौवे को पिंजरे में रखना।

मजनूं के बाप ने इन ऐबों की सफ़ाई में बहुत ज़ोरदार तक़रीर की और कहा कि आपका यह खयाल बिलकुल गलत है। मजनूं न तो बदमिजाज है और न बदमस्त। उसे सिर्फ इश्क की बीमारी है, उसकी दवा मिली और वह होश में आया। आप खुद उसे देखलें, उसकी आदत का इम्तहान कर लें, किसी के कहने-सुनने में न आयें। हुक्म हो तो हाजिर करूँ। वह इस बात पर राजी हो गया और हज़रत मजनूं बुलाए गए मगर सवाल-जवाब की नौबत आने के पहले ही किस्मत की बात कि लैला का कुत्ता उधर से निकल पड़ा। 'दीवानारा हुए बसस्त' मजनूं को अब कहाँ सब्र, आप उठे और दौड़कर कुत्ते को सीने से चिपका लिया, कभी उसके नाखूनों को चूमते, कभी उसके मुँह को प्यार करते और उसकी तारीफ़ों के पुल बांध दिये।

बरजस्त जे जाये खेश आज़ाद
वज़ शौक बदस्तश्रो पायश उफ़्ताद

अपनी जगह से बेचैन होकर उठा और उसके पांव पर गिर पड़ा।

मालीद ब पुश्त ओ पाये ऊ रूए
की पाये गुजश्ता जस्त ज़ाँ कूए

उसकी पीठ और पांव पर अपना चेहरा मला क्योंकि उसके पांव लैला के मुहल्ले में गुजरते थे।

आवुर्द बहुस्तश दर आग़ोश
खारीद ब नाखुन औं सरोगोश (हातिफ़ी)

बड़े अरमान से उसे गोद में लिया और उसका सर और कान खुजलाने लगा।

पायश जे कुलूखे खार मीरुफ्त
वज़ पाओसरश गुबार मो रुफ्त

उसके पांव से कांटे साफ़ करता था और उसके पांव और सर की मिट्टी साफ़ करता था।

दामन बतहश फ़िगन्दा दर खाक
मीकर्द ब आस्तीं सरश पाक

अपना दामन उसके नीचे बिछाता और उसका सर आस्तीन से झाड़ता।

बोसीदा सरश ब रुफ़्क़ ओ आरज़म
खारीद तनश बनाखुने नर्म

उसका सर प्यार से चूमता और उसका बदन धीरे-धीरे नाखून से खुजाता।

॥ विविध प्रसंग ॥

गुफ्त ऐ गिलेस्त अज वफ़ा सरिश्ता
नक़शत फलक अज वफ़ा सरिश्ता

कहता जाता कि तेरी मट्टी वफा से गूंधी हुई है और तेरी तस्वीर वफ़ा के आसमान से बनाई हुई है।

हमनान कसाँ हलाल खुर्दा
हम खुर्दा खुद हलाल कर्दा

तूने जिसका खाया उसे हलाल करके खाया और अपना खाया हुआ हलाल कर दिया।

सद रौजये खुश बजेरे पायत
दर रौजयेगह् विहिश्त जायत

तेरे पाँव के नीचे सैंकड़ों बाग है और हर बाग में एक जन्नत है।

सद खूँ जे लबत चकीदा दर खाक
वज लौसे खबासतत दहन पाक

सैंकड़ों खून तेरे ओंठ से टपके लेकिन तेरा मुंह खबासत से पाक है।

गर तू सगे अज सरिश्ते दौरां
ईनक सगे तू मनम बसद जाँ

अगरचे तू दुनिया का कुत्ता है लेकिन अब मैं तेरा कुत्ता हूँ।

मजनूं की ज़बान ने इस वक्त कमाल का जोर दिखाया। यह गोया अपनी उम्मीदों और मुरादों का मसिया था। मजनूं से दामन छुड़ाकर लैला के बाप ने बेटी की शादी इब्ने सलाम से कर दी। लैला को बहुत ग़म हुआ। जहाँ तक शर्म ने इजाज़त दी उसने अपनी नाराजी ज़ाहिर की मगर जब कुछ जोर न चला तो रो-धोकर चुप हो गई। खुशी की महफ़िल सजाई गई। क़ाज़ी साहब तशरीफ़ लाये। शादी की रस्में अदा की गईं और दूल्हा-दुल्हन के मिलने की तैयारियाँ होने लगीं। दूल्हा बन-ठन के दुल्हन के कमरे में आया।

आमद ब सूए उरूस दामाद
बा खातिरे खुर्रम ओ दिले शाद

बड़ी खुशी और शौक से दूल्हा दुल्हन की तरफ़ बढ़ा।

दर पहलुए उन निगार बनशस्त
मी खास्त के सूए ऊ बर दस्त

सवाँरी हुई दुल्हन के पास बैठा और चाहता था कि उस पर हाथ डाले कि

बर रुये जदश तमाचए सख्त
जाँ गूना दरू फ़िताद अज तख्त

दुल्हन ने दूल्हे को इस जोर से तमाचा रसीद किया कि वह तख्त से नीचे गिर पड़ा।

गुफ्तश के खयाले खाम दारी
गुल बूए मकुन जे काम दारी

और उससे कहा कि किस बेहूदा खयाल मे है। मेरी जवानी के फूल का रस न चूस।

ईं तख्त मुकामे ताजदारीस्त
की खुतबा बनामे शह्रयारीस्त (हातिफ़ी)

यह मुकाम ताजदार का है और यह खुतबा बादशाह का।

लैलीश चुना तमाचए जद
कि उफ़्ताद मर्द मुर्दा बेखुद

लैला ने उसके इस जोर से तमाचा मारा कि वह मुर्दे की तरह गिर पड़ा।

यहां किस्से में कुछ विरोध है। निजामी और हातिफ़ी कहते है कि लैला की शादी इब्ने सलाम से हुई और दोनों की एक राय है कि लैला ने अपने लालची शौहर के मुंह पर तमाचा मारा। आखिर वह गरीब चांटा खाकर भाग खड़ा हुआ और तलाक के सिवा कोई सूरत नजर न आई। मगर खुसरो फरमाते हैं कि मजनूं की शादी नूफ़ल की लडकी से हुई। नूफल शायद मजनूं के कबीले का सरदार था। उसे मजनूं की परेशानी पर तरस आया। मजनूं की तरफ़ से लैला के बाप के पास शादी का पैगाम भेजा और इन्कार की हालत मे लडाई की धमकी दी। लैला का क़बीला भी लड़ाई मे एक ही था। लड़ाई हुई और लैला का बाप हारा। मगर जब उसके कबीलेवालों ने इस मार-काट को खत्म करने के लिए लैला को मार डालना चाहा तो मजनूं बेताब हो गया। उसने नूफल से दरख्वास्त की कि खुदा के वास्ते इस हंगामे को खत्म कीजिए।

आँ तीर मजन बदुश्मनाँ पेश
कज वै दिले दोस्ताँ कुनी रेश

दुश्मनो पर वह तीर न चला जिससे दोस्तों का दिल जख्मी हो जाय।

चूं जामये वक्ते मन कबूदस्त
अज कोशिशे मर्दुमा चे सूदस्त

चूंकि मेरी किस्मत का लिबास आसमानी है यानी मैं बदनसीब हूँ, लोगों की कोशिश से क्या फ़ायदा।

नूफ्ल ने अपनी फ़ौज हटा ली मगर उसकी बहादुरो-जैसी हमदर्दी ने यह न चाहा कि वह मजनूं को अपना दामाद बना ले। मजनूं ने रिश्तेदारों के समझाने

ग्रौर नूफल को बहादुरी से प्रभावित होकर यह शादी मंजूर कर ली। धूम-धाम से व्याह हुग्रा मगर

चूं शुद गहे ग्राँ कि खुर्रम ग्रो शाद
हम ख्वाबा शवन्द सर्व ग्रो शमशाद

खुशी से भरी हुई घड़ी में सरो ग्रौर शमशाद जैसे दूल्हा-दुल्हन एक कमरे में सोने गये।

ग्रज़ तख़्ते शही सुबुक फुरू जस्त
बर रूये जमीं चू ख़ाक बनशस्त

मजनूं दुल्हन की सेज से नीचे कूदा ग्रौर जमीन पर मट्टी की तरह बैठ गया।

मह दर पये ग्राँ कि शवद जुफ्त
दीवाना ज़े माहेनौ बर ग्राशुफ्त

चाँद जैसी दुल्हन इस फ़िक्र में कि ग्रपने दूल्हे से मिले ग्रौर मजनूं की ऐसी हालत जैसी नये चाँद पर पागल का पागलपन ग्रौर बढ़ जाता है।

ग्रज़ बसके गिरीस्त सीना पुरताब
शुद नक़्शे बिसात शुस्ता जाँ ग्राब

सीने की ग्राग की बेचैनी से इस क़दर रोया कि ग्रांसुग्रों से फ़र्श के फूल-बेल धुल गये।

लैला ने यह खबर सुनी तो बेचैन हो गई। उस वक्त शिकायत के ढंग पर एक चिट्ठी लिखी, कोमल भावनाग्रों से भरी हुई, कि मैं तुम्हारे नाम पर कसम खाये बैठी रहूँ, तुम्हारे लिए रोऊँ, तुम्हारे वियोग में जलूँ ग्रौर घरवालों के ताने सहूँ ग्रौर तुम वफादारी की शर्त को इस बेदर्दी से भुला दो!

मन बे तू चुनी बग़म नशस्ता
ग्रज़ हर चे बजुज़ तू रूये बस्ता

मैं तेरे ग़म में इस तरह बैठी हुई हूँ ग्रौर सिवा तेरे सबसे मुँह बाँधे हुए हूँ।

चू साया रवद बराहे बा मन
फ़र्के न कुनी ज़े साया ता मन

तू मेरे रास्ते में साये की तरह रहता है, मुझमें ग्रौर मेरे साये में फ़र्क नहीं करता।

दीदी के ब मारिज़े हलाकम
चूं बाद बरो शुदी ज़े खाकम

तू देख रहा है कि मैं मरने के किनारे तक पहुँच गई हूँ ग्रौर तू मेरी खाक पर हवा की तरह गुज़र रहा है।

बेगाना सिफ़त खराम कर्दी
बेगानगी तमाम कर्दी

ग़ैरों का रास्ता अख्तियार कर रहा है और परायेपन की तूने हद कर दी।

अकनूं ब विसाल खुफ़्तये शाद
हमख़ाबये तू मुबारकत बाद

अब तू अपनी दुल्हन के साथ खुशी खुशी सो रहा है, तुझे तेरे साथ सोनेवाली मुबारक हो।

बाई हमा दोस्तदारो यारम
बा यारे तू नीज दोस्तदारम

मै इन तमाम बातो पर भी तेरी दोस्त हूँ और तेरे साथी की भी दोस्त हूँ।

आँ यार कि दोस्त: श्त यारम
दुश्मन बुअदम अर न दोस्त दारम

वह दोस्त जो मेरे प्रेमी को दोस्त रखे अगर मैं उसे दोस्त न रक्खूँ तो उसकी दुश्मन हूँ।

गर तू ब कुनी ब मेह्र यादम
अज तरबियते गमे तू शादम

अगर तू मेह्रबानी से मुझे याद करे तो तेरे गम मे भी खुश हूँ।

मजनूं तो आशिक ही थे उसका एक लम्बा-चौड़ा जवाब लिखा। खूब रोये-गिड़गिड़ाये और मान लिया कि मैंने शादी की, मजबूर था, बेबस था मगर मैंने अगर इस माशूक की सूरत देखी हो तो मेरी आँखें फूट जायँ। कैसा नाजुक शेर है—

मुर्गे कि परश बिरेख़्त अज तन
बेहूदा बुअद कफ़स शिकस्तन

वह चिड़िया जिसके पर उखाड़ दिये गये उसका पिंजड़ा तोड़ना फ़िजूल है।

यह खुसरो की रवायत है मगर हमारे खयाल में निजामी और हातिफ़ी की रवायत ज्यादा सही है। मजनूं अपने बाप को कई बार बेअदबी से जवाब दे चुका था। इस वक्त सिर्फ़ अदब की खातिर उसका क़ाबू में आ जाना मुमकिन नही मालूम होता। इसके विपरीत लैला औरत थी और अपने ज़िद्दी माँ-बाप की ज्यादा खुल्लम-खुल्ला मुखालिफ़त नही कर सकती थी। इसलिए जब मजनूं को मालूम हुआ कि लैला की शादी इब्ने सलाम से हो गई तो उसने एक दर्द से भरी हुई चिट्ठी लिखी थी। खुली खुली शिकायतें की थी। तुम वादा तोड़नेवाली हो, दग़ाबाज हो, फ़रेबी हो।

॥ विविध प्रसंग ॥

दानी ब मनत चे वादहा बूद
हर्रागज ब तू ईं गुमां कुजा बूद

तू जानती है कि मुझसे तूने क्या वादा किये थे, मुझे तुझसे यह उम्मीद कहाँ थी।

ऐ गंजे सुखन दरोग वादा
वै दिलबरे बे फ़रोग़ वादा

ऐ बातों के खजाने, ऐ वादा न पूरा करनेवाले, ऐ माशूक़, ऐ वादा भूल जानेवाले।

गाहम ब सुखन फ़रेब दादी
बा वादा गहे शकेब दादी

कभी तूने मुझे अपने वादों से तसल्ली दी और कभी अपनी बातों से धोखा दिया।

लैला ने इसका बड़ी गंभीरता से जवाब दिया और मजनूं की तसल्ली की। आजकल के उर्दू शायरीवाले माशूकों की तरह खंजर हाथ में न लिये रहती थी, वफा की शर्त और क़ायदे को जानती थी।

अफ़सानये कस न कर्दा अम गोश
पस खुर्दये कस न कर्दा अम नोश

मैंने किसी की बातों पर यक़ीन नहीं किया और न किसी का जूठा खाया है।

दानी कि मरा ब तू वयारे
दर बस तने अवद इख्तियारे

तू जानता है कि मेरी तुझसे दोस्ती है। अपनी शादी करने के लिए तुझे अख्तियार है।

चीज़े कि बर इख्तियारे मन बूद
जाँ मुद्दइयत न गश्ता खुशनूद

जो चीज़ कि मेरे बस में थी उससे तेरा दुश्मन खुश न हुआ।

कम कुन जे शर्मसारम
मन खुद जे तू इन्फ़ेआल दारम

ज्यादा गुस्सा न हो, मैं शर्मिन्दा हूँ। मुझे खुद तुझसे संकोच होता है।

इश्क़ की बीमारी बढ़ती गई। पहले तो कैस ही मजनूं थे अब लैला भी मजनूं (पागल) बनी। शर्म और हया की रोक-थाम कम हुई। उसने एक दिन सपना देखा कि मजनूं आया है और बहुत दर्दभरे, दिल के टुकड़े कर देनेवाले अंदाज़ में अपनी ग़म की दास्तान सुना रहा है। रोता है और उसके तलुओं से आँखें

मलता है। यह सपना देखते ही बेचैनी के मारे लैला की आँख खुल गई। उसने दिल को फूँक देनेवाली एक आह भरी और सुबह होते ही शर्म-हया पर लात मारकर अपने ऊँट पर सवार होकर नज्द का रास्ता लिया और पागलों की तरह मजनूं को ढूँढ़ने लगी। आह, इस आग ने मजनूं को बिलकुल घुला डाला। ऐसा कमज़ोर हो गया था कि लैला उसे पहचान न सकी। घुटनों पर सर झुकाये, एक चट्टान का तकिया बनाये, खुले मैदान में, जहाँ न कोई पेड़ न छाया, वह बैठा हुआ था। उसकी मुहब्बत का ही असर था कि जंगल के खूनी जानवर हिरनों के साथ उसके आस-पास बैठे थे। ऊँट इन जानवरों को देखते ही भागा मगर लैला फुर्ती से कूद पड़ी और जानवरों के बीच में से निर्भय निकलकर मजनूं के पास खड़ी हो गई और उसकी सेवा-शुश्रूषा करने लगी।

आँ सर के बखाके रह फ़ितादश

बर जानुए खेश्तन निहादश

वह सर जो रास्ते की खाक पर पड़ा था उसे अपनी जाघ पर रक्खा।

अश्क अज़ रुखे ग़रीब गमनाक

मी कर्द व आस्तीने खुद पाक

अपनी आस्तीन से उस गरीब गम के मारे के चेहरे से आँसू पोंछे।

मजनूं को दोस्त की निकटता ने अधीर कर दिया। लैला उसकी अधीरता से प्रभावित होकर बोली—

ऐ आशिके जार ग़मगुसारम

मक़सूदे तू चीस्त ता बरारम

ऐ मेरा गम खानेवाले आशिक़, बता तू क्या चाहता है। तेरी कोई ख्वाहिश ऐसी नहीं जिसे मैं पूरा न कर सकूँ।

आँ बेह के दिहेम दस्त बाहम

वाँ गह व निहेम सर ब आलम

यह अच्छा होगा कि हम-तुम (हमेशा के लिए) एक दूसरे का हाथ थाम लें और फिर दुनिया में रहें।

यह लहज़ा जुदा न बाशेम

बा हेचकस आशना न बाशेम

पल भर को भी जुदा न हो और दूसरे किसी से कोई मतलब न रक्खें।

मगर मजनूं को इश्क़ और रोने-धोने से काम था। शायद लैला से मिलने और उसकी सूरतें निकालने की तरफ़ उसका खयाल ही नहीं गया था। तड़पना और जलना उसकी तबियत बन गयी थी। इस मौके पर शायरों में कुछ मतभेद

हो गया है। हज़रत खुसरो कहते हैं :

आसूद दो मुर्ग दर यके दाम
वामीख्त दो वादा दर यके जाम

दो बुलबुलें एक जाल में ऐसी खुशी से मिल गईं कि जैसे एक प्याले में दो शराबें मिला दी हों।

दर सुब्ह वहम दमीदा अज दूर
दो शोलारा यके शुदा नूर

दूर से सुबह की रोशनी चमकी और दो शोलों से एक नूर पैदा हो गया।

मगर हज़रत निज़ामी और हातिफी ने मजनूं की इश्क की इज़्ज़त बहुत ऊँची कर दी है। चुनांचे इस मौके पर हातिफ़ी ने मजनूं के पाक दामन पर धब्बा नहीं लगाया। ख़याली इश्क को अमली मैदान में कदम नहीं रखने दिया। मजनूं को उस वक़्त लैला की बदनामी का खयाल आया। सारी जिन्दगी उसे बदनाम करने में खर्च की, खुद भी दुनिया के ताने सहे और उस पर उँगलियाँ उठवाईं मगर उस वक़्त विरोधियों का डर आड़े आ गया, बोले—

आं बेह कि निहां जे ईनो आनत
नजदीके पिदर बरम रवानत

यह अच्छा है कि मैं तुझे बहुत पर्देदारी के साथ तेरे बाप के पास ले चलूं।

दस्तम न दिहद अगर विसालत
काने शवम अज तू बा खयालत

अगर वे तुझे मेरे साथ रखने पर खुश न हों तो न सही। मैं तेरे खयाल ही से खुश रहूँगा।

ज़ीं पस मनम ओ खयाले तू ऐ दोस्त
ता दस्त दिहद विसालत ऐ दोस्त

और इसके बाद फिर जब तक ऐ दोस्त, तू मुझसे न मिले मैं हूँ और तेरा खयाल।

लैला अपने घर लौट आई। आशिक की इससे ज्यादा और क्या ख़ातिर की जा सकती थी। कुछ दिनों तक वे दोनों इसी गम में घुलते रहे। मजनूं अब आशिक़ाना शेर कह कर अपने दिल की आग बुझाने लगा और उन शेरों में दर्द और दिल की तड़प का ऐसा असर होता था कि सुननेवालों के कलेजे मुँह को आ जाते थे। इश्क अपनी आखिरी हद तक पहुँच चुका था, वह इश्क जो आप अपनी मंजिल हो, वह इश्क जो दोस्त की मुलाक़ात को हदों का पाबंद न हो, उसका अंजाम और क्या हो सकता था। हातिफी कहता है, लैला ने सपना देखा कि

मजनूं मर गया और उसी दिन उसे मारे ग़म और बेचैनी के बुख़ार आ गया। इस बुख़ार की आग ने दिल की जलन के साथ मिलकर उसका काम तमाम कर दिया। उसके मुकाबले में ख़ुसरो की यह रवायत ज्यादा सही मालूम होती है कि एक दिन लैला बेचैन होकर अपनी कुछ सहेलियों के साथ एक बाग़ की तरफ़ निकल गई। घर पर किसी तरह चैन ही न आता था। बाग़ में वह ज़मीन पर बैठी हुई अपने दर्द व गम की दास्तान सुना रही थी कि इसी अर्से में मजनूं के एक हमदर्द और दोस्त उधर आ निकले। जवान लड़कियों का यह जमघट देखा तो लैला को पहचान गये। इस ख़याल से कि देखें मजनूं के पागलपन ने लैला के दिल पर भी कुछ असर किया है या नहीं, आपने मजनूं की एक दर्द-भरी ग़ज़ल गानी शुरू की। लैला ने सुनी तो जिगर के टुकड़े-टुकड़े हो गये। दीवानों की तरह उठी और उस ग़ज़ल गानेवाले के पाँव पर अपने गाल रख दिये और मजनूं की ख़बर पूछी।

जाँ ग़मजदा की तराना रानी
मारा ख़बरे देह अर्तवानी

जिस गम के मारे हुए का यह गीत है, अगर हो सके तो, उसका हाल भी बयान कर।

वह हज़रत इश्क और आशिक़ी के भेदों से वाक़िफ़ न थे, अपनी उसी इम्तहान लेने की धुन में बोले—मजनूं तो चल बसे।

दिल रा ब तू दादा बूद आज़ाद
जाँ नीज बबेदिली ब तू, दाद

उसने दिल तो तुझे आजादी से दे ही दिया था, आख़िरकार जान भी तुझे ही दे दी।

ताज़ीस्त नजर बसूए तू दाश्त
चू मरहमे आर्ज़ूए तू दाश्त

उसने मरते दम तक तेरा रास्ता देखा क्योंकि तू उसकी उम्मीदों का मरहम रखती थी।

लैला यह दिल छेद देनेवाली ख़बर सुनते ही पछाड़ खाकर गिरी और घायल परिन्दे की तरह तड़पने लगी। मियाँ गज़ल गानेवाले बहुत शर्मिन्दा हुए और चाहा कि इस घाव को ख़ुशी की ख़बरों से भर दें—मजनूं अभी जिन्दा है, नज्द में उसकी दर्दभरी आवाज़ अब भी सुनायी दे रही है, मैंने तो परखने के लिए झूठ-मूठ कह दिया था। मगर इन बातों का लैला के दिल पर कुछ असर न हुआ, रूह को ऐसा सदमा पहुँचा कि संभल न सकी। घर पहुँचते-पहुँचते बुख़ार आया

और हालत बिगड़ गई और मौत के लक्षण दिखाई पड़ने लगे। मरते वक्त उसने अपनी माँ को बुलाया और उससे अपनी बेअदबी और अपनी शरारतों की माफ़ी माँगने के बाद यह आख़िरी गुज़ारिश की।

चू अज पये मरक़दे निहानी
पोशी ब लिबासे आँ जहानी

जब तू मुझे क़ब्र में रखने के लिए उस दुनिया का लिबास पहनाये।

अज दामने चाक यारे दिल सोज़
यक पारा बियार ओ दर कफ़न दोज

तो मेरे दिल-जले दोस्त के दामन का एक टुकड़ा भी कफ़न में सी देना।

ता बाखुद अज़ाँ मुसाहिबते पाक
पैवन्दे वफ़ा बरम तहे खाक (खुसरो)

ताकि मैं उस पाक दोस्त के साथ वफ़ादार रहने का रिश्ता ख़ाक में भी ले जाऊँ।

रोज़े कि बक़स्रे जाविदानी
रू आरम अज़ों सराये फ़ानी

जिस दिन कि अपने उस हमेशा क़ायम रहनेवाले महल यानी क़ब्र में इस सराय फ़ानी दुनियाँ से जाऊँ।

आवाज देह आँ असीरे मारा
वाँ कुश्तये ज़ख्मे तीर मारा

तू मेरे उस क़ैदी, मेरे तीर के ज़ख्मी को आवाज देना।

अहवाल मरा चुना के दानी
गोई बतरीके तर्जुमानी

और जैसा कि तू मेरी हालत को जानती है ज्यों की त्यों उससे कह देना।

बरगोई कि शमओ जाँ गुदाज़ाँ
वै चश्मो चिरागे इश्क़बाज़ाँ

और कहना कि ऐ जान पिघलानेवालों के चिराग़, ऐ इश्क़वालों की आँख के नूर,

लैला ज़े ग़मे तू रफ़्त दर खाक
पाक आमद ओ रफ़्त हम चुनाँ पाक

लैला तेरे ग़म में ख़ाक में चली गई। वह जैसी पाक आई थी वैसी ही पाक चली गई।

॥ मजनूँ ॥

संगेश कि बरसरे मजारस्त
अज़ कोहे गमे तू यादगारस्त

वह पत्थर जो उसकी क़ब्र पर है वह तेरे ग़म के पहाड़ की यादगार का एक टुकड़ा है।

मजनूं ने जब यह जान-लेवा ख़बर सुनी तो सर के बाल नोचता, रोता-पीटता लैला के मकान की तरफ़ दौड़ा। उस वक़्त लैला का जनाज़ा जा रहा था। अपने-पराये जनाज़े के पीछे थे। मजनूं जनाज़े के आगे-आगे हो लिया और हँसता, ग़ज़लें गाता चला। मौत की ख़ुशी इसी को कहते हैं।

आशिक़ कि नज़्ज़ारए चुनाँ दीद
बरदाश्त क़दम कि हम इनाँ दीद

आशिक़ ने यह सीन देखा, क़दम उठाये कि अपने दोस्त को साथ देखा।

दर पेशे जनाज़ा रफ़्त ख़न्दाँ
नँ दर्द नँ दाग़े दर्दमन्दाँ

जनाज़े के आगे-आगे हँसता हुआ चला, न अपना ग़म और न ग़म खानेवालों का ख़याल।

नज्म अज सरे वज्द हाल मी ख़ांद
ख़ुश ख़ुश गज़ले विसाल मी ख़ांद

जोश के साथ शेर पढता और बहुत ख़ुश होकर पिया मिलन की गज़ल गाता था।

इस ढंग से वह क़ब्र तक गया। जब रिश्तेदारों ने लैला की लाश क़ब्र में रक्खी तो मजनूं कूदकर अंदर बैठ गया। लोग उसकी इस तहज़ीब के ख़िलाफ़ हरकत पर आग हो गये। तलवारों के वार किये कि छोड़कर भाग जाये मगर वहाँ मजनूं कहाँ था, सिर्फ़ उसकी ख़ाक थी। आख़िर एक दुनिया छाने हुए बुज़ुर्ग ने उन बेग़ैरतों को समझाया।

कीं कार न शहवतो हवाईस्त
सिर्रे ज़े ख़ज़ीनये ख़ुदाईस्त

यह काम झूठे इश्क़ और दिखावे की चाह का नहीं है, यह तो एक भेद है ख़ुदा के ख़ज़ाने का।

वर्ना बहवस कसे न जूयद
कज़ जाने अज़ीज़ दस्त शूयद

वर्ना झूठे इश्क़ में कोई अपनी प्यारी जान से हाथ नहीं धोता।

खुशवक्त कसे के अज दिले पाक
दर राहे वफा चुनी शवद खाक

भाग्यवान है वह आदमी जो पाक दिल के साथ वफा की राह में इस तरह खाक हो जाये।

गर आशिकी ईं मुकाम दारद
तक़वा व जहाँ चे नाम दारद

अगर इश्क यह मुकाम रखता है तो दुनिया में तकवा यानी पाक ज़िन्दगी गुज़ारना और किस चीज़ का नाम है।

ता हर दो न दर मुगाक़ बूदन्द
ज़े आलाइशे नफ्स पाक बूदन्द

यहाँ तक कि दोनों खाक का ढेर ही नहीं हुए बल्कि दिल की सारी गंदगियों से पाक हो गये।

दरहम मी कुनद हाले ज़ेशाँ
दर गर्दने मा ववाल एशाँ

उनसे हमारा हाल परीशान और गर्दन भारी है।

इस तरह इश्क़ की यह अमर कहानी खत्म होती है। इसमें कथा की न मौलिकता है न खयालों को बुलन्दी। मगर मजनूं का कैरेक्टर जैसा कि शायरों ने खींचा है खयाली होने पर भी दिलचस्प है। निज़ामी ने तो इन दोनो प्रेमियो को खुदा के गहरे दोस्तों की महफिल मे बिठाया है और उनका जिक्र बड़े अदब और इज्जत से करते हैं। उनका मजनूं बहुत पाक और ऊँचे कैरेक्टर का आदमी है जिसका इश्क़ बेखोट और दिल की बुराइयों से साफ़-सुथरा है। पागल और मस्त था मगर उसने इंसानियत की हद से बाहर कदम न रक्खा। जब कभी आशिक और माशूक़ मिले है उन्होने इज्जत-आबरू की शर्तों की बडी सख्ती से पाबन्दी की है। अलबत्ता खुसरो ने इस कैरेक्टर को इंसानी कसौटी की तरफ़ खींचा है। इसमें जरा भी शक की गुंजाइश नहीं कि मजनूं शारीरिक प्रेम की मंज़िलें तय करके आध्यात्मिक प्रेम तक पहुँच गया था जहाँ 'मैं' और 'तू' का भेद नहीं रहा।

आँ सालिके इश्क़ कामिले बूद
दीवाना न बूद आक़िले बूद

वह इश्क़ की राह का पहुँचा हुआ मुसाफ़िर था। पागल न था, अक्लवाला था।

दागश न ज़े आतशे फ़तीला
दर्दश न ज़े गुलरुखे कबीला

उसका दाग आग का न था और उसका दर्द यानी इश्क़ फूल जैसी सूरतवालों

से न था।

सरमस्त न अज शराबे अंगूर
दर रक्स न अज सदाये तंबूर

वह अंगूर की शराब से मस्त न था और वह सितार की आवाज़ पर नहीं झूमता था।

बेहोश जे बादये दिगर बूद
अज जामे मुराद बेख़बर बूद

वह किसी और ही शराब से बेहोश था और अपनी मुराद की शराब के प्याले से चूर था।

आँ रफ़अते शाँ कि दाश्त मजनूं
बूद अज दर्जाते अक्ल बेरूँ

मजनूं जो ऊँची शान रखता था वह अक्ल की पहुँच से बाहर है।

प्रेम एक बड़ा कोमल भाव है जो इंसान को नर्मदिल बना देता है। जिस वक्त नूफल लैला के कबीले से लौट रहा था और मजनूं ने मार-काट का बाजार गर्म देखा तो उसका दिल पसीज गया। उसने फ़ौरन लड़ाई बन्द करवा दी। एक बार उसने माली को सरो का पेड़ काटते देखा और उसे अपनी क़ीमती अँगूठी देकर पेड़ को आरे की तकलीफ से बचाया। इसी तरह बहेलिये को कई हिरन जाल में फँसाये लाते देखा और उसे अपना घोड़ा देकर उन बेजबानों की जान बचाई।

गर्दन मजनश कि बेवफा नीस्त
दर गर्दने ऊ रसन रवा नीस्त

उनकी गर्दन न मार क्योंकि वह बेवफ़ा नहीं है और उनकी गर्दन में रस्सी डालना मुनासिब नहीं है।

जब लैला की इब्ने सलाम से शादी हो चुकी थी तो एक दिन मजनूं उसे देखने के शौक़ से बेताब होकर लैला के घर चला आया। लैला ने झरोखे से उसे देखा तो बोली, "तुम इस तरह अपनी जान खतरे में क्यों डालते हो?" मजनूं अपना दुखड़ा रोने लगा कि इतने में इब्ने सलाम को खबर हो गई। भरा बैठा ही था। तलवार लिये गरजता हुआ आ पहुँचा और चाहा कि एक ही वार में पागलपन के साथ सर भी खत्म कर दे। मगर उसका हाथ ऊपर का ऊपर उठा रह गया। दूसरे हाथ में तलवार ली। उसकी भी वही गति हुई। शर्मिन्दा होकर मजनूं के पैरों पर गिर पड़ा और माफी चाही कि मदद कीजिए, मैं तो किसी काम का न रहा। मजनूं ने जवाब दिया—

आजार कर्सां मसाज़ पेशा
काज़ुर्दगीयत रसद हमेशा

लोगों को तकलीफ़ न पहुँचा क्योंकि इससे तुझे हमेशा तकलीफ़ पहुँचती रहेगी।

और वहाँ से चला आया। बंदिश के लिहाज़ से यह दास्तान ज़ुलेखा की दास्तान से ज़्यादा कद्र के काबिल नहीं मगर इसके प्रेम का स्थान बहुत ऊँचा है। प्रेम को असफलता फारसी शायरों का तरीका है और मजनूं से ज़्यादा अच्छी इसकी कोई मिसाल नहीं।

—ज़माना, जनवरी सन् १९१३

पाई जा सकती है। उसकी प्रतिभा कविता की हर शैली या रंग में एक-सी समर्थ है। उसकी नाच-गाने की महफिलें निज़ामी को शर्मिन्दा कर देती हैं और लड़ाई के मैदान में फ़िरदौसी की कल्पना का घोडा भी ऐसी उड़ानें नहीं भरता। सिर्फ 'मेघदूत' में सौन्दर्य और प्रेम, संयोग और वियोग की भावनायें इतनी अधिक मात्रा में मिलती हैं कि उन पर किसी भाषा की कविता को गर्व हो सकता है। उसकी एक एक कल्पना पर काव्यमर्मज्ञ चकित रह जाते हैं। पहले दिल पर एक नर्म असर होता है और फिर फौरन भावो की सूक्ष्मता, विचारों की विविधता और वर्णन के सौन्दर्य को देखकर आश्चर्य होने लगता है। हमारे उर्दू के प्रेमियों ने प्रातः समीर को दूत बनाया। मीर ने सबसे पहले यह सेवा प्रात. समीर को सौंपी और दाग़ को भी इससे अधिक गतिशील और वाणी-निरपेक्ष कोई दूत दिखाई न पड़ा। दो शताब्दियों तक प्रात.समीर ने यह सेवा की और अब भी उसका गला न छूटा। मगर कालिदास ने एक नया दूत ढूँढ निकाला। वह मेघ को अपनी व्यथा की कहानी सुनाता है। ऐसी ही अछूती बातो से उसकी कविता भरपूर है। संस्कृत कवियों का यह एक विशेष गुण है कि वे अपने काव्य मे प्राकृतिक दृश्यो की खूब चाशनी देते हैं। उनकी कवि-कल्पनायें सदाबहार फूलों और पत्तियों से सजी हुई नजर आती हैं। कालिदास में यह गुण अपने चरम उत्कर्ष पर पहुँच गया है। फूल-पत्तियों का जिस खूबसूरती और अछूतेपन से उसने प्रयोग किया है वह संस्कृत मे भी किसी दूसरे कवि को सुलभ नही हुआ। उसकी उपमायें नई-नई कोपलें हैं और रूपक महकते हुए रंग-बिरंगे फूल। यह ठीक है कि उर्दू और फ़ारसी के कवियों ने बेल-बूटो का इस्तेमाल किया है मगर उनके फूल-पत्ते मुर्झाये हुए, बेरंग और बेमज़ा है। उनकी कल्पना की उड़ानें उन्हें आसमान पर उडा ले गईं और वहाँ ज़ोहल व अतारिद, जोहरा व मुश्तरी-जैसे नक्षत्रों से उनका परिचय करा दिया, यहाँ तक कि अब किसी फारसी कसीदे को समझने के लिए ज्योतिष और अंतरिक्ष-विज्ञान का जानना जरूरी है। संस्कृत कविता इतने ऊँचे न उड़ सकी मगर उसने इसी दुनिया की हर चीज़ को खूब गौर से देखा-भाला और उसका अध्ययन किया। वह किसी मीनार की तरह ऊँची नही बल्कि एक हरे-भरे मैदान की तरह फैली हुई है जिसमें हिरन किलोलें करते है, रंग-बिरंगे पंछी चहचहाते हैं, हरियाली लहलहाती है और दर्पन-जैसे पानी के सोते बहते हैं। मतलब यह कि संस्कृत कविता को तीनो लोकों से समान रुचि है। वह जिस दुनिया में पैदा हुई है उसी दुनिया की हर चीज़ से परिचित है और यह सिर्फ शकुन्तला नाटक का पहला पार्ट पढ़ने से इस खूबी के साथ प्रकट हो जाता है जिसे बयान नही किया जा सकता। हिरन और भौंरा, माधवी

कालिदास की कविता

यो तो संस्कृत साहित्य की आज तक थाह नही मिली। एक सागर है कि जितना डूबो उतना ही गहरा मालूम होता है। मगर तीन कवि बहुत प्रसिद्ध हैं— वाल्मीकि, व्यास और कालिदास। इनकी कृतियाँ एक एक युग का संपूर्ण इतिहास हैं और यही उनकी ख्याति का आधार है। वाल्मीकि सबसे पुराने थे। उनकी कविता में कर्तव्य और सच्चाई का रंग प्रधान है। व्यास, जो उनके बाद हुए, अध्यात्म और भक्ति की ओर झुके और कालिदास ने सौन्दर्य और प्रेम को अपना क्षेत्र बनाया। रामायण वाल्मीकि की और महाभारत व्यास की लोकप्रिय पुस्तकें हैं और ये दोनों हिन्दू धर्म का अंग बन गई हैं। मगर कालिदास को हम कुछ भूल-सा गये थे और अगर अंग्रेज़ी विद्वानो और लेखकों ने हमारा मार्ग-दर्शन न किया होता तो हम शायद अब तक इस अमर कवि को गुमनामी के कोने मे पड़ा रहने देते। कालिदास की इस वक्त जो कुछ चर्चा है वह अंग्रेज़ी शिक्षा की देन है। कई शताब्दियों के बाद कालिदास का सितारा चमका है और आज उसके जीवन, युग और कृतियों पर अंग्रेज़ी पत्र-पत्रिकाओं में बहुत खोज और विद्वत्तापूर्ण लेख लिखे जा रहे हैं। हिन्दुस्तान और यूरोप मे एक से उत्साह के साथ उसके संबंध में खोज-बीन की जा रही है, यद्यपि अभी तक प्रामाणिक रूप से उसके जीवन के संबंध में सामग्री प्राप्त नही हुई।

कालिदास की कविता संक्षेप मे कोमल भावनाओं और अलंकृत कल्पनाओं की कविता है। पुराने कवियों की कविता में सादगी और सहजता का रंग विशेष होता है, उपमायें और रूपक सर्वसुलभ, भावनायें सच्ची मगर सादा, वर्णनशैली सरल। और यही कारण है कि साधारण लोगों में पुराने कवियो को जो लोक-प्रियता प्राप्त होती है उस पर बाद के कवि सदा ईर्ष्या किया करते हैं क्योंकि उनकी कविता, जिसे काव्य-रुचि की आवश्यकतायें और युग की परिस्थितियाँ रंगीन, सूक्ष्म और उलझा हुआ बना देती है, साधारण लोगों की समझ से बाहर होती है। मगर बाद के कवियों में अनुकरण, कृत्रिमता और विषयों की दरिद्रता की जो सर्वसामान्य दुर्बलता पाई जाती है कालिदास की कविता उससे बिलकुल अछूती है। रंगीनी और सूक्ष्मता के साथ उनकी कविता में वही सरलता, वही विषयो की नवीनता और वही कल्पनाओं की बाढ़ मौजूद है जो प्राचीन कवियों की कविता में

पाई जा सकती है। उसकी प्रतिभा कविता की हर शैली या रंग में एक-सी समर्थ है। उसकी नाच-गाने की महफिलें निज़ामी को शर्मिन्दा कर देती है और लड़ाई के मैदान में फ़िरदौसी की कल्पना का घोड़ा भी ऐसी उड़ानें नहीं भरता। सिर्फ 'मेघदूत' में सौन्दर्य और प्रेम, संयोग और वियोग की भावनायें इतनी अधिक मात्रा में मिलती हैं कि उन पर किसी भाषा की कविता को गर्व हो सकता है। उसकी एक एक कल्पना पर काव्यमर्मज्ञ चकित रह जाते हैं। पहले दिल पर एक नर्म असर होता है और फिर फौरन भावो की सूक्ष्मता, विचारों की विविधता और वर्णन के सौन्दर्य को देखकर आश्चर्य होने लगता है। हमारे उर्दू के प्रेमियो ने प्रातः समीर को दूत बनाया। मीर ने सबसे पहले यह सेवा प्रात. समीर को सौंपी और दाग को भी इससे अधिक गतिशील और वाणी-निरपेक्ष कोई दूत दिखाई न पड़ा। दो शताब्दियों तक प्रातःसमीर ने यह सेवा की और अब भी उसका गला न छूटा। मगर कालिदास ने एक नया दूत ढूंढ निकाला। वह मेघ को अपनी व्यथा की कहानी सुनाता है। ऐसी ही अछूती बातो से उसकी कविता भरपूर है। संस्कृत कवियों का यह एक विशेष गुण है कि वे अपने काव्य में प्राकृतिक दृश्यो को खूब चाशनी देते हैं। उनकी कवि-कल्पनायें सदावहार फूलो और पत्तियों से सजी हुई नज़र आती है। कालिदास में यह गुण अपने चरम उत्कर्ष पर पहुँच गया है। फूल-पत्तियों का जिस खूबसूरती और अछूतेपन से उसने प्रयोग किया है वह संस्कृत में भी किसी दूसरे कवि को सुलभ नही हुआ। उसकी उपमायें नई-नई कोंपलें है और रूपक महकते हुए रंग-बिरंगे फूल। यह ठीक है कि उर्दू और फ़ारसी के कवियो ने बेल-बूटों का इस्तेमाल किया है मगर उनके फूल-पत्ते मुर्झाये हुए, बेरंग और बेमज़ा है। उनकी कल्पना की उड़ानें उन्हे आसमान पर उड़ा ले गई और वहाँ ज़ोहल व अतारिद, जोहरा व मुश्तरी-जैसे नक्षत्रों से उनका परिचय करा दिया, यहाँ तक कि अब किसी फ़ारसी क़सीदे को समझने के लिए ज्योतिष और अंतरिक्ष-विज्ञान का जानना जरूरी है। संस्कृत कविता इतने ऊँचे न उड़ सकी मगर उसने इसी दुनिया की हर चीज़ को खूब गौर से देखा-भाला और उसका अध्ययन किया। वह किसी मीनार की तरह ऊँची नही बल्कि एक हरे-भरे मैदान की तरह फैली हुई है जिसमे हिरन किलोलें करते है, रंग-बिरंगे पंछी चहचहाते है, हरियाली लहलहाती है और दर्पन-जैसे पानी के सोते बहते हैं। मतलब यह कि संस्कृत कविता को तीनो लोकों से समान रुचि है। वह जिस दुनिया में पैदा हुई है उसी दुनिया की हर चीज़ से परिचित है और यह सिर्फ शकुन्तला नाटक का पहला पार्ट पढने से इस खूबी के साथ प्रकट हो जाता है जिसे बयान नही किया जा सकता। हिरन और भौरा, माधवी

कालिदास की कविता

यों तो संस्कृत साहित्य की आज तक थाह नहीं मिली। एक सागर है कि जितना डूबो उतना ही गहरा मालूम होता है। मगर तीन कवि बहुत प्रसिद्ध हैं—वाल्मीकि, व्यास और कालिदास। इनकी कृतियाँ एक एक युग का संपूर्ण इतिहास है और यही उनकी ख्याति का आधार है। वाल्मीकि सबसे पुराने थे। उनकी कविता मे कर्तव्य और सच्चाई का रंग प्रधान है। व्यास, जो उनके बाद हुए, अध्यात्म और भक्ति की ओर झुके और कालिदास ने सौन्दर्य और प्रेम को अपना क्षेत्र बनाया। रामायण वाल्मीकि की और महाभारत व्यास की लोकप्रिय पुस्तकें हैं और ये दोनों हिन्दू धर्म का अंग बन गई हैं। मगर कालिदास को हम कुछ भूल-सा गये थे और अगर अंग्रेजी विद्वानो और लेखकों ने हमारा मार्ग-दर्शन न किया होता तो हम शायद अब तक इस अमर कवि को गुमनामी के कोने में पड़ा रहने देते। कालिदास की इस वक्त जो कुछ चर्चा है वह अंग्रेजी शिक्षा की देन है। कई शताब्दियों के बाद कालिदास का सितारा चमका है और आज उसके जीवन, युग और कृतियों पर अंग्रेजी पत्र-पत्रिकाओं में बहुत खोज और विद्वत्तापूर्ण लेख लिखे जा रहे है। हिन्दुस्तान और यूरोप मे एक से उत्साह के साथ उसके संबंध मे खोज-बीन की जा रही है, यद्यपि अभी तक प्रामाणिक रूप से उसके जीवन के संबंध मे सामग्री प्राप्त नही हुई।

कालिदास की कविता संक्षेप मे कोमल भावनाओं और अलंकृत कल्पनाओं की कविता है। पुराने कवियों की कविता में सादगी और सहजता का रंग विशेष होता है, उपमायें और रूपक सर्वसुलभ, भावनायें सच्ची मगर सादा, वर्णनशैली सरल। और यही कारण है कि साधारण लोगों में पुराने कवियों को जो लोक-प्रियता प्राप्त होती है उस पर बाद के कवि सदा ईर्ष्या किया करते है क्योंकि उनकी कविता, जिसे काव्य-रुचि की आवश्यकतायें और युग की परिस्थितियाँ रंगीन, सूक्ष्म और उलझा हुआ बना देती है, साधारण लोगों की समझ से बाहर होती है। मगर बाद के कवियों में अनुकरण, कृत्रिमता और विषयों की दरिद्रता की जो सर्वसामान्य दुर्बलता पाई जाती है कालिदास की कविता उससे बिलकुल अछूती है। रंगीनी और सूक्ष्मता के साथ उनकी कविता में वही सरलता, वही विषयों की नवीनता और वही कल्पनाओं की बाढ़ मौजूद है जो प्राचीन कवियों की कविता में

पाई जा सकती है। उसकी प्रतिभा कविता की हर शैली या रंग में एक-सी समर्थ है। उसकी नाच-गाने की महफ़िलें निज़ामी को शर्मिन्दा कर देती है और लड़ाई के मैदान में फ़िरदौसी की कल्पना का घोड़ा भी ऐसी उड़ानें नही भरता। सिर्फ़ 'मेघदूत' में सौन्दर्य और प्रेम, संयोग और वियोग की भावनायें इतनी अधिक मात्रा में मिलती है कि उन पर किसी भाषा की कविता को गर्व हो सकता है। उसकी एक एक कल्पना पर काव्यमर्मज्ञ चकित रह जाते हैं। पहले दिल पर एक नर्म असर होता है और फिर फौरन भावों की सूक्ष्मता, विचारों की विविधता और
ौन्दर्य को देखकर आश्चर्य होने लगता है। हमारे उर्दू के प्रेमियो ने
को दूत बनाया। मीर ने सबसे पहले यह सेवा प्रात. समीर को
को भी इससे अधिक गतिशील और वाणी-निरपेक्ष कोई दूत दिखाई
ों तक प्रातःसमीर ने यह सेवा की और अब भी उसका
कालिदास ने एक नया दूत ढूंढ़ निकाला। वह मेघ को अपनी
ा है। ऐसी ही अछूती बातों से उसकी कविता भरपूर
यह एक विशेष गुण है कि वे अपने काव्य मे प्राकृतिक
े है। उनकी कवि-कल्पनायें सदाबहार फूलों और पत्तियों
है। कालिदास में यह गुण अपने चरम उत्कर्ष पर पहुँच
। जिस खूबसूरती और अछूतेपन से उसने प्रयोग किया
ो दूसरे कवि को सुलभ नही हुआ। उसकी उपमायें
महकते हुए रंग-बिरंगे फूल। यह ठीक है कि उर्दू
बेल-बूटों का इस्तेमाल किया है मगर उनके फूल-पत्ते
बेमज़ा है। उनकी कल्पना की उड़ानें उन्हें आसमान
ज़ोहल व अतारिद, जोहरा व मुश्तरी-जैसे नक्षत्रों से
, यहाँ तक कि अब किसी फ़ारसी कसीदे को समझने
रिक्ष-विज्ञान का जानना ज़रूरी है। संस्कृत कविता
र उसने इसी दुनिया की हर चीज़ को खूब गौर से
अध्ययन किया। वह किसी मीनार की तरह ऊँची
मैदान की तरह फैली हुई है जिसमे हिरन किलोलें
चहचहाते है, हरियाली लहलहाती है और दर्पन-जैसे
ब यह कि संस्कृत कविता को तीनों लोकों से समान
में पैदा हुई है उसी दुनिया की हर चीज से परिचित
नाटक का पहला पार्ट पढ़ने से इस खूबी के साथ
ी किया जा सकता। हिरन और भौरा, माधवो

ास की कविता ॥

कालिदास की कविता

यों तो संस्कृत साहित्य की आज तक थाह नहीं मिली। एक सागर है कि जितना डूबो उतना ही गहरा मालूम होता है। मगर तीन कवि बहुत प्रसिद्ध हैं— वाल्मीकि, व्यास और कालिदास। इनकी कृतियाँ एक एक युग का संपूर्ण इतिहास है और यही उनकी ख्याति का आधार है। वाल्मीकि सबसे पुराने थे। उनकी कविता में कर्तव्य और सच्चाई का रंग प्रधान है। व्यास, जो उनके बाद हुए, अध्यात्म और भक्ति की ओर झुके और कालिदास ने सौन्दर्य और प्रेम को अपना क्षेत्र बनाया। रामायण वाल्मीकि की और महाभारत व्यास की लोकप्रिय पुस्तकें हैं और ये दोनों हिन्दू धर्म का अंग बन गई हैं। मगर कालिदास को हम कुछ भूल-सा गये थे और अगर अंग्रेज़ी विद्वानों और लेखकों ने हमारा मार्ग-दर्शन न किया होता तो हम शायद अब तक इस अमर कवि को गुमनामी के कोने में पड़ा रहने देते। कालिदास की इस वक़्त जो कुछ चर्चा है वह अंग्रेज़ी शिक्षा की देन है। कई शताब्दियों के बाद कालिदास का सितारा चमका है और आज उसके जीवन, युग और कृतियों पर अंग्रेज़ी पत्र-पत्रिकाओं में बहुत खोज और विद्वत्तापूर्ण लेख लिखे जा रहे हैं। हिन्दुस्तान और यूरोप में एक से उत्साह के साथ उसके संबंध में खोज-बीन की जा रही है, यद्यपि अभी तक प्रामाणिक रूप से उसके जीवन के संबंध में सामग्री प्राप्त नहीं हुई।

कालिदास की कविता संक्षेप में कोमल भावनाओं और अलंकृत कल्पनाओं की कविता है। पुराने कवियों की कविता में सादगी और सहजता का रंग विशेष होता है, उपमायें और रूपक सर्वसुलभ, भावनायें सच्ची मगर सादा, वर्णनशैली सरल। और यही कारण है कि साधारण लोगों में पुराने कवियों को जो लोकप्रियता प्राप्त होती है उस पर बाद के कवि सदा ईर्ष्या किया करते हैं क्योंकि उनकी कविता, जिसे काव्य-रुचि की आवश्यकतायें और युग की परिस्थितियाँ रंगीन, सूक्ष्म और उलझा हुआ बना देती हैं, साधारण लोगों की समझ से बाहर होती है। मगर बाद के कवियों में अनुकरण, कृत्रिमता और विषयों की दरिद्रता की जो सर्वसामान्य दुर्बलता पाई जाती है कालिदास की कविता उससे बिलकुल अछूती है। रंगीनी और सूक्ष्मता के साथ उनकी कविता में वही सरलता, वही विषयों की नवीनता और वही कल्पनाओं की बाढ़ मौजूद है जो प्राचीन कवियों की कविता में

पाई जा सकती है। उसकी प्रतिभा कविता की हर शैली या रंग में एक-सी समर्थ है। उसको नाच-गाने की महफ़िलें निज़ामी को शर्मिन्दा कर देती है और लड़ाई के मैदान में फ़िरदौसी की कल्पना का घोड़ा भी ऐसी उडानें नही भरता। सिर्फ़ 'मेघदूत' में सौन्दर्य और प्रेम, संयोग और वियोग की भावनायें इतनी अधिक मात्रा में मिलती हैं कि उन पर किसी भाषा की कविता को गर्व हो सकता है। उसकी एक एक कल्पना पर काव्यमर्मज्ञ चकित रह जाते हैं। पहले दिल पर एक नर्म असर होता है और फिर फौरन भावो की सूक्ष्मता, विचारो की विविधता और वर्णन के सौन्दर्य को देखकर आश्चर्य होने लगता है। हमारे उर्दू के प्रेमियों ने प्रातः समीर को दूत बनाया। मीर ने सबसे पहले यह सेवा प्रातः समीर को सौंपी और दाग़ को भी इससे अधिक गतिशील और वाणी-निरपेक्ष कोई दूत दिखाई न पड़ा। दो शताब्दियों तक प्रातःसमीर ने यह सेवा की और अब भी उसका गला न छूटा। मगर कालिदास ने एक नया दूत ढूँढ निकाला। वह मेघ को अपनी व्यथा की कहानी सुनाता है। ऐसी ही अछूती बातों से उसकी कविता भरपूर है। संस्कृत कवियो का यह एक विशेष गुण है कि वे अपने काव्य में प्राकृतिक दृश्यों की खूब चाशनी देते हैं। उनकी कवि-कल्पनायें सदाबहार फूलों और पत्तियो से सजी हुई नजर आती हैं। कालिदास में यह गुण अपने चरम उत्कर्ष पर पहुँच गया है। फूल-पत्तियो का जिस खूबसूरती और अछूतेपन से उसने प्रयोग किया है वह संस्कृत में भी किसी दूसरे कवि को सुलभ नही हुआ। उसकी उपमायें नई-नई कोंपलें है और रूपक महकते हुए रंग-बिरंगे फूल। यह ठीक है कि उर्दू और फ़ारसी के कवियो ने बेल-बूटो का इस्तेमाल किया है मगर उनके फूल-पत्ते मुर्झाये हुए, बेरंग और बेमज़ा है। उनकी कल्पना की उड़ानें उन्हे आसमान पर उडा ले गई और वहाँ जोहल व अतारिद, जोहरा व मुश्तरी-जैसे नक्षत्रो से उनका परिचय करा दिया, यहाँ तक कि अब किसी फारसी कसीदे को समझने के लिए ज्योतिष और अंतरिक्ष-विज्ञान का जानना जरूरी है। संस्कृत कविता इतने ऊँचे न उड़ सकी मगर उसने इसी दुनिया की हर चीज को खूब ग़ौर से देखा-भाला और उसका अध्ययन किया। वह किसी मीनार की तरह ऊँची नही बल्कि एक हरे-भरे मैदान की तरह फैली हुई है जिसमें हिरन किलोलें करते है, रंग-बिरंगे पंछी चहचहाते है, हरियाली लहलहाती है और दर्पन-जैसे पानी के सोते बहते हैं। मतलब यह कि संस्कृत कविता को तीनो लोको से समान रुचि है। वह जिस दुनिया मे पैदा हुई है उसी दुनिया की हर चीज से परिचित है और यह सिर्फ शकुन्तला नाटक का पहला पार्ट पढने से इस खूबी के साथ प्रकट हो जाता है जिसे बयान नही किया जा सकता। हिरन और भौरा, माधवो

और केतकी, कदम्ब और नीम, ये सब हमारे सामने आते हैं, बेजान चीजों की तरह नहीं, कवि ने उनमें एक जान डाल दी है, उन सब में प्रकृति की संवेदना का समान अंश है। इसी सीन को पढ़कर प्रसिद्ध कवि गेटे विभोर हो गया था, और वह भी केवल अंग्रेजी अनुवाद के अध्ययन से। और अब इस बात को सिद्ध करने के लिए ज़्यादा दलीलों की जरूरत नहीं है कि वह नशे का सा असर जो संस्कृत कविता हमारे दिलों पर पैदा करती है, किसी दूसरी भाषा की कविता के सामर्थ्य से परे है, विशेषतया उर्दू कविता के जिसकी उपमा उन पौधों से दी जा सकती है जो अक्सर बाग़ों में बनावटी जिन्दगी बसर करते नज़र आते हैं, मुर्झाये हुए पत्ते, निर्जीव पीला रंग, सिमटी हुई शाखें, न फल न फूल। फ़ारस का पौधा हिन्दुस्तान में लगाया गया, न वह जमीन न वह आबहवा, न देखने से आँखों को ताज़गी होती है न दिल को खुशी। जहाँ तक उपमाओं और दृश्य-चित्रण का संबंध है उर्दू कविता बड़ी हद तक कृत्रिमता और अवास्तविकता की एक पिटारी है। संस्कृत कवियों के दृश्य और भावनायें सब इसी धरती की हवा-पानी से बनी हैं और यही उनकी प्रभावोत्पादकता का रहस्य है। देखिये कालिदास वर्षा ऋतु में शहद की मक्खियों का शहद जमा करना किस नर्मी और खूबसूरती से दिखाता है :

तलाशे शहद में हैं मक्खियाँ सुबुक परवाज़
मगर मिज़ाज में ये सादगी के हैं अंदाज़
कि नाचते कहीं आते हैं जब नजर ताऊस
फ़िज़ाये दश्त में फैलाये बाल-ओ-पर ताऊस
तराने गाती हुई जब क़रीब आती हैं
कँवल के फूलों के धोखे में बैठ जाती हैं।
महक रही है हवा केतकी के फूलों से
बसी हुई है सबा केलकी के फूलों से
हर एक रविश पे है जमघट परीजमालों का
अजब बनाव है फूलों के गहनेवालों का
चमन में करती हुई सुब्हदम गुलअफ़शानी
लचक लचक के है पौदों को दे रही पानी
कहीं कदम के दरख़्तों पर छा रही है बहार
हरे हरे किसी जानिब हैं नीम के अशजार

सरो, शमशाद और सनोबर के मुकाबले में कदम्ब और नीम और केतकी कैसे अपने जान पड़ते हैं।

कविता की इन खूबियों के अलावा कालिदास ने मानव चरित्र को भी बड़ी गहरी आँखों से देखा था। मानव-स्वभाव के उलट-फेर का उसे पूरा ज्ञान था। किन बातों से आदमी के दिल में कैसी भावनायें और विचार पैदा होते हैं वे उसने आश्चर्यजनक वास्तविकता के साथ दिखलाये हैं। उसके नाटक मानव चरित्र के चित्र हैं जिनके अंग-प्रत्यंग के संतुलन, रंगों की उपयुक्तता और चेहरे-मोहरे की सुघरता की तारीफ़ पूरी तरह नहीं की जा सकती। और इश्क़ की घातें और मुहब्बत के इशारे तो उसने ऐसी नज़ाकत से दिखाये हैं जो काव्य-रसिकों को मुग्ध कर देते हैं। इस रंग में न कोई उसका प्रतिद्वन्दी है न उसकी बराबरी का दावा करनेवाला और वह इस रंग का उस्ताद है, गोकि यह सच है कि कभी-कभी उसका क़लम अपनी शोखी में हद से आगे बढ़ गया है क्योंकि वह स्वच्छन्द स्वभाव का आदमी था। मगर इसमें कोई संदेह नहीं कि उसने दाम्पत्य ही को प्रेम की सबसे ऊँची कसौटी माना है। 'मेघदूत' में विरही यक्ष जिस प्रेमिका की याद में तड़पा है वह उसकी पत्नी थी। 'ऋतुसंहार' में भी जहाँ-तहाँ इसके संकेत हैं :

> वो महवशें जो बदलती हैं करवटें शब भर
> रुला रही है लहू जिनको दूरिये शौहर
> बरस रही है उदासी अब उनकी सूरत पर
> जिगर की आग कयामत है इक क़यामत पर

कालिदास आमतौर पर हिन्दुस्तान का शेक्सपियर कहा जाता है और इसमें तनिक भी अत्युक्ति नहीं। दुनिया में सिर्फ़ शेक्सपियर ही ऐसा कवि है जिसकी उससे तुलना की जा सकती है। दोनो नाटककार हैं, दोनो मानव-हृदय के ममज्ञ। उनकी कल्पनाएँ उनकी बंदिशें बहुत जगहों पर लड़ गई हैं। एक ही कवि-मन प्रकृति की ओर से दोनों को मिला था। किसी चीज़ को जिस निगाह से शेक्सपियर देखता है उसी निगाह से कालिदास भी उसे देखता है। व्यथा और शोक, निराशा और प्रतिशोध, प्रेम और वियोग में आदमी के दिल में कैसी भावनायें लहरें मारती हैं, इसको जिस खूबी से शेक्सपियर ने दिखाया है, उसी रंगीनी के साथ कालिदास ने भी दिखाया है। शेक्सपियर के जितने कैरेक्टर हैं वह सब एक दूसरे से भिन्न हैं। हर एक में कोई न कोई अपनी विशेषता है। कालिदास के कैरेक्टरों की भी यही स्थिति है। शेक्सपियर के मैकबेथ, ओथेलो, रोमियो, जूलियट की तस्वीरों को कालिदास के दुष्यंत, शकुन्तला, प्रियंवदा की तस्वीरों के मुकाबले में रखने से साफ़ मालूम हो जाता है कि इन दोनों कवियों को मनुष्य की प्रकृति का कैसा ज्ञान था। शेक्सपियर और कालिदास में अगर कुछ अंतर है

तो यह है कि शेक्सपियर को मानव-चरित्र के चमत्कार दिखाने में अधिक कौशल है और कालिदास को प्रकृति के चित्रण में। शेक्सपियर को मानव-स्वभाव के भीतर जो पहुँच थी वही कालिदास को प्रकृति के चमत्कारों में थी। इसीलिए *शेक्सपियर का साहित्य गंभीर है और कालिदास का रंगीन।* *शेक्सपियर जिस* तरह अपने पहले और बाद के कवियों से बड़ा है उसी तरह कालिदास के साहित्य की रंगीनी और नर्मी संस्कृत में बेजोड़ है।

कालिदास की कविताओं और नाटकों से प्रकट होता है कि वह काव्य-शिल्प और पिंगल आदि के ज्ञान के अलावा विभिन्न शास्त्रों और कलाओं में भी सिद्ध थे। उनके साहित्य में जगह-जगह दार्शनिक विचार बिखरे पड़े हैं जिनसे सिद्ध होता है कि वह सांख्यदर्शन और योग पर अधिकार रखते थे। वह शिव के उपासक थे मगर उनका विचार वेदांत की ओर झुका हुआ था। आत्मा और परमात्मा, शरीर और प्राण, माया और संसार आदि पेचीदा आध्यात्मिक प्रश्नों पर उन्होंने अपने साहित्य में बड़ी स्वतंत्रता के साथ विचार किया है। ज्योतिष की इस युग में बड़ी चर्चा थी। उज्जैन इस विद्या का उन दिनों केन्द्र था। वराह-मिहिर, जो बड़ा प्रसिद्ध ज्योतिषी हुआ है, कालिदास के मित्रों में था और इसमें अब कोई संदेह नहीं हो सकता कि कालिदास को इस विद्या का प्रकांड ज्ञान था। उन्होंने खुद ज्योतिष पर एक मार्के की किताब लिखी है जो आज तक चलती है। उनका भौगोलिक ज्ञान भी बहुत विस्तृत था। उन्होंने हिन्दुस्तान के हर कोने में सफ़र किया था। मेघदूत में उनके भौगोलिक ज्ञान का काफ़ी प्रमाण मिलता है। जहाँ कहीं समुद्री दृश्य चित्रित किये हैं उनसे यह सिद्ध होता है कि वह किसी आँखों-देखे दृश्य की तस्वीर खींच रहे हैं। प्रकृति-विज्ञान में भी उनकी दृष्टि गहरी और ठीक थी। ज्वार-भाटा, तूफ़ान, चंद्र-और सूर्य-ग्रहण आदि प्रकृति के चमत्कारों के संबंध में उन्होंने जो चर्चा की है, उनसे मालूम होता है कि उनके बारे में उन्हें वही ज्ञान था जिस पर आज के वैज्ञानिक एकमत हैं। और राजनीति के तो वे जैसे एक सागर थे। 'रघुवंश' में शुरू से आखिर तक राजाओं ही का जिक्र है। इसमें सैकड़ों ऐसे प्रसंग हैं जिनसे पता चलता है कि उन्हें राजनीति का पूरा ज्ञान था। राजा किसे कहते हैं ? उसका क्या धर्म है ? प्रजा के साथ उसका कैसा बर्ताव होना चाहिये ? प्रजा के उस पर क्या अधिकार हैं ? इन बातों को जैसा कुछ कालिदास समझते थे शायद आज ब ड़े बड़े बादशाहों को भी वह ज्ञान न होगा। कहने का मतलब यह कि कालिदास एक अत्यंत गुणी व्यक्ति, सिद्धहस्त कवि और ज्ञान का सागर था। उसकी बुद्धि के विस्तार पर हमको आश्चर्य होता है। उपमाओं में दुनिया का कोई कवि उससे आगे नहीं

मिला सकता। उसकी उपमायें ऐसी उपयुक्त, ऐसी सटीक, ऐसी सजीव हैं कि अगर उन्हें श्लोक में से निकाल दीजिये तो श्लोक बिलकुल नीरस और फीका हो जाता है। प्रकृति का कोई ऐसा चमत्कार नहीं जिससे उसने उपमा न ली हो। यह ठीक है कि हिन्दुस्तान को उसकी जन्मभूमि होने का गौरव प्राप्त है मगर सच तो यह है कि वह हिन्दुस्तान का नही बल्कि सारी दुनिया का कवि है। हिन्दुस्तानियों को उसके काव्य से जो आनंद प्राप्त हो सकता है वही किसी दूसरे देश के आदमी को हासिल हो सकता है। उसके लिए दुनिया कविता की एक पिटारी थी। जिस चीज पर निगाह डाली है उसे अपनी कविता का आभूषण बना लिया है। वेद, पुराण, इतिहास, दर्शन आदि विधायें जिन्हें कवि रूखा-सूखा समझते थे और जिनका कविता से कोई सम्बन्ध नहीं बतलाया जाता वह कालिदास की कविता के अहाते में आकर कुछ और ही रंग-रूप अख्तियार कर लेती है। पदार्थ जगत् को कविता के आभूषण से सजानेवाला, ठूंठ पेडों और वीरान खँडहरों मे वह मजा पैदा करनेवाला जो हरे-भरे पेडो और सजे हुए महलों से न मिल सके, ऐसा समर्थ कवि दुनिया में दूसरा नही पैदा हुआ और जब तक कविता के मर्मज्ञ और सौन्दर्य-रसिक बाकी रहेंगे तब तक कालिदास का नाम क़ायम रहेगा। वह संस्कृत कविता का पूरनम का चांद है और जिस व्यक्ति में कविता की जितनी ही रुचि और सच्ची परख है वह कालिदास की कविता से उतना ही आनन्द उठा सकता है।

कालिदास की कृतियाँ, जिनका अब तक पता चला है, संख्या में सोलह हैं मगर उनकी ख्याति और लोकप्रियता जिन पुस्तकों पर आधारित है वे सात से ज्यादा नही, और इन सातो में कोई एक पुस्तक भी उसकी अमरता के लिए काफी है। इन सात तारो के चार अग चार काव्य हैं—१) रघुवंश २) कुमार संभव ३) मेघदूत ४) ऋतु संहार। और बाक़ी तीन वे नाटक हैं जिन्होने कलाविदों को आश्चर्य मे डाल दिया है—१) शकुन्तला २) विक्रमोर्वशी ३) मालविकाग्निमित्र। सभ्य संसार में इन पुस्तकों को जो कीर्ति मिली है वह शायद ही किसी दूसरे कवि को नसीब हुई हो। यूरोप की अधिकाश भाषाओं में उनका अनुवाद हो जाना, उनकी लोकप्रियता का सशक्त प्रमाण है। हिन्दुस्तान की लगभग सब भाषाओं में भी उनके अनुवाद हो गये हैं। नाटकों की लोक-प्रियता का हाल यह है कि वे यूरोप और अमरीका के थियेटरो मे खेले जा चुके हैं और कालिदास की रचनाओं की थोड़ी-बहुत जानकारी रखना सभ्य कहलाने के लिए ज़रूरी होगया है। आज हिन्दुस्तान के चित्रकार कालिदास के कैरेक्टरो और दृश्यों को खीचना अपनी कला का उत्कर्ष समझते हैं। राजा रवि वर्मा का चित्र 'शकुन्तला-पत्र-लेखन' स्वयं सौन्दर्य और प्रेम की एक दुनिया है, जहाँ प्रकृति ने वेदना के मधुर और

मोहक साधन एकत्र कर दिये हैं। ऐसी ही कल्पनाओं और दृश्यों से कालिदास की कविता भरी हुई है। नाटकों में प्रथम दो का अनुवाद उर्दू भाषा में भी हो गया है। 'शकुन्तला' का अनुवाद स्वर्गीय राजा शिव प्रसाद ने किया था और 'विक्रमोर्वशी' का कुछ साल पहले मौलवी मोहम्मद अज़ीज़ मिर्ज़ा साहब ने। 'शकुन्तला' का अनुवाद मूल संस्कृत से किया गया है और इसलिए मूल का रस कुछ बाकी है। 'विक्रमोर्वशी' शायद अंग्रेज़ी से उर्दू मे आई है इसलिए मूल का आनंद उसमे न पैदा हो सका। तब भी काफ़ी ग़नीमत है। मगर चारों काव्यों में से एक का अनुवाद भी उर्दू में अब तक नही हुआ। इस कमी की शिकायत मुसलमान साहित्यकारो से नही; मगर हिन्दू सज्जनो के लिए यह बडी लज्जा की बात है। कितने ही हिन्दू लोग है जिनमे कविता की रुचि है, जो गज़ले और कसीदे लिखते हैं और गुल-ओ-बुलबुल के झगड़ो मे सर खपाते है मगर इतना न हुआ कि संस्कृत कवियों को कविता से जाति और भाषा को लाभ पहुँचायें। उर्दू शेरोसुखन का चर्चा ज्यादातर कायस्थों और कश्मीरियों मे है और ये दोनों सम्प्रदाय अब तक आमतौर पर संस्कृत के अध्ययन से अलग-थलग हैं। मगर अब चूंकि संस्कृत की ओर रुझान होने लगा है इससे उम्मीद की जाती है कि शायद कुछ दिनों में हम रघुवंश, मेघदूत और कुमारसभव को उर्दू भाषा में पढ़ सकें। रहा 'ऋतुसंहार' उसका अनुवाद मिस्टर शाकिर की मदद से स्वर्गीय सुरूर साहब ने किया है और अधिकांश ऋतुओं की कवितायें 'ज़माना' के पाठको के सामने पेश हो चुकी हैं।

हम लिख चुके है कि 'ऋतु-संहार' कालिदास के चार सर्वश्रेष्ठ काव्यो में से एक है। इसमें कवि ने हिन्दुस्तान की छः ऋतुओं के दृश्य और उनके परिवर्तनो और उनसे पैदा होनेवाली भावनाओ और विचारों को बहुत ही सुन्दर ढंग से बयान किया है। चूंकि उर्दू-फ़ारसी में तीन ही मौसम माने गये हैं इसलिए मुनासिब मालूम होता है कि इन छहो ऋतुओं को यहाँ स्पष्ट कर दिया जाय—

क्रमांक	ऋतु का नाम	हिन्दी महीने	अंग्रेजी महीने
१—	ग्रीष्म	जेठ-असाढ़	जून-जुलाई
२—	वर्षा	सावन-भादों	अगस्त-सितम्बर
३—	शरद	कुआर-कातिक	अक्टूबर-नवम्बर
४—	हेमन्त	अगहन-पूस	दिसम्बर-जनवरी
५—	शिशिर	माघ-फागुन	फरवरी-मार्च
६—	बसन्त	चैत-बैसाख	अप्रैल-मई

उर्दू-फ़ारसी कवियों ने मौसमी भावनाओं को सिर्फ़ उसी हद तक अपने शेरों में दख़ल दिया है जहाँ तक कि बसंत और पतझड़ का सम्बन्ध है, यहाँ तक कि पतझड़ और वसंत भी केवल रूपक है। ख़ुशी के दिनों और ग़म के दिनों के लिए। हाँ, काले बादलों को देखकर कभी कभी साक़ी की याद आ जाती है:

तुंद ओ पुरशोर सियह मस्त ज़े कोहसार आमद
साक़िया मुजदा के अब्र आमद ओ बिसियार आमद

हिन्दुस्तान मे मौसमी भावनायें हमारे सामाजिक जीवन में दाख़िल हो गई हैं। हमेशा से उनकी अभिव्यक्ति होती आई है। वर्षा ऋतु आई और घरो में झूले पड़ गये, सावन और मल्हार की तानें गूँजने लगी, लड़कियो ने हाथ-पाँव मे मेंहदी रचाई, प्यार के दर्द भरे भाव ने दिलों को बेचैन करना शुरू किया, यहाँ तक कि गलियो और बाजारो मे जहाँ-तहाँ इसकी आवाजें सुनाई देने लगीं। संस्कृत कवियों ने वसंत को ऋतुराज या मौसमों का राजा माना है। पेड़ों में नई नई कोंपलें निकली, आम की बौर की महक से हवा सुगन्धित हो गई, खलिहानों में सुनहरी बालों के ढेर लग गये, कोयल आम की डाली पर बैठकर कूकने लगी, प्रेमी जनों को रोने की सूझी, उत्सुकता ने दिलो को गुदगुदाया, प्रेमिकायें अपना रूठना भूल गईं, बसंत की सुहानी पुकार कानो मे आयी:

आयी वसंत बहार बलम घर न आये सखी

. कालिदास ने ऋतुओं के इन्ही दृश्यों को अपनी चमत्कारिक लेखनी से अंकित किया है और इस खूबी से अंकित किया है कि हर एक मौसम का समाँ आँखो मे फिर जाता है। खास तौर पर बसंत ऋतु का वर्णन ऐसा सरस, ऐसा यथार्थ और सुकुमार भावनाओं से ऐसा अलंकृत है कि उसकी तारीफ़ नही की जा सकती:

फूल खिलते हैं जो टेसू के बियाबानों में
जान पड़ जाती है उश्शाक़ के अरमानों में
आते हैं रूप पे आमो के इसी रुत में शजर
कोयल आती है इसी रुत में दरख़्तों पे नजर
छेड़ती है लबे जू आके तराना अपना
सारे आलम को सुनाती है फ़साना अपना
भौंरे फूलो पे है सरमस्त मये जोशे बहार
झूमते हैं असरे बादे सबा में अशजार
चुटकियाँ लेती है रह रहके उमंगें दिल में
नशए शौक़ की उठती है तरंगें दिल मे

कालिदास की अन्य कृतियों की तरह 'ऋतुसंहार' का अनुवाद भी योरप को

अधिकांश भाषाओं में हो गया है। हिन्दी भाषा में लाला सीताराम साहब और
राजकुमार बाबू देवकीनन्दन साहब ने उनका पद्यबद्ध अनुवाद किया है। कुछ
समय हुआ बंगाल के प्रसिद्ध चित्रकार बाबू अवनीन्द्रनाथ ठाकुर ने 'ऋतु-संहार'
के मौसमी दृश्यों की तस्वीरें खीची थी जो बहुत पसंद की गईं। इनके अलावा
बंबई के प्रसिद्ध चित्रकार मिस्टर धुरन्धर ने भी 'ऋतु-संहार' से सम्बद्ध छः
तस्वीरें खीची हैं जो देखने योग्य हैं। योरोपियन कलामर्मज्ञ इस छोटे से किन्तु
मार्मिक काव्य को बड़ी प्रशंसा की आँखों से देखते हैं। जाना-माना इतिहासकार
एलफिन्सटन कहता है :

'भावनाओं को अंकित करने के साथ-साथ यह कवि उन तमाम स्थितियों
का चित्र खींच देता है जो उन भावनाओं के प्रेरक हुए और दृश्यों की खूबियाँ
और उनके आकर्षण ऐसे जादू-भरे शब्दों में बयान करता है कि वह आदमी भी
जो इन पौधों और जानवरों से अपरिचित हो हिन्दुस्तानी दृश्य का खाका अपने
दिल में कायम कर सकता है।'

प्राच्यविदों का शिरोमणि मोनियर विलियम्स लिखता है :

'इस काव्य का एक-एक श्लोक किसी-न-किसी भारतीय दृश्य का एक
सम्पूर्ण चित्र है।'

काव्य-मर्मज्ञों का विचार है कि 'ऋतु-संहार' कालिदास के यौवन-काल की
कृति है और कई कारणों से इस विचार की पुष्टि होती है। यौवन काल सौन्दर्य
और प्रेम और भोग-विलास का समय होता है। इस वक्त तक ग़म के काँटे पहलू
में नहीं खटकते और दुनिया की कठोरताओं का अनुभव नहीं होता। नौजवान
कवि की कविता निराशा और वेदना और शोक और विपत्ति के भावों से मुक्त
होती है। कवि को मुहब्बत की दास्तान, मिलन की खुशियों और प्रेमिका की
गुपचुप बातों से इतनी फुर्सत ही नहीं मिलती कि वह वेदना का राग गाये।
जब दिल हँसता हो तो आँखें क्योंकर रोयें। 'ऋतु-संहार' शुरू से लेकर आख़ीर
तक प्रेम के रस में डूबा हुआ है। अरमानों के दिन हैं, मुरादों की रातें। वह
तेज़ी, वह जोश, वह बेतकल्लुफ़ी, वह रंगीनी, वह ताज़गी, वह चहल-पहल जो
जवानी की ख़ासियतें हैं इस कविता में शुरू से आख़ीर तक भरी हुई हैं। सुन्दरियों
की चर्चा से कवि का जी नहीं भरता। कहीं उनके गलों के गजरों का बयान
है, कहीं उनकी मेंहदी-रची हथेलियों का। कवि ने हर एक मौसम को सुन्दरियों
की आँखों से देखा है। हर एक कल्पना, हर एक भाव यहाँ तक कि रूपक और
अन्वय सुन्दरियों के रूप से सजे हुए हैं। यह भी नौजवान कवि की एक ख़ासियत
है कि उसे हर जगह औरत ही सूझती है। नौजवान कवि के दिल पर कोई

जादू इतना असर नहीं करता जितना कि रूप का जादू। सुन्दर स्त्री ही उसकी भावनाओं को उभारती है, सुन्दर स्त्री उसकी आशाओं का आरम्भ और उसकी उमंगो की सीमा और उसके आकर्षणों का स्रोत होती है। कहने का आशय यह कि ऋतु-संहार एक जवान कविता है, जवानी की खुशियों से चमकती हुई, जवानी की मुहब्बत से महकती हुई और जवानी की उम्मीदों से भरी हुई।

हज़रत 'सुरूर' के अलावा मौलवी अब्दुल हलीम साहब 'शरर' ने अपने रिसाले 'दिलगुदाज़' में 'ऋतु-संहार' की दो तीन ऋतुओं का अनुवाद गद्य मे किया है। जून सन् १६१४ के 'दिलगुदाज़' में उन्होने इस काव्य के बारे मे इन शब्दों मे अपना विचार व्यक्त किया है :

"हिन्दुस्तान के शेक्सपियर कालिदास ने ऋतु-संहार के नाम से छः कवितायें छः ऋतुओं के संबंध में लिखी हैं जिनमें खास हिन्दुस्तान की ये ऋतुयें इस खूबी और मजे के साथ दिखाई है कि पढने से मौसमी कैफ़ियत की तस्वीरें आंखो में फिर जाती है....इन कविताओ में नई उपमायें, नयी कल्पनाएँ और नई बंदिशें है जो इस लिटरेचर के लिए, जिसका जन्म हिन्दुस्तान में हुआ, अंग्रेजी और फारसी लिटरेचर की लेखन-शैली से ज्यादा उपयुक्त और प्रभावशाली है।"

मूल-काव्य में कालिदास की रंगीन-बयानी कहीं कहीं हद से आगे बढ़ गयी है। फल जब ज्यादा मीठा हो जाता है तो उसमें कीड़े पड़ जाते है। मगर अनुवादक ने इन स्थलों को, जैसा कि उसका नैतिक कर्तव्य था, नजर से ओझल कर दिया है। काश उर्दू के कवि मौलाना शरर की तरह समझते कि इन कविताओ की नई उपमायें, नयी कल्पनाएँ और नई बंदिशें उर्दू लिटरेचर के लिए अंग्रेज़ी और फारसी लिटरेचर की लेखन-शैली से अधिक उपयुक्त है तो आज उर्दू शायरी को इतने ताने न मिलते और उसे इतना बुरा-भला न कहा जाता। मगर मौलाना शरर ने इस काव्य का अनुवाद गद्य ही में लिखने पर संतोष किया, हालाँकि यह ज़ाहिर है कि कवि की कल्पनाएँ कविता में ही मज़ा देती है। गद्य की काया मे आकर उनकी वही हालत हो जाती है जो मजेदार शराब की रूखे-सूखे बैरागियों के गिरोह में या किसी सुन्दरी की नग्नता के परिधान मे। बहरहाल कालिदास के विचारों को उर्दू पद्य में रूपान्तरित करने का काम जवानी मे ही सिधार जानेवाले सुरूर साहब के ज़िम्मे रहा और इसको उन्होंने जिस शानदार कामयाबी के साथ पूरा किया है उसकी तमाम उर्दू पब्लिक को कद्र करनी चाहिए। दरअसल शायर ने अनुवाद में मूल का रस पैदा कर दिया है। सरलता इस संग्रह की सबसे बड़ी विशेषता है। संस्कृत में पेचीदा और जटिल भावों को पद्य में रूपान्तरित करते समय सरलता का ध्यान रखना और उसमें

कामयाब हो जाना कवि के कौशल और काव्य-शक्ति का प्रमाण है।

ये वरंगे दीदये उश्शाक़ जो चश्मे पुरआब
उड़ रही है खाक उनमें सूरते मौजे सराब
सत्हे गर्द को समझ कर चश्मये आबे रवाँ
तक रहे हैं दीदये हसरत से होकर नीमजाँ

कितना सच्चा और नेचुरल खयाल है और कितनी खूबसूरती से कविता में बाँधा गया है :

धूप से हैं ऐसे घबराये हुए मारे सियाह
बाजुये ताऊस के साये में लेते हैं पनाह

मोर साँप का दुश्मन है मगर सख्त गर्मी ने उनके होश-हवास इस तरह उड़ा दिये हैं कि न साँप को डर रहा और न मोर को शिकार करने की ताब। उर्दू में ऐसे विचार देखने को नहीं मिलते और अनुवादक ने प्रशंसनीय सामर्थ्य से उन्हें पद्यबद्ध किया है :

धूप की शिद्दत से यूँ आतश बजाँ ताऊस है
बाजुए जर्री नही है शोल-ए-फ़ानूस है

कैसा अछूता और अनूठा खयाल है और जितने संक्षेप में इस भाव को व्यक्त किया गया है वह सोने में सुहागा है!

ठुन्ड कुछ सूखे हुए आते हैं सहरा में नजर
चोंच खोले जिसपे दम लेती हैं चिड़ियाँ बैठकर

कैसी तस्वीर खींच दी है। इसी का नाम शायरी है। शायर की निगाह किस क़दर पैनी है। जंगली झरबेरियाँ और करौंदे के पेड़ भी उससे नही बचे जिनकी तरफ़ उर्दू शायर कभी भूल कर भी आँख नहीं उठाता :

अजब अंदाज़ से बेलों को हिलाती है नसीम
और करौंदे के दरख्तों को नचाती है नसीम
यूँ हर एक फूल पर टेसू की बरसती है बहार
सुर्ख जैसे किसी तोते की नुकीली मिनक़ार
फूल शाखों पे हैं खोले हुए आगोश निशात
भौंरे कुंजों में हैं सरमस्त मये जोशे निशात

इन उदाहरणों से पाठकों के सामने स्पष्ट हो गया होगा कि अनुवाद में कितने संक्षेप से काम लिया गया है और प्रवाह जो किसी मौलिक कविता में पाया जाता है यहाँ शुरू से आखीर तक मौजूद है। इस बात को अधिक स्पष्ट रूप से दिखाने के लिए कि कवि को किस हद तक अनुवाद में सफलता मिली है, उचित

तो यह था कि संस्कृत के श्लोक और उनके अनुवाद आमने-सामने लिखे जाते मगर उर्दू में संस्कृत के समझनेवाले बहुत कम हैं और इस बाल की खाल निकालने से कुछ हासिल नही। ग्रीष्म ऋतु की कविता को अनुवादक ने कुछ छोटा कर दिया है क्योंकि इसमें अधिकतर ऐसे जानवरों का जिक्र था जिनके नाम से भी उर्दू पाठक परिचित न होगे। कालिदास की काव्य-सामर्थ्य का एक प्रमाण यह भी है कि वह एक ही विचार को बार-बार अलग-अलग ढंग से व्यक्त करता है और विचार की ताजगी में फ़र्क़ नही आता। उर्दू जैसी दरिद्र भाषा मे शब्दों की यह बहुतायत कहाँ ! ऐसे विचार चूँकि खूबसूरती से कविता में नही आ सकते थे इसलिए शायद पुनरावृत्ति के भय से अनुवादक ने उन्हें नज़र से ओझल कर दिया है और हमारे खयाल मे यह विवशता उनकी नहीं बल्कि उर्दू भाषा की है।

—जमाना, अगस्त १६१४

हँसी

एक प्रसिद्ध दार्शनिक का कथन है कि मनुष्य हँसने वाला प्राणी है और यह बिलकुल ठीक बात है क्योंकि श्रेणियों का विभाजन विशेषताओं पर ही आधारित होता है और हँसी मनुष्य की विशेषता है। यों तो मानव हृदय की भावनायें अनेक प्रकार की होती हैं मगर आनंद और शोक का स्थान इनमें सबसे प्रधान हैं। अन्य भावनायें इन्ही दोनों के अंतर्गत आ जाती हैं। उदाहरण के लिए निराशा, लज्जा, दुख, क्रोध, घृणा ये सब शोक के अंतर्गत आ जायेंगे। उसी प्रकार अहंकार, वीरता, प्रेम आदि आनंद की श्रेणी में। मनुष्य का जीवन इन्ही दो प्रतिकूल भावनाओं में विभाजित है। आनंद का प्रकट लक्षण हँसी है, शोक का रोना। हँसने और खुश रहने की इच्छा सर्वसामान्य है। रोने और शोक से हर व्यक्ति बचता है। हँसना और रोना मनुष्य के जन्मजात गुण हैं, अर्जित गुण नहीं। बच्चा पैदा होते ही रोता है और उसके थोड़े ही दिनों बाद एक खामोश-सी मुस्कराहट उसके चेहरे पर दिखाई देने लगती है। अन्य भावनायें समझ बढने के साथ-साथ पैदा होती जाती है।

कुछ विद्वानों ने यह पता लगाने का प्रयत्न किया है कि कुछ जानवर भी हँसने मे आदमियों के साझीदार हैं। वे यह तो स्वीकार करते है कि जानवरो की हँसी सस्वर नही होती मगर जो प्रेरणायें मनुष्य के हृदय में हँसी उत्पन्न करती हैं उनमें किसी न किसी हद तक वह भी जरूर शरीक है। कुत्ता अपने मालिक को जब कई दिन के बाद देखता है तो दुम हिलाता हुआ उसके पास चला जाता है बल्कि उसके बदन पर चढने की कोशिश करता है और एक किस्म की आवाज उसके मुंह से निकलने लगती है। जिन कुत्तों को गेंद उठा लाने की शिक्षा दी जाती हैं वे गेंद उठाते समय कभी-कभी खुद भी अपने पैरों से गेंद को और आगे ढकेल देते है। जब कई कुत्ते साथ खेलने लगते है तो उनकी चुहल और शरारत की कोई सीमा नही रहती। जिन लोगो ने इन कुत्तों के चेहरों को ध्यान से देखा है वे कहते हैं कि आँखों मे एक शरारत-भरी झलक, गालों का सिकुड़ना और दाँतो का बाहर निकल आना, जो हँसी के अनिवार्य लक्षण हैं, वे सभी एक बहुत हल्की-सी शक्ल में कुत्तों के चेहरे पर भी दिखाई देने लगते हैं। कभी-कभी कुत्ते मुर्गियों को सिर्फ डराने के लिए दौड़ाया करते है। बिल्ली एक बहुत गंभीर जानवर है

मगर वह भी चूहो को खिलाते वक़्त अपनी जन्मजात हास्यप्रियता का परिचय देती है। और बंदरों के बारे में तो कितने ही पशु-विज्ञान के विद्वानों का विश्वास है कि वे हँसते भी है और मज़ाक समझते भी है। अगर बंदर को मुंह चिढ़ाओ तो वह कितना झल्लाता है। अगर उसे छेड़ने के लिए उसके साथ दिल्लगी करो तो वह नाराज़ हो जाता है। उसे यह पसंद नहीं कि कोई उसका मजाक उड़ाए। कहने का मतलब यह कि कुत्ते, बिल्ली, बंदर की हँसी खामोश और बेआवाज होती है मगर उनमें हँसी-दिल्लगी की चेतना होती है।

बच्चे की हँसी भी शुरू मे बेआवाज़ और किसी क़दर जानवरो से मिलती हुई होती है। मगर उम्र के दूसरे महीने मे उसमे फैलाव और तीसरे महीने मे आवाज़ पैदा हो जाती है। तब उसे गुदगुदाओ तो खिलखिलाता है और दूसरों को देख कर हँसता है। गुदगुदाने से हँसी क्यो आती है, कुछ विद्वानो ने इसकी भी व्याख्या की है। एक प्रोफ़ेसर का ख्याल है कि जब मनुष्य विकास की आरंभिक स्थिति में था उस समय माँ बच्चे के शरीर पर से मक्खियाँ उड़ाने या दूसरे डंकी को भगाने के लिए उसी तरह हाथ फेरती थी जिस तरह आजकल गायें अपने बच्चो को चाटती हैं। इसी तरह हाथ फेरने से बच्चे को बहुत कुछ आराम मिलता है। लिहाज़ा आजकल भी जब नर्मी से शरीर पर हाथ फेरा जाता है तो उसी तरह इंसान को वही आराम याद आता है और वह हँसने लगता है। यह खयाल सही हो या गलत मगर आदमी की हँसी का विकास उसकी इंसानियत के साथ ही होता है। एक मज़ेदार बात है कि होंठ या शरीर की एक ज़रा-सी हरकत इंसान को घंटो हँसाती है।

वहशी कौमे भावनाओं की प्रौढ़ता की दृष्टि से बहुत कुछ बच्चों से मिलती है। यही कारण है कि उनकी हँसी भी बच्चों की हँसी से मिलती-जुलती होती है। बच्चे कभी-कभी खामखाह हँसते है। उनकी हँसी लाज-संकोच की परवाह नही करती। वहशियों की भी यही हालत है। सभ्य लोग अपनी हँसी पर बहुत संयम करते है लेकिन बर्बरों में यह संयम कहाँ। वह जब हँसते है तो खूब खुल-कर। खूब क़हक़हे लगाते है, तालियाँ बजाते है, चूतड पीटने लगते है और नाचते है, यहाँ तक कि कभी-कभी उनकी आँखों से आँसू बहने लगते है। हँसते-हँसते मर जाना इससे चाहे एक कदम और आगे बढ़ा होता हो। कोई अपरिचित चीज देखकर वह खूब हँसते है। बोर्नियो द्वीप में एक मिशनरी को पियानो बजाते देख कर वहाँ के बर्बर निवासी हँसने लगते है। सभ्य लोगों की एक-एक हरकत उन बर्बरो की हँसी का सामान है। उनके कपड़े, उनका मुँह-हाथ धोना, यह सब बातें उन्हें अजीब मालूम होती है और यह अजीब मालूम होना हँसी की मुख्य

प्रेरणाओं में से एक है। एक बार एक हब्शी सरदार इंगलिस्तान में पहुँचा और एक कारखाने की सैर करने के लिए चला। मैनेजर ने मेहरबानी से उसे कारखाना दिखाना शुरू किया। संयोग से एक जगह मैनेजर का कोट किसी चर्खी की पकड़ मे आ गया और बेचारे मैनेजर साहब कोट के साथ दो-तीन चक्कर खा गये। कर्मचारियों ने दौड़कर किसी तरह उनकी जान बचायी मगर हब्शी सरदार हँसते-हँसते लोट गया। उसने समझा कि मैनेजर साहब ने उसे तमाशा दिखाने के लिए क़लाबाज़ियाँ खायी और इस घटना के बाद वह जब तक इंगलिस्तान में रहा उसने कई बार मैनेजर साहब से वही दिलचस्प तमाशा दिखाने का तक़ाज़ा किया। कुछ असभ्य जातियों में रईसों के दरबार में अब भी मसखरे या विदूषक रक्खे जाते हैं।

पुराने जमाने में दरबारी विदूषकों का रिवाज हिन्दुस्तान और योरप में प्रचलित था। यहाँ तक कि वे दरबार का आभूषण समझे जाते थे। उनके बगैर दरबार सूना रहता था। इस सभ्यता के युग में भी वही रिवाज एक दूसरी शक्ल में मौजूद है जिसे थियेटरों में देख सकते हैं। एस्किमो एक जंगली कौम है। उनके यहाँ रिवाज है कि जब किसी मुकदमे का फ़ैसला होने लगता है तो दोनों विरोधी पक्ष के लोग एक-दूसरे को गंदी-गंदी गालियाँ सुनाना शुरू करते हैं। कभी-कभी पद्य-बद्ध गालियाँ दी जाती हैं। हाकिम इजलास और दूसरे तमाशाई इन तुकबंदियों पर खूब हँसते हैं और आख़िरकार उसी पक्ष की विजय होती है जो गालियों की गंदगी और बेशर्मी के लिहाज़ से तमाशाइयों को ज्यादा खुश कर दे। न्याय की अच्छी कसौटी निकाली है। ऐसे देश में गालियाँ बकना निश्चय ही कानूनदानी से अच्छा और फ़ायदेमन्द धन्धा है और काश हमारे देश के कुंजड़े और भटियारे वहाँ पहुँच जायँ तो यकीन है कि उन्हें किसी अदालत में हार न हो। अभी पशु-विज्ञान के किसी पंडित ने यह छान-बीन नहीं की लेकिन हँसी और निर्लज्जता में कोई कार्य-कारण संबंध अवश्य है। हिन्दुस्तान मे शादी-ब्याह मे, दावतों में गंदी और शर्मनाक गालियाँ गाने का रिवाज कितना बुरा मगर सब तरफ़ कितना प्रचलित और लोकप्रिय है। यहाँ तक कि कितने ही लोगों को गालियों के बगैर ब्याह का मज़ा ही नहीं आता और जब तक कानों में गंदी-गंदी गालियों की पुकारें नहीं आतीं खाने की तरफ़ तबियत नहीं झुकती।

हर एक देश या जाति का साहित्य उस देश की सर्वोत्तम भावनाओं और विचारों का संग्रह होता है और हालांकि किसी जाति के साहित्य में हँसी-दिल्लगी को वह स्थान नहीं दिया जायगा जिसका उसे सर्वसाधारण में अपने प्रचलन की दृष्टि से अधिकार है और प्रेम की भावनाओं को उससे ऊँचा स्थान दिया जाता है जो

एक सीमावद्ध भावना है और जिसका प्रभाव मानव जीवन के एक विशेष अंग तक सीमित है, तब भी यह विश्वास के साथ कहा जा सकता है कि उनका प्रभाव हर एक साहित्य पर स्पष्ट है और चूंकि हँसने-हँसाने की इच्छा हर दिल में रहती है, हास्य-कृतियाँ पसंद भी की जाती है। अंग्रेज़ी मे शेक्सपियर का मसखरा फ़ॉल्स्टाफ़, स्पेनी लिटरेचर का डॉन कुइक्जोट और उर्दू लिटरेचर का खोजी कैसे गम भुला देनेवाले है। कितने रंज और गम के सताये हुए दिल उनके एहसानमंद है। यह कहने मे कोई अत्युक्ति नहीं कि गद्य हो या पद्य, हँसी-दिल्लगी उसकी आत्मा है और उसके बगैर वह रूखी-सूखी और बेमज़ा रहती है।

हँसी के अनेक उद्दीपक है। संस्कृत में हँसी के प्रकारों, उनकी व्याख्या और उनके उद्दीपको आदि को बड़े विशद और विस्तृत ढंग से बयान किया गया है। अंग्रेज़ी मे ऐसी विशद सैद्धान्तिक चर्चा इस विषय पर नही है। इन उद्दीपकों मे विशेष ये है।

१—किसी चीज़ का अनोखापन जैसे बंदर का कोट-पतलून पहनना।

२—किसी अच्छी चीज़ का फ़ौरन किसी बुरी सूरत में ज़ाहिर होना जैसे मुँह चिढ़ाना।

३—कोई शारीरिक दोष जैसे कानापन या लंगड़ाकर चलना।

४—मानव विशेषताओं में कोई असाधारण बात जैसे शेखी मारना या भोलापन।

५—किसी चीज़ का अपने साधारण रूप से अलग हटना जैसे मुँह मे कालिख लगना।

६—अशिष्टता।

७—छोटी-मोटी दुर्घटनाएँ जैसे किसी का लड़खड़ाकर गिर पड़ना।

८—निर्लज्ज शब्दों का प्रयोग।

९—हर तरह की अतिशयोक्ति या हद से आगे बढ़ जाना जैसे भारी-भरकम पेट या बहुत ऊँचा कद।

१०—गुप-चुप बातें।

११—चीज़ों की तरह आवाज़ में भी अजनबीपन, अनोखापन जैसे बेसुरा गीत।

१२—दूसरों की नक़ल करना।

१३—कोई द्वयर्थक वाक्य।

उपरोक्त वर्गीकरण को ध्यान से देखने पर स्पष्ट हो जाता है कि हँसी का उद्दीपन विशेषतः किन्ही दो वस्तुओं के विरोध पर आधारित है। एक लड़का

अपने बाप का ढीलाढाला कोट पहन लेता है और उसे देखते ही फ़ौरन हँसी आती है। अफ़ीमचियों की कहानियाँ हँसी का एक न चुकनेवाला खज़ाना है। अकबर और बीरबल के चुटकुले भी दिलों को गरमाने के लिए आज़माए हुए नुस्खे है और ख्वाजा बदीउज़्ज़माँ उर्फ खोजी (खुदा की उन पर रहमत हो !) को तो उर्दू लिटरेचर का सबसे बड़ा शोकसंहारक कहना चाहिए। हाजी बगलोल भी उन्ही के मुरीदो में शामिल है। शायरी के दोषों और त्रुटियों को सरशार ने हँसी-दिल्लगी का कैसा फड़कता हुआ लिबास पहनाया है। ख्वाजा साहब की गँवई बातचीत, उनका शेर पढ़ना, डीग मारना, ये सब हँसने के अक्सीर नुस्खे हैं। छन्द-शास्त्र की भूलें, स्त्रीलिंग और पुल्लिग की ग़लतियाँ जो शायरी में ऐब समझी जाती है वे पढ़े-लिखे आदमियों के लिए हँसी का सामान है। उर्दू कवियों की सौन्दर्य की अतिशयोक्ति भी मज़ाक की हद तक जा पहुँचती है। नाभी की गहराई को अगर बरेली का कुआँ कहे तो खामखाह हँसी आयेगी।

विद्वानों ने हँसी को छ श्रेणियो मे विभाजित किया है :

१—होठों ही होंठो मे मुस्कराना। २—खुलकर मुस्कराना। ३—खिल-खिलाना ४—ज़ोर से हँसना ५—कहकहे लगाना ६—हँसते-हँसते पेट मे बल पड़ जाना और आँखों से आँसू बहने लगना।

इनमें पहली और दूसरी किस्मों का स्थान सबसे ऊँचा है, तीसरी और चौथी का मध्यम और पाँचवी और छठी क़िस्में सबसे निकृष्ट समझी जाती हैं और उनकी गिनती अशिष्टता में होती है। जिस समय गालों पर हल्की-सी शिकन पड़ती है, नीचे के होठ फैल जाते है, दाँत नही दिखाई देते है, आँखें चमकने लगती है, उसे होठों ही होठों मे मुस्कराना कहते है। जिस हँसी में मुँह, गाल और आँखें फूली हुई नजर आती है और दाँतों को लड़ियाँ किसी कदर दिखाई देने लगती हैं उसे खुलकर मुस्कराना कहते है। खिलखिलाने की व्याख्या करने की जरूरत नही। इसमें आँख कुछ सिकुड जाती है। क़हकहा लगाना अशिष्टता है, खासतौर पर बड़े-बूढ़ों के सामने ज़ोर से हँसना बुरी बात है। डाक्टरी दृष्टि से क़हकहा तन्दुरुस्ती के लिए बहुत अच्छा माना गया है। इससे सीने और फेफड़ों को ताकत पहुँचती है और तबीयत खिल उठती है। मनोविज्ञान के पंडितो का विचार है कि हँसी खुली हुई तबीयत की पहचान है और जिस आदमी के इरादे नेक न हों और जिसके हृदय को शांति और इत्मीनान हासिल न हो वह कभी खुलकर नही हँस सकता।

हम ऊपर लिख आये है कि संस्कृत साहित्य में हँसी-दिल्लगी के बारे में बड़ी गहरी छान-बीन के साथ विचार किया गया है। उपरोक्त विचार बड़ी हद तक

उसी के है। अब हम कुछ हास्य-रस के संस्कृत श्लोकों का अनुवाद लिख कर इस लेख को समाप्त करेंगे। उर्दू हास्य की शैली से हम परिचित हैं, संस्कृत साहित्य के भी कुछ उदाहरण देखिए :

१—यह देखिए कुक्कुट मिश्र आए। आपने अपने गुरू से कुल पाँच दिन शिक्षा पाई। सारा वेदांत तीन दिन मे पढ़ा है और न्याय को तो फूल की तरह सूँघ डाला है।

२—विष्णु शर्मा नामक किसी दुश्चरित्र विद्वान की बुराई यो की गई है—विष्णु शर्मा हाय हाय करके रोते और कहते थे कि मेरे जिस मस्तक पर मन्त्रो से पवित्र किया गया पानी छिड़का गया था उसी पर प्रेमिका के पवित्र हाथो ने तड़ातड़ चपत लगाई।

३—एक कोमल भावनाओं से अपरिचित ब्राह्मण अपनी प्रेमिका से कहता है—ऐ देवी, मेरे यह होंठ सामवेद गाते-गाते बहुत पवित्र हो गये है। इन्हे तुम जूठा मत करो। अगर तुमसे किसी तरह नहो रहा जाता तो मेरे बायें कान को ही मुँह में लेकर चुबलाओ।

४—जवान कट नही जाती, सर फट नहीं जाता, तब फिर जो कुछ मुँह मे आये कह डालने मे हर्ज ही क्या है। निर्लज्ज व्यक्ति विद्वान बनने में आगा-पीछा क्यों करे।

५—दो औरतों वाले मर्द की हालत उस चूहे की सी होती है जिसके बिल मे साँप है और बिल के बाहर बिल्ली।

६—दामाद दसवाँ ग्रह है। वह हमेशा टेढ़ा और तीखा रहता है, हरदम पूजा की माँग किया करता है और हमेशा कन्याराशि पर चढा रहता है।

७—जैनियों का मज़ाक उडाते हुए एक लेखक कहता है कि ये लोग एकात मे भी सुन्दरी के लाल-लाल होठों से बचते रहते है क्योकि होंठ मे दाँत लगने से उन्हे मासाहार का आरोप लगने का भय है।

८—एक जिन्दादिल बुड्ढा कहता है—क्या करें सिर के बाल सफ़ेद हो गये है, गालों पर झुर्रियाँ पड़ गई है दाँत टूट गये है पर इन सब बातों का मुझे कुछ दुख नही। हाँ जब रास्ते में मृगनयनी सुन्दरियाँ मुझे देखकर पूछती है, "बाबा किधर चले ?" तो उनका यह पूछना मेरे दिल पर बिजलियाँ गिरा देता है।

—जमाना, फरवरी १६१६

बिहारी

संस्कृत कविता के आचार्यों ने कविता को नौ रसों में बाँटा है। रस का मतलब है कविता का रंग। सौन्दर्य और प्रेम, वीरता, क्रोध, हास्य, भक्ति वगैरह। सूरदास शांति और भक्ति रस के कवि थे। बिहारी सौन्दर्य और प्रेम के कवि हैं। उनका रंग उर्दू की गजलों के रंग से बहुत कुछ मिलता-जुलता है। हिन्दी के सब कवियों में बिहारी ही को यह विशेषता प्राप्त है। यह पता नहीं चलता कि बिहारी ने फ़ारसी भी पढ़ी थी या नहीं। इसका कोई स्पष्ट प्रमाण नहीं है लेकिन उनकी कविता के रंग पर फ़ारसी गजलों का रंग बहुत चोखा नज़र आता है। सभव है यह उनकी स्वाभाविक प्रवृत्ति हो। सौन्दर्य और प्रेम के सिवाय उन्होंने किसी दूसरे रग मे कविता नही की और की भी तो वह नही के बराबर है। मगर इसके बावजूद कि उनका क्षेत्र बहुत सीमित है वह भावों को जिस ऊँचाई और गहराई तक पहुँच गये है वह इस रंग में किसी दूसरे हिन्दी कवि को नसीब नही। वह पिटी-पिटाई कल्पनाओं को कविता में नही बाँधते। उनकी सुथरी तबीयत ऐसे विषयों से भागती है जिनमें अब कोई नयापन नहीं रहा। उनमे गालिब की सी मौलिकता का रुझान है। गालिब की तरह उन्होंने भी प्रेम की ऊँची कसौटी अपने सामने रक्खी है और भावों को गंभीरता के स्तर से नही गिरने दिया। यह नही कहा जा सकता कि उनमे चंचलता नही है। सौन्दर्य और प्रेम की वाटिका मे आकर कोरा मुल्ला और रूखा-सूखा उपदेशक बनना मुश्किल है मगर बिहारी के यहाँ ऐसी संयमहीनता के उदाहरण बहुत कम हैं। गालिब की तरह वह भी बहुत ही कम लिखते थे। उनकी यादगार, जिन्दगी भर की कमाई, कुल ७०० दोहे हैं मगर अनुमान होता है कि यह उनकी कुल कविता नही बल्कि उसका चुना हुआ कुछ अंश है। जिस कवि ने जीवन भर लिखा हो वह सिर्फ़ ७०० दोहे अपनी यादगार छोड़े इसे बुद्धि स्वीकार नही कर सकती। ज़रूर अन्य कवियो की तरह उन्होंने भी बहुत कुछ लिखा होगा मगर बाद को उच्चकोटि के संयम और आत्मनिग्रह से काम लेकर उन्होंने ठीकरों में से हीरे छाँट लिये और वह हीरे आज उनके नाम को चमका रहे है। अगर उनकी सब कविता मौजूद होती तो यह लाल गुदड़ों में छिप जाते या नज़र आते तो सिर्फ़ पारखियों को। दस-पांच हज़ार शेरों या दोहों मे पाँच-सात सौ दोहों का अच्छा

होना कोई असाधारण बात नही। लगभग सभी कवियों की कविता मे यह गुण होता है। जिस शायर ने सारी ज़िन्दगी बकवास ही की और सौ दो सौ भी जानदार फड़कते हुए अछूते शेर नही निकाले उसे शायर कहना ही फ़िज़ूल है। इस हालत में बिहारी मे कोई विशेषता न रहती मगर उनके चुनाव ने विस्तार को कम करके उन्हें ऊँचाई के शिखर पर पहुँचा दिया। यह हीरे की माला सतसई के नाम से प्रसिद्ध है यानी सात सौ दोहों का संग्रह। हालांकि तादाद मे सात सौ दोहे कुछ ज़्यादा नही, इस छोटे से संग्रह में कवि ने सौन्दर्य और प्रेम का सागर भर दिया है। निराशा और कामना और उत्कंठा, वियोग और मिलन और उसका दाह, गरज कोई भाव आँख से ओझल नहीं हुआ। उस पर बयान का सुथरापन और अलंकारों का चमत्कार इन दोहों को और भी उछाल देता है। अलंकार स्वयं कविता का उत्कर्ष है। कोई रूखा-सूखा विषय भी अलंकारों का जामा पहन कर सँवर जाता है। जो जेनरल सौ सिपाहियों का काम दस सिपाहियों से पूरा करे वह बेशक अपने फन का उस्ताद है। अच्छे से अच्छा, अछूता, अनोखा विषय बहुत थोडे से शब्दों में बात कहने के आभूषण से सजा हुआ न हो तो बेमज़ा हो जाता है। कुछ आलोचकों ने तो इस गुण को इतना महत्व दिया है कि उसे कविता का पर्याय कह दिया है। उनके विचार मे कविता अलंकार के सिवा और कुछ नहीं। संस्कृत के पुराने आचार्य अलंकार में बेजोड़ हैं। उन्होने सारे उपनिषद् और पिंगल सूत्रो मे लिखे है। सूत्र वह छोटा सा कुल्हड है जिसमें दरिया बंद होता है। आज भी दुनिया के विद्वान इन सूत्रों को देखते है और आश्चर्य से दाँतों तले उँगली दबाते है। तीन चार शब्दों का एक टुकड़ा है और उसमें इतना अर्थ भरा हुआ है जो ढेरों शब्दों में भी मुश्किल से अदा हो सकता। कुछ सूत्रो की टीका और भाष्य मे बाद के लोगो ने पोथे के पोथे रँग डाले है। उर्दू मे गालिब और नसीम ने कसाव के साथ बात कहने में कमाल दिखाया है। हिन्दी में यह सेहरा बिहारी के सर है।

कवि के स्थान का पता उसकी लोकप्रियता से चलता है। इस दृष्टि से तुलसी का स्थान पहला है। मगर बिहारी उनसे बहुत पीछे नही। कमोबेश तीस कवियों ने सतसई की टीका गद्य और पद्य में लिखी है। पिछले बीस सालों के अंदर इसकी तीन टीकाएँ निकल चुकी हैं। इनमें एक गद्य में है और दो पद्य में। कवियों ने उन पर कते लिखे है। वासोख़्त, तरजीअ़, मुखम्मस सब कुछ हैं। बाबू हरिश्चन्द्र हिन्दी के वर्तमान युग के एक सर्वतोमुखी प्रतिभावाले साहित्यकार हुए है। उन्होंने गद्य और पद्य में कितनी ही अमर कृतियाँ छोडी है और आधुनिक हिन्दी नाटक के तो वह भगवान है। उन्होंने सतसई पर कुन्डलियाँ चिपकाने

का संकल्प किया मगर सत्तर-अस्सी दोहे से ज्यादा न जा सके, रचना-शक्ति ने जवाब दे दिया। बिहारी ने दोहे क्या लिखे हैं कवियों के लिए लोहे के चने हैं। जब तक कोई इसी स्तर का कवि सारी उम्र इन दोहों मे जान न खपाये, सफल नही हो सकता। हिन्दी मे बिहारी ही की विशेषता है कि उनकी कविता का संस्कृत मे भी अनुवाद हुआ। यह तो उस लोकप्रियता का हाल है जो बिहारी को कवियो की मंडली मे प्राप्त है, जनसाधारण में भी वह कम लोक-प्रिय नही हैं। हालाकि यहाँ उनका स्थान तुलसी और सूर के बाद है। उनके कितने ही दोहे, कहावत बन गये हैं और कितने ही लोगों की जबान पर चढे हुए हैं। बिहारी से उर्दू भी अपरिचित नही हैं। यह भी उन्ही का दोहा है :

अमिय हलाहल मद भरे श्वेत श्याम रतनार।
जियत मरत झुकि झुकि परत जेहि चितवत एक बार ॥

क्या इस दोहे की टीका करने की जरूरत है ? उर्दू का साहित्यकार जब भाषा की कविता की प्रशंसा जोरो से करता है तो वह इस दोहे को पेश करता है और कोई शक नही कि कवि ने इसमे जितना अर्थ और भाव भर दिया है वह एक पूरी गजल मे भी अदा न हो सकता और अदा हो भी जाये तो यह लुत्फ कहाँ। कितने थोडे शब्दो मे कितने कमाव के साथ बात कही गई है। शब्दो का कैसा अनूठा चयन। अमिय कहते है अमृत को। उसका रंग काला माना गया है। उसके पीने से मुर्दा जिंदा हो जाता है। हलाहल कहते हैं जहर को। उसका रंग सफेद माना गया है। वह प्राणघातक हैं। मद कहते हैं शराब को। उसका रंग लाल माना गया है। उसके पीने से आदमी झुकझुक पडता है। यानी प्रेमिका की आँखो मे अमृत भी है, विष भी और शराब भी। सुर्खी भी, सफेदी भी और सियाही भी। उसकी चितवन जिलाती है, कत्ल करती है और नशा पैदा कर देती है। झुक झुक पडना कैसी मनोहर कल्पना है। नशे में भी इंसान की यही हालत होती है। उसके पैर लडखडाते है और वह गिरते-गिरते सभल जाता है।

मुसलमान काव्यमर्मज्ञों ने भी सतसई का बहुत आदर किया। उस जमाने के मुसलमान लोग हिन्दी में शायरी करना अपनी जिल्लत न समझते थे। अगर उर्दू मे नसीम और तुफ्ता थे तो हिन्दी मे भी कितने ही मुसलमान कवि मौजूद थे। आलमगीर औरंगजेब के तीसरे बेटे आजमशाह हिन्दी कविता के मर्मज्ञ थे। कविता की रुचि रखते थे। उन्ही के कहने से सतसई का वर्तमान चयन कार्यान्वित हुआ। हालाकि और लोगों ने भी इस काम को किया मगर यह चयन सबसे अच्छा है। यह काव्य-नैपुण्य के विचार से किया गया है। बिहारी के सभी दोहे अलंकृत है। ऐसा कोई नहीं जिसमें कोई न कोई काव्य-नैपुण्य न रखा गया हो। आजम-

शाह ने दोहों की यह माला गूँथ कर अपनी काव्यमर्मज्ञता का बहुत अच्छा प्रमाण दिया है। मुसलमान रईसो और कवियों ने सतसई की खूब दाद दी है। उस वक्त बावजूद राजनीतिक झगड़ो के क़द्रदानो की स्प्रिट गायब न थी। शेरोसुखन के मामले मे जातीय विद्वेष को एक किनारे रख दिया जाता था। सतसई के तीस टीकाकारो मे पाँच नाम मुसलमानो के है—

१. जुलफिकार खाँ—बहादुर शाह के बाद जहाँदारशाह के ज़माने मे अमीरुल-उमरा के पद पर थे। राजनीतिक कामो में पूरे अधिकार प्राप्त थे। जहाँदार शाह तो भोग-विलास मे डूबे हुए थे, राज्य के सब काम जुलफिकार खाँ देखते थे। शहजादा फ़र्रुखसियर ने जब बगाल से आकर जहाँदार शाह पर धावा किया और कई लडाइयो के बाद दिल्ली पर कब्जा कर लिया, जुलफ़िक़ार खाँ ने विश्वासघात किया, जहाँदार शाह को गिरफ़्तार करवा दिया। मगर फ़र्रुखसियर ने गद्दी पर बैठने के बाद जुलफिक़ार को भी कत्ल करवा दिया। यह हिन्दी कविता के प्रशंसक थे। इन्ही की फ़रमाइश से कवियो ने सतसई की एक बहुत अच्छी टीका तैयार की जो आज तक मौजूद है। संभवत: वे खुद भी कवि थे और इससे तो इन्कार ही नही हो सकता कि वह कविता के उच्चकोटि के मर्मज्ञ थे।

२. अनवर चन्द्रिका—नवाब अनवर खाँ के दरबार के कवियों ने सतसई पर यह टीका लिखी। रचना काल सन् १८२८ ई०।

३. रस चन्द्रिका—ईसा खाँ उन्नीसवी सदी मे अच्छे हिन्दी कवि हुए है। नरवरगढ़ के राजा छत्रसिंह के संकेत पर उन्होने यह टीका पद्य मे तैयार की। बिहारी के दोहों का क्रम उन्होने अकारादि क्रम से दिया है। रचनाकाल सन् १८६६ ई०।

४.यूसुफ खाँ की टीका—यूसुफ खाँ का विस्तृत विवरण ज्ञात नही है मगर उनकी टीका मार्के की है। रचनाकाल अनुमानतः सन् १८६० ई० है।

५. पठान सुल्तान की टीका—रियासत भोपाल के ज़िले राजगढ़ के नवाब सुल्तान पठान ने सन् १८१७ मे यह टीका पद्य में लिखी। हिन्दी के अच्छे कवि थे। यह संभवतः उनके दरबार के कवियो की लिखी हुई नहीं बल्कि खुद उन्ही की लिखी हुई है। यह टीका अब अप्राप्य है।

लेकिन कितने खेद का विषय है कि इस ख्याति और लोकप्रियता और कला की निपुणता के बावजूद बिहारी की जिंदगी पर एक बहुत अँधेरा पर्दा पड़ा हुआ है। न उनके समकालीन कवियो ने उनकी कोई चर्चा की और न उन्होने खुद अपने बारे में कुछ लिखा। उनके समकालीनो की कमी न थी। कमोबेश साठ कवि उनके सम-कालीन थे। उन सब की कवितायें मिलती है मगर बिहारी के बारे में किसी ने कुछ

नही लिखा। उनके निजी हालात पूरी तरह केवल उनके तीन दोहो पर निर्भर हैं और वह भी साफ़ तौर पर समझ मे नही आते। हिन्दी के इतिहासकार बहुत दिनों से जाँच-पड़ताल कर रहे हैं और अब तक इस अनुसंधान का निष्कर्ष यह है कि बिहारी अठारहवी शताब्दी के मध्य में पैदा हुए। सतसई समाप्त करने की तारीख बिहारी ने सन् १८१७ ई० दी है। मुमकिन है उसके बाद कुछ दिन और जिन्दा रहे हों। अनुमान से मालूम होता है कि उन्होंने बड़ी उम्र पाई। ग्वालियर के पास एक मौजे में पैदा हुए। लड़कपन बुन्देलखंड में गुज़रा। मथुरा मे उनकी शादी हुई थी। वही उम्र का ज्यादा बड़ा हिस्सा गुज़ारा। उनकी ज़बान ब्रज भाषा है मगर उसमें बुन्देलखंडी शब्द बहुत आये हैं, जिससे इस अनुमान की पुष्टि होती है कि उनका ब्रज और बुन्देलखंड दोनो ही से अवश्य संबंध था। जाति के चौबे ब्राह्मण थे। कुछ आलोचको ने उन्हें भाट बताया है मगर इस विचार का समर्थन नही होता। अनुमानतः जिस ज़माने में सतसई खत्म हुई है उनकी उम्र साठ से कुछ ही कम थी मगर इतना ज़माना उन्होंने किस काम में खर्च किया इसका कुछ पता नही। संभव है दोहे लिखे हों मगर वह ज़माने के हाथो बर्बाद हो गये हों। बिहारी खुशहाल न थे और इस ज़माने के रिवाज के मुताबिक़ राजाओं और रईसो के दरबार में जीविका के लिए हाज़िर होना ज़रूरी था। मगर सतसई के पहले उनके किसी की सेवा मे उपस्थित होने का पता नही चलता। उम्र का बहुत बड़ा हिस्सा अज्ञात रूप से काटने के बाद ये जयपुर पहुँचे। वहाँ उस वक्त सवाई राजा जयसिंह गद्दी पर थे। दरबार के लोगों से महाराज की सेवा मे अपना सलाम अर्ज़ कराने की दरख्वास्त की। महाराज उन दिनों एक कमसिन छोकरी के प्रेम के जाल मे बेतरह फँसे हुए थे। राज्य का काम-काज छोड़ बैठे थे। रनिवास मे बैठे प्रेमिका की रूप-सुधा का पान किया करते। सैर व शिकार से नफ़रत थी। दरबारी महीनो उनकी सूरत न देख पाते। उन्होंने बिहारी से इस प्रसंग में अपनी असमर्थता प्रकट की। जब महाराज बाहर निकलते ही नही तो सिफ़ारिश कौन करे और किससे करे। मगर बिहारी निराश न हुए। एक रोज़ उन्हें एक मालिन फूलो की एक टोकरी लिये महल में जाती हुई दिखाई पड़ी। उन्होंने सोचा कि ये फूल महाराज की सेज पर बिछाने के लिये जाते होंगे। उन्होंने फ़ौरन निम्नांकित दोहा लिखा और उसे मालिन की टोकरी में डाल दिया—

नहिं पराग नहिं मधुर मधु नहिं विकास यहि काल।
अली कली ही सों बिध्यो आगे कौन हवाल॥

अर्थात् अभी न रस है न गंध है न फूल खिल पाया है। अभी वह एक

से काम क्यों न लिया। पन्ना के महाराज छत्रसाल इन भूषण को कुछ इनाम देने के बाद उनकी पालकी को अपने कंधे पर उठाकर कई कदम ले गये। इन कद्रदानियों के मुकाबले में बिहारी को जो इनाम मिला वह इतना उत्साहवर्धक नहीं कहा जा सकता। ये मिसालें उस वक्त ताज़ा थीं। बिहारी ने उनके चर्चे सुने थे। वह जयपुर से भग्न-हृदय लौटे। शायद यही कारण हो कि सतसई मे सवाई जयसिंह की स्तुति मे एक दोहा भी नहीं है। एक दोहा सिर्फ उनके शीशमहल की प्रशंसा मे है। बल्कि दो दोहों में उन्होंने इशारे से जयसिंह की नाकद्री की शिकायत भी की है हालांकि पाक निगाहें उनमे तारीफ़ ही देखती हैं। इस इनाम की बात अगर छोड़ भी दें तो बिहारी की वह आव-भगत जयपुर मे नहीं हुई जिसकी इतने क़द्रदाँ दरबार मे उन्होंने उम्मीद की थी। भूषण ने राजा छत्रसाल के भक्तिपूर्ण कवि-सत्कार को शिवाजी की उदारता से श्रेष्ठतर समझा था। कवि के मन मे केवल धन-संपदा की हवस नहीं होती, उसमे प्रशंसा पाने की इच्छा भी होती है। यदि काव्यमर्मज्ञ की प्रशंसा के साथ उसका थोड़ा-सा व्यावहारिक सत्कार भी हो जाये तो वह प्रसन्न हो जाता है। मगर प्रशंसा के बिना क़ारूँ का खजाना भी उसे खुश नहीं कर सकता। राजा छत्रसाल अभी जीवित थे। बिहारी जयपुर मे निराश होकर इसी आदमियों के पारखी राजा के दरबार मे पहुँचे और सतसई उनकी सेवा मे उपस्थित करके योग्य प्रशंसा चाही। छत्रसाल खुद भी अच्छे कवि थे। दिल मे उमंग थी। उनका दरबार सिद्धहस्त कवियों का केन्द्र बना हुआ था। इन कवियो ने सतसई को ग़ौर से देखा, परखा, तोला और बिहारी की कला के प्रशंसक हो गये। हालांकि इसी दरबार में एक कवि ने द्वेषवश बिहारी को बुरा-भला भी कहा मगर उसकी कुछ नहीं चली। राजा साहब ने बिहारी को पाँच गाँव की जागीर दी। इस दरबार के स्वागत-सत्कार से बिहारी बहुत प्रसन्न हुए मगर वे तो यहाँ अपने काव्य की प्रशंसा पाने के उद्देश्य से आये थे, जागीर पाने के लिए नहीं। जागीर धन्यवाद के साथ लौटा दी। महाराज जयसिंह को भी इस घटना की खबर मिली। उनके त्याग पर वह बहुत प्रसन्न हुए, फिर उन्हें दरबार में बुलाया और पिछली भूलों के लिए माफ़ी चाहकर दो अच्छी आमदनी वाले मौज़े दिये। बिहारी ने उनको शुक्रिये के साथ कुबूल कर लिया। वह अब तक उनके उत्तराधिकारियों के अधिकार में हैं।

बिहारी का अब बुढ़ापा आ गया था। साठ से ऊपर हो गये थे। ज्यादा सैर व सफ़र की ताकत न थी। मथुरा लौट आये। यहाँ इन दिनों जोधपुर के महाराज जसवंत सिंह भी आये हुए थे। उन्होंने बहुत दिनों से बिहारी की तारीफ़

माला उसके शरीर के सोने-जैसे रंग में मिलकर कुछ पीलापन लिए हुए कहरुवा सी हो जाती है। उसकी सहेली को धोखा होता है और वह घास के तिनके से उस माला को छूती है क्योंकि कहरुवा में घास को खींचने का गुण होता है। वह सोचती है कि यह तो मोतियों की माला थी, कहरुबा क्योंकर हो गई। इस संदेह को दूर करने के लिए वह उसके खरियाई गुण की परीक्षा लेती है। अमीर लखनवी का एक शेर देखिये—

मुनकिरे यकरंगिये माशूक व आशिक थे जो लोग
देख लें क्या रंगे काहो कहरुबा मिलता नहीं
कहे जु वचन वियोगिनी विरह विकल अकुलाइ।
किये न को अँसुवा-सहित, सुआ तिबोल सुनाइ॥

इस दोहे में कवि ने कल्पना की उड़ान को चोटी पर पहुँचा दिया है। उर्दू में शायद ही किसी शायर ने इस मज़मून को अदा किया हो। यानी प्रेमिका वियोग के दुख से बेचैन हो हो कर अकेले मे अपने दर्दभरे दिल से जो बातें करनी है उसे पिंजड़े में बैठा हुआ तोता सुन लेता है और उसे वही दर्दनाक शब्द दुहराते सुनकर लोगों की आँखों मे आँसू भर आते है। माशूक ने पर्दा डालने की कितनी कोशिश की मगर आखिर भेद खुल गया। इसमे कैसी सुकुमार कवि-कल्पना है और इस तोते के दुहराने मे भी यह असर है कि सुननेवाले दिल को हाथों से थाम लेते है और रोने लगते है। इससे उसके दर्द का अंदाज़ा हो सकता है। फ़ारसी का एक मशहूर शेर है—

सब्ज खत्ते बखते सब्ज मरा कर्द असीर
दाम हमरंग जमी बूद गिरफ़्तार शुदेम

सायब ने इस शेर के बदले अपना सारा दीवान देना चाहा था। बिहारी के इस दोहे में यही कोमल वास्तविकता और अपेक्षाकृत अधिक नर्मी है।

लच्यो आँच अब विरह की, रह्यो प्रेम-रस भीजि।
नैननु के मगु जलु बहै, हियौ पसीजि पसीजि॥

इसी खयाल को फ़ारसी शायर ने यूँ अदा किया है—

चे मी पुरसी जे हाले मा दिले ग़मदीदा अत चूँ शुद
दिलम शुद खूँ व खूँ शुद आब व आब अज़ चरम बेरूँ शुद

इस दोहे और फ़ारसी शेर में इतना सादृश्य है कि उसे टक्कर कहना चाहिए, क्योंकि दोनो कवि ऊँचे दर्जे के है और चोरी का संदेह किसी पर नहीं हो सकता।

बैठि रही अति सघन बन, पैठि सदन तन माँह।
निरखि दुपहरी जेठ की, छाँहौ चाहति छाँह॥

॥ विविध प्रसंग ॥

दरबान की कृपा की अपेक्षा है और दरबान बेरुखी करे तो फिर झूला डालने के सिवाय कोई तदबीर नहीं। मेघदूत को किसी मदद की जरूरत नहीं। वह ऊपर की दुनिया पर बैठा हुआ दूत का काम खूब कर सकता है। कालिदास को दृश्य-चित्रण में विशेष रुचि थी। इस संदेश में दृश्यों के साथ प्रेम की भावनाओं का बहुत रंगीन संयोग दिखाई देता है। गोया उसने हरे-भरे मैदानों में हिरन छड़ो दिये हैं। इस काव्य की असामान्य विशेषता का अंदाजा इस बात से हो सकता है कि यूरोप की अधिकांश भाषाओं में इसका अनुवाद हो गया है। हिन्दी भाषा में भी इसके कई पद्य और गद्य के अनुवाद मौजूद हैं। उर्दू में 'जमाना' में कई साल हुए मुंशी उमाशंकर 'फ़ना' ने इसे संक्षेप में बयान किया था। इसे उर्दू शायरी का जामा पहली ही बार पहनाया गया। संस्कृत जैसी ललित और अर्थ-गंभीर भाषा का उर्दू में मतलब अदा करना बहुत मुश्किल है और यह दिक्कत और भी बढ़ जाती है जब काव्य में मूल का आनंद देने का प्रयत्न किया जाय। इस खयाल को दृष्टि में रख कर अगर 'पैके अब्र' को देखें तो हजरत आशिक की यह कोशिश यकीनन काबिलेदाद नजर आती है। अभी तक 'मेघदूत' का भूगोल बड़े-बड़े विद्वानों के लिए एक रहस्य बना हुआ है। कोई रामगिरि को नीलगिरि बताता है कोई चित्रकूट को। हजरत आशिक ने इस मसले पर भी रोशनी डालने की कोशिश की है।

हजरत आशिक ने अनुवाद में यह ढंग रक्खा है कि हर एक श्लोक का अनुवाद एक-एक बंद में हो जाये। बंद तीन-तीन शेरों के हैं। इस पद्धति में अक्सर उन्हें दिक्कतें पेश आई हैं और हमारे खयाल में यह बहुत बेहतर होता कि काव्य के बंधन न लागू करके दृष्टि अर्थ की अभिव्यक्ति पर रक्खी जाती। इस बंधन के कारण कहीं तो एक पूरे श्लोक का आशय एक बंद में व्यक्त न हो सकने के कारण हजरत आशिक को कुछ छोड़ देना पड़ा। इसके विपरीत कहीं-कहीं श्लोक का आशय दो ही शेरों में अदा हो जाने के कारण बंद पूरा करने के लिए अपनी तरफ़ से एक शेर और ज्यादा करना पड़ा। 'सरस्वती' के योग्य संपादक पं० महावीर प्रसाद द्विवेदी ने इस पुस्तक की समीक्षा करते हुए अनुवाद के दोष बतलाये हैं और ये दोष अधिकतर इसी अपने पर लागू किये गये बंधन के कारण पैदा हो गये हैं।

'मेघदूत' शुरू से आखीर तक प्रेम की कविता है, एक विरही प्रेमी की मर्म-वेदना की कहानी है, मगर इतिहास की दृष्टि से भी इसका महत्व कुछ कम नहीं। ध्यानपूर्वक इसका अध्ययन करने से हिन्दुस्तान के उस पुराने जमाने के समाज पर रोशनी पड़ती है जिसके संबंध में इतिहास लुप्त है। किसी देश

भोग-विलास के सामान उन्नत सम्यता का पता देते हैं। यह एक दुःखद वास्तविकता है कि ज्ञान-विज्ञान और बुद्धि के विकास के साथ-साथ भोग-विलास के उपकरणों में भी उन्नति होती जाती है।

तर्जुमे की खूबी को उजागर करने के लिए जरूरी है कि पाठकों के सामने उसके कुछ टुकड़े पेश किये जायँ।

चित्रकूट का ज़िक्र करते हुए शायर कहता है :

इस जगह से आगे चलकर आयेगा फिर चित्रकूट
जो सर आँखों पर बिठायेगा वफ़ूरे शौक़ से।
जल रही हैं धूप की ताबिश से इसकी चोटियाँ
खूब बारिश कीजिए ता क़ल्ब में ठंडक पड़े।

नर्वदा नदी का ज़िक्र सुनिए :

राह में उज्जैन के पहले मिलेगी नर्वदा
ज़ीनत अफ़ज़ाये लबे साहिल विन्घ्याचल पहाड़।
साफ़ रंगत धार पतली जैसे हंसों की क़तार
इक नज़र से देखते ही आप उसे जायेंगे ताड़।
महवशों की माँग के मानिन्द पतली धार है
आपकी सोज़े जुदाई ने किया है हालेज़ार।

शिप्रा नदी का ज़िक्र यूँ किया है :

मस्त होकर बोलती हैं सारसें हंगामे सुबह
क़ाबिले नज़्ज़ारा है दरियाये सिप्रा की बहार।
मस्त-कुन बूए कमल फैली हुई है चार सू
इत्र-आगीं फिरती है बादे नसीमे खुशगवार।

गंभीरा नदी का ज़िक्र सुनिए :

ज़ेबे तन पोशाक नीली रंगते आबे रवाँ
बेद की शाख़ें लबे साहिल हैं या बेबाक हाथ॥
आपकी सोज़े जुदाई से बरहना हो गई
हट गया है छोड कर उसका लबे साहिल भी साथ।
कीजिए सैराब उसे करके निगाहे इल्तिफ़ात
चाहनेवाले से इतनी बेरुखी ऐ मेघनाथ।

प्रेमी अपनी प्रेमिका की विरह-वेदना का चित्र यों खींचता है :

दिन कटे कितने जुदाई के यह करने को शुमार
रोज़मर्रा ताकचों में फूल रखती होगी या

और कितने दिन रहे बाकी विसाले यार में
उँगलियों पर गिन रही होगी वसद ग्राहो बुका।
रोती होगी लज्जते ग्रहदे गुजिश्ता करके याद
शामे फुरकत में यही है औरतों का मशगला।

घास के बिस्तर पे होगी एक करवट से पड़ी
सदमये सोजे जुदाई से बसद् हाले खराव।
या हुजूमे यास से होगा रुखे रौशन उदास
आखिरी तारीख का बेनूर जैसे माहताव।

प्रेमिका का नख-शिख कितना सुन्दर है :

मिलती है तेरी नजाकत मालकँगिनी मे अगर
चाँद मे मिलती है तेरे रूये रौशन की चमक।
चश्मे आहू मे अगर मिलती है तेरी चितवनें
मौजे वहरे आव मे है तेरे अवरू की लचक।
मिलती है जुल्फे मुअम्बर गर परे ताऊस में
एक जा मिलती नहीं तेरे सरापा की झलक।

इन उद्धरणों से पाठकों को अनुवाद की खूबी का कुछ अंदाज़ा हो गया होगा। उपमा में कालिदास बेजोड़ है। कुछ उपमायें देखिए :

जिस तरह बदली मे पजमुर्दा कमल के फूल हों,
सदमये फुरकत से पजमुर्दा है मेरी जाने जाँ।
नन्ही-नन्ही बूँदें क्या दिलचस्प आती है नजर,
जिस तरह तागे मे हो गूंधा हुआ दुर्रे खुश आव।
जुम्बिशे अवरूये पुरखम शक्ल रक़्से शाखे गुल,
बेले के फूलों पे भौंरो की क़तारें है पलक।

इतना काफ़ी है। पूरा मज़ा उठाने के लिए पाठकों को पूरी किताव पढ़नी चाहिए। कीमत ज्यादा नही। सिर्फ़ छः आने है। कागज़-किताबत-छपाई अत्यंत मोहक। छः सुन्दर तस्वीरें है जिससे किताब की शोभा और बढ़ गई हैं। पृष्ठ संख्या चालीस। उर्दू में यह एक नई चीज़ है। इसकी क़द्र करना हमारा फ़र्ज़ है। हजरत आशिक़ धर के कोई लखपती नही हैं। उन्होने इस किताव को छापने मे बहुत ज्यादा ज़ेरबारी उठाई है मगर अभी तक पब्लिक ने जो क़द्रदानी की है वह बहुत हौसला तोड़नेवाली है। यही रुकावटें है जिनसे इल्मी खिदमत करने वालो के हौसले पस्त हो जाते हैं। दाद दीजिए मगर उनकी मेहनत का मिला सिर्फ़ जवान तक सीमित न रखिए, कोई हर्ज न समझिये तो भगवान के नाम

पर उसे पूँजी के नुकसान से तो बचाइये ताकि उसे दुबारा आपकी ख़िदमत करने का हौसला हो। उर्दू अख़बारों ने भी इस किताब की तरफ ध्यान नहीं दिया है। अक्सर लोगों ने तो इस पर क़लम भी नहीं उठाया और जिन महाशयों ने कुछ ध्यान दिया भी तो वह बहुत सरसरी। ख़ास तौर पर मुस्लिम अख़बारों ने तो ख़बर ही नहीं ली। हमारे उर्दू ज़बान पर मरनेवाले वतनी भाई हिन्दुओं पर उर्दू की तरफ से बेरुख़ी की शिकायत किया करते हैं। वह कभी-कभी उर्दू ज़बान में भाषा या संस्कृत के ख़यालात के न होने पर अफ़सोस करते देखे जाते हैं मगर जब कोई हिन्दू मनचला लिखनेवाला उनको इन प्रेरणाओं से उमंग में आकर कोई किताब प्रकाशित कर देता है तो उनकी तरफ़ ऐसी उदासीनता और बेरुख़ी बरती जाती है कि फिर उसे कभी क़लम उठाने का साहस नहीं होता। मुस्लिम भाइयों को शायद यह मालूम नहीं है कि उर्दू लिखनेवाले हिन्दू लेखक की स्थिति बहुत स्पृहणीय नहीं है। कोई उसे अपनी हिन्दी भाषा को बुराई चाहनेवाला समझता है, कोई उसे अपनी उर्दू ज़बान के हरममरा में अनधिकार प्रवेश का दोषी। ऐसी नागवार हालतों में रह कर साहित्य-सेवा करनेवाले की अगर इतनी भी कद्र न हो कि वह आर्थिक हानि से बचा रहे तो इसके सिवाय और क्या कहा जा सकता है कि लिटरेचर के विस्तार और विकास को लेकर यह सब शोर-गुल बेकार है। यह ज़ाहिर है कि संस्कृत से एक संस्कृत जाननेवाला हिन्दू जितनी ख़ूबी से अनुवाद कर सकता है, ग़ैर संस्कृत-दाँ मुसलमान महज़ अंग्रेज़ी तर्जुमों के आधार पर हरगिज़ नहीं कर सकता। और मुसलमानों में संस्कृत जाननेवाले हैं ही कितने। यह एक और दलील है जिसकी क़ीमत उर्दू लिटरेचर के चाहनेवालों की निगाह में ख़ासतौर पर होनी चाहिए। हाँ, अगर यह ख़याल है कि उर्दू ज़बान को संस्कृत से अलग-थलग रहना चाहिए और इस अलगाव से उनका कोई नुकसान नहीं, तो मजबूरी है।

—ज़माना, अप्रैल १९१७

केशव

काव्य-मर्मज्ञों ने केशव को हिन्दी का तीसरा कवि माना है लेकिन केशव में वह उडान नही जो बिहारी की अपनी विशेषता है। तुलसी, सूर, बिहारी, भूषण आदि कवियों ने विशेष शैलियों मे अपनी सर्वोत्तम योग्यता लगाई। तुलसी भक्ति की तरफ़ झुके, सूरदास प्रेम की तरफ़, बिहारी ने प्रेम के रहस्यों में ग़ोता लगाया और भूषण बहादुरी के मैदान में झुके लेकिन केशव ने विशेष रूप से अपना कोई ढंग नही अख़्तियार किया। वह सौन्दर्य और अध्यात्म और भक्ति, सभी रंगों की तरफ़ लपके और यही कारण है कि किसी रंग मे चोटी पर न पहुँच सके। केशव मे काव्य-कौशल कम न था और संभव है कि किसी एक रंग के पाबन्द रह कर वह दूसरे तुलसीदास बन सकते। लेकिन ऐसा मालूम होता है कि वह आख़िरी दम तक अपने को समझ न सके, अपने स्वभाव की थाह न पा सके और यह दृष्टि-दोष कुछ उन्ही तक सीमित नही है। हमारे लेखकों और कलाकारों का बहुत बड़ा हिस्सा इस अज्ञान का शिकार पाया जाता है। अपने स्वाभाविक रंग को पहचानना आसान काम नही है। तो भी कविता के रंग की दृष्टि से केशव की रुचि सौन्दर्य और प्रेम की ओर ज्यादा झुकी हुई दिखाई देती है। एक मौके पर अपने बुढापे का रोना रोते हुए वह कहते है कि अब सुन्दरियाँ उन्हें प्रेम की आँखों से नहीं बल्कि आदर की दृष्टि से देखती है और उन्हें बाबा कह कर पुकारती है। मजे की बात यह है कि उनकी ख्याति प्रेम-विषयक काव्य पर नहीं बल्कि पद्य-बद्ध आख्यायिका लिखने पर आधारित है। 'रामचन्द्रिका' जो उनकी सबसे ज्यादा जानी-मानी कृति है शायद हिन्दी भाषा में तुलसीदास की रामायण के बाद सबसे अधिक लोकप्रिय पुस्तक है।

केशव तुलसीदास के समकालीन थे। उनका जन्म संवत् प्रामाणिक रूप से पता नही लेकिन अनुमान से सन् १५५२ के लगभग ठहरता है और मृत्यु संभवतः सन् १६१२ की है। सूरदास के देहान्त के समय केशव की अवस्था बारह साल थी। तुलसीदास का देहान्त सन् १६२५ मे हुआ। इस हिसाब से केशव की मृत्यु बारह-तेरह साल पहले हुई। उनकी जन्मभूमि ओरछा थी जो अब भी बुन्देल-खंड की एक प्रसिद्ध रियासत है और उस ज़माने में तो सारा बुन्देलखंड ओरछा के अधीन था। अकबरी दरबार में ओरछा के राजा की खास इज्ज़त थी। यह

अकबर का काल था और ओरछा में राजा रामसिंह गद्दी पर थे। रामसिंह अकबर के दरबार मे पहली क़तार में जगह पाते थे और ज्यादातर आगरे में ही रहते थे। रियासत का प्रबन्ध इन्द्रजीत के योग्य हाथों मे था। केशव इस राज्य के नमक खानेवालों में थे। उन्होने अपनी कविता में जगह-जगह इन्द्रजीत की कृपा का गुणगान किया है। ओरछा वेतवा नदी के किनारे स्थित है। यह जमुना की एक सहयोगिनी नदी है जो हमीरपुर में जमुना से आकर मिल जाती है। अधिकतर पहाड़ी इलाकों से गुजरने के कारण इस नदी का पानी बहुत स्वच्छ और स्वास्थ्य-प्रद है और जहाँ कहीं वह घाटियो मे होकर बही है वहाँ के दृश्य देखने योग्य है। केशव ने जगह जगह बेतवा नदी की प्रशंसा की है।

इन्द्रजीत एक रसिक स्वभाव का राजा था। उसके प्रेम की पात्रियों में रायप्रवीन नाम की एक वेश्या थी। उसके सौन्दर्य की दूर-दूर तक चर्चा थी। वह कविता भी करती थी। अकबर ने भी उसकी तारीफ सुनी। देखने का शौक़ पैदा हुआ। इन्द्रजीत को हुक्म हुआ कि उसे हाजिर करो। इन्द्रजीत दुविधा में पड़ा। आदेश का उल्लंघन करने का साहस न होता था। उस वक्त रायप्रवीन ने दरबार में जाकर अपना एक कवित्त पढा जिसका आशय यह है कि आप राज-नीति से परिचित है, मेरे लिए कोई ऐसी राह निकालिए कि आपकी आन भी बनी रहे और मेरे सतीत्व में भी धब्बा न लगे—

जामे रहे प्रभु की प्रभुता अरु
मोर पतिव्रत भंग न होई।

इस कवित्त ने इन्द्रजीत की हिम्मत मजबूत कर दी। उसने रायप्रवीन को शाही दरबार में न भेजा। अकबर इस पर इतना क्रुद्ध हुआ कि उसने इन्द्रजीत पर आज्ञा का उल्लंघन करने के अभियोग में एक करोड़ रुपया जुर्माना किया। मालूम नहीं यह किंवदंती कहाँ तक ठीक है। अकबर की कुल आमदनी उस वक्त बीस करोड़ सालाना से ज्यादा न थी। एक करोड़ की रकम एक ऐसे जुर्म के लिए कल्पनातीत सजा कही जा सकती है। बहरहाल जुर्माना हुआ और इन्द्रजीत को किसी ऐसे वाणी-कुशल आदमी की जरूरत हुई जो अकबर से यह जुर्माना माफ़ करवा दे।

इस काम के लिए केशव को चुना गया और वह आगरा पहुँचे। यहाँ राजा बीरबल अकबर के खास दरबारियों में थे जो उसके मिजाज को समझते थे। खुद भी सिद्धहस्त कवि थे और कवियों का सम्मान भी करते थे। केशव ने उनका दामन पकड़ा और उनकी स्तुति में एक कवित्त पढ़ा। बीरबल इससे इतना प्रसन्न हुए कि अकबर से सिफ़ारिश करके वह जुर्माना ही नहीं

माफ करा दिया बल्कि छः लाख की हुन्डियाँ जो उनके जेब में थीं निकाल कर केशव को दे दीं। अगर यह किंवदंती सच है तो यह उस युग के उदार साहित्य-प्रेम का एक अनोखा उदाहरण है। कैसे दानी लोग थे जो एक-एक कवित्त पर लाखों लुटा देते थे। हम यह नहीं कहते कि यह दान उचित था या ऐसी बड़ी-बड़ी रकमें ज्यादा अच्छे कामों में खर्च न की जा सकती थी। लेकिन इससे कौन इन्कार कर सकता है कि वह बडे जिगरे के लोग थे। अपव्यय के लिए बदनाम होना चाहते थे लेकिन कंजूसी की बदनामी गवारा न थी। केशव यहाँ से सफल लौटे तो ओरछा मे उनका खूब स्वागत-सत्कार हुआ और वह राजदरबारियों में गिने जाने लगे। उधर रायप्रवीन ने भी अकबर के पास एक दोहा लिखकर भेजा जिससे उसकी गहरी सूझ-बूझ का प्रमाण मिलता है—

विनती रायप्रवीन की सुनिए साह सुजान
जूठी पातर भखत है बारी बायस स्वान

यानी जूठी पत्तल बारी कुत्ते वग़ैरह खाते हैं। मेरी यह अर्ज़ क़ुबूल हो....इस दोहे का जो असर अकबर पर हुआ होगा उसका अनुमान किया जा सकता है। उसने फिर रायप्रवीन का नाम नही लिया।

केशव दास ने अपनी स्मृति-स्वरूप चार पुस्तकें छोड़ी हैं। इनमें दो को तो जमाने ने भुला दिया लेकिन दो अब भी जानी जाती हैं—कविप्रिया और रामचन्द्रिका। कविप्रिया में कवि ने अपनी जिन्दगी के हालात और अपने उदार काव्य-मर्मज्ञ राजा के संबंध मे लिखा है। इसके अलावा इसमें काव्य के अलंकारादि, काव्य की विभिन्न शैलियाँ, उसके गुण-दोष और प्राकृतिक दृश्यों पर भी अपनी लेखनी का चमत्कार दिखलाया है। कवि ने इस कृति पर अपनी सारी काव्य-शक्ति खर्च कर दी है और कई मौको पर इसका बडे गर्व के साथ उल्लेख किया है। स्पष्ट है कि ऐसी पुस्तक लोकप्रिय नही हो सकती, लेकिन कवियों के समाज में उसे आज तक विशेष सम्मान प्राप्त है। नये कवियो के लिए तो उसका अध्ययन आवश्यक समझा जाता है। सच तो यह है कि इस किताब ने केशव की गिनती उस्तादों में करा दी है। लेखक बहुत बार अपनी पुस्तक का स्थान उसमें लगे हुए अपने परिश्रम के अनुसार निश्चित करता है और चूँकि ऐसी पांडित्यपूर्ण पुस्तकों में कवि अधिकतर दूसरे कवियों को ही संबोधित करता है इसलिए उसे क़दम क़दम पर सँभलने की जरूरत होती है कि कहीं उसका उस्तादी का दावा उपहासास्पद न बन जाय। कवि बड़ी गंभीर और पैनी दृष्टि से उसके दावे की जाँच-पड़ताल करते हैं और उसके गुणों को चाहे एक बार आँख की ओट कर भी दें लेकिन दोषों को हरगिज नही छोड़ते। वह देखते हैं कि जिन सिद्धांतों की

यहाँ स्थापना की गई है उनका पालन भी हुआ है या नहीं। अगर कवि इस कसौटी पर ठीक न उतरा तो वह गर्दन मार देने के क़ाबिल करार दिया जाता है। सब दरबारों मे रिश्वत चलती है लेकिन कवियो के दरबार में रिश्वत का गुजर नही। यह अदालत कभी रहम करने की ग़लती नही करती। इस दरबार ने कविप्रिया को परखा और तोला और केशव दास को भाषा के कवियो की उस मंडली में तीसरी जगह दे दी जिसमें पहला स्थान सूर का और दूसरा तुलसी का है।

लेकिन जैसा हम कह चुके हैं 'कविप्रिया' की ख्याति विशेष लोगों तक ही सीमित है। साधारण लोगो में उन्हें जो लोकप्रियता प्राप्त है वह उनकी अमर-कृति 'रामचन्द्रिका' का प्रसाद है। इसमें रामचन्द्र जी की कथा लिखी गई है मगर केशव ने राम को अवतार मानकर और खुद उनका सच्चा भक्त बनकर अपने को बिलकुल बेज़बान नही कर दिया है। उन्होने तुलसीदास के मुक़ाबले में ज्यादा आज़ादी से काम लिया है और जहाँ कही रामचंद्र या किसी दूसरे कैरेक्टर में उन्हें कोई दोष दिखाई पड़ा है तो उन्होंने उसे गुण दना कर दिखाने की कोशिश नही की बल्कि स्पष्ट शब्दों में उस पर आपत्ति की है। तुलसीदास ने रावण के साथ अन्याय किया है और उसे एक मनस्वी, प्रतिष्ठित और स्वाभिमानी राजा के पद से गिराकर घृणा का पात्र बना दिया है, हालांकि उसे इस तरह से अपमानित करने के बाद भी वह रावण का कोई ऐसा आचरण न दिखा सके जो इस घृणा की पुष्टि करता। रावण ने अगर कोई पाप किया तो यह कि उसने रामचंद्र को मनुष्येतर प्राणी समझकर उनके सामने सिर नही झुकाया। विभीषण रावण का छोटा भाई था। संभव है वह भगवान से डरने वाला और नेम-धरम का पक्का रहा हो, संभव है उसे रावण का राज्य-संचालन और उसका आचरण न भाता हो लेकिन यह इसके लिए काफी कारण नही है कि वह अपने भाई के दुश्मन से जा मिले और घर का भेदी बनकर लंका ढाये। उसका यह कार्य राष्ट्रीय दृष्टि से अत्यंत घृणित है। तुलसीदास ने उसे आस्तीन के साँप के बदले भक्त बनाकर दिखाना चाहा है लेकिन बावजूद वह सब रंग चढाने के जैसा कि एक कवि करता है, वह उसे सिर्फ़ बगुला भगत बनाने मे सफल हुए हैं। हिन्दुस्तान के लिए जयचंद ने जो किया, राजपूताने के लिए समरसिंह ने जो किया, दारा के लिए सरहंगो ने जो किया वही विभीषण ने रावण के साथ किया। रामचन्द्र के हाथों ऐसे शैतान की वही दुर्गत होनी चाहिए थी जो सिकन्दर के हाथो सरहंगो की हुई थी लेकिन रामचंद्र ने उसे राजगद्दी और मुकुट देकर जैसे देशद्रोह और परिवार-हत्या को बढ़ावा दिया है। जिस कथा को सारी जाति धार्मिक विश्वास की दृष्टि से देखती हो उसमें ऐसे कमीने नीच आचरण को दंड न देना एक अत्यंत

खेदजनक दोष है। हिन्दुस्तान का इतिहास देशद्रोह और विश्वासघात से भरा हुआ है लेकिन क्या मजब है विभीषण को उचित दंड देना इन गुमराहियों में से कुछ को दूर कर सकता। आज अगर इंगलिस्तान की पार्लियामेन्ट का कोई मेम्बर न्याय और नैतिकता के आधार पर किसी ऐसी बात का समर्थन करता है जिसमें इंगलिस्तान को नुकसान पहुँचने का डर हो तो उस पर चारों तरफ़ से घृणा की बौछार पड़ने लगती है। यह देश-प्रेम का युग है, जब वैयक्तिक और पारिवारिक स्वार्थ को देश पर बलिदान कर दिया जाता है। आश्चर्य तो यह है कि संस्कृत कवियों ने भी विभीषण की कुछ खबर न ली और यह सेहरा केशवदास के लिए छोड़ दिया। केशव एक राजा के दरबारी थे, शाही दरबारों के अदब-क़ायदे से परिचित, देशप्रेम का महत्व समझने वाले अत. उन्होंने रामचन्द्र के बड़े बेटे लव की ज़बान से विभीषण को खूब खरी-खरी सुनाई है। जब रामचन्द्र अपना दल सजाकर लव के मुकाबले में चले तो विभीषण भी उनके साथ था। लव ने उसे देखकर खूब आड़े हाथों लिया—"अत्याचारी! परिवार को कलंकित करने वाला! अगर तुझे रावण का आचरण पसंद न था तो जिस समय रावण रामचन्द्र जी की पत्नी को हर लाया था उसी समय तू रावण को छोड़कर क्यों राम के पास नहीं चला आया! तुझे धिक्कार है! तू जहर क्यों नहीं पी लेता! जाकर चुल्लू भर पानी में डूब क्यों नहीं मरता! तुझे अब भी शरम नहीं आती कि तू हथियार बाँधकर लड़ने निकला है! पापी, तुझे अपनी भावज को ब्याहते शर्म न आयी जिसे तूने कितनी ही बार माँ कह कर पुकारा होगा!"

संस्कृत में पद्य-बद्ध आख्यायिका लिखने की दो पद्धतियाँ हैं। एक में तो कवि की दृष्टि अपनी कथा पर रहती है, वह कथा को प्रधान समझता है और अलंकारों को गौण। दूसरे रंग में कवि की दृष्टि अलंकारों आदि पर रहती है, कथा को वह केवल अपने काव्य-कौशल और रचना-चातुर्य का एक साधन बना लेता है। पहली पद्धति वाल्मीकि और व्यास की है और दूसरी पद्धति कालिदास और भवभूति की। तुलसीदास ने पहली पद्धति अपनाई, केशव ने दूसरी पद्धति को पसंद किया और अपने काव्य चातुर्य की दृष्टि से उनका यह चुनाव शायद अच्छा रहा क्योंकि उनमें वह कविजनोचित कोमलता और वह गहरी संवेदनशीलता न थी जिसने तुलसीदास की कविता को सदाबहार फूल बना रखा है। इस कमी को पूरा करने के लिए काव्यशिल्प और अलंकार की आवश्यकता थी। यही कारण है कि केशवदास की कविता काफी कठिन है लेकिन उसके कठिन होने का एक कारण यह और हो सकता है कि उस समय तक हिन्दी भाषा प्रौढ़ नहीं हुई थी। विद्वानों की मंडली में संस्कृत की चर्चा थी, बिलकुल उसी तरह

जैसे सौदा के जमाने में फ़ारसी को। अतः तुलसीदास और केशव दोनों भाषा में कविता करते हुए झेंपते थे और इस डर से कि कहीं उनका भाषा-प्रेम संस्कृत का अल्प-ज्ञान न समझ लिया जाये वे समय-समय पर अपने पांडित्य का प्रदर्शन आवश्यक समझते थे। उन्हें अपने पांडित्य के प्रमाण देने के लिए दुरूह शब्द का प्रयोग उचित जान पड़ता था। तुलसीदास चूंकि वैरागी थे उन्हें किसी की प्रशंसा या निन्दा का परवाह न थी लेकिन केशव एक राजा के दरबारी थे। बड़े-बड़े पंडितो से हमेशा उनकी मुठभेड़ रहती थी इसलिए उनका दुरूह शब्दों का प्रेम स्वाभाविक था।

केशव धार्मिक मामलों मे लकीर के फ़क़ीर न थे, अंधविश्वासों को मुक्ति का साधन न समझते थे। नदी मे नहाने और मूर्ति-पूजा को वे मूर्खों की रस्म समझते थे। वह एकेश्वरवाद के अनुयायी थे और केवल एक परमात्मा की पूजा करने के लिए कहते थे। देवताओं को उन्होंने कृत्रिम और आडंबरपूर्ण कहा है। लेकिन इसके साथ ही जनसाधारण के लिए एकेश्वरवाद या चरित्र-शुद्धि या आत्मविवेक की आवश्यकता नही समझी। उनके लिए केवल परमात्मा के नाम का स्मरण काफ़ी बतलाया है। स्त्रियो के लिए पातिव्रत मुख्य धर्म बतलाया है जो प्राचीन हिन्दू समाज का एक विशेष अंग है और यद्यपि अब जमाने ने सांस्कृतिक व्यवस्थाओं में एक उथल-पुथल मचा दी है और स्त्री का व्यक्तित्व अपने पति में खोया हुआ न रह कर अलग एक सत्ता बन चुका है स्त्रियों के राष्ट्रीय-सांस्कृतिक अधिकार पेश हो रहे है, तो भी वह पुरानी व्यवस्था भी अपने अच्छे पहलुओं से खाली न थी और अभी जबकि नई व्यवस्था प्रयोग की दशा में है वह पुराना सिद्धान्त शताब्दियों तक प्रचलित रहा। उसमे अब भी कुछ ऐसे गुण है जिनसे बड़े से बड़ा, कट्टर से कट्टर सफरेजिस्ट भी इन्कार नहीं कर सकता। इसलिए हम इस मामले में केशव को दोषी नहीं समझते।

इसमे कोई संदेह नही कि केशवदास भाषा की पहली पंक्ति के बैठनेवालों में है लेकिन उनके स्वभाव में उन्मेष से अधिक साधना का रंग है। वह ग़ालिब या मीर न थे। वह नासिख और अमीर थे। उनकी कविता में आडंबर और खींचतान ज्यादा है, कोमलता और संवेदनशीलता कम। तो भी उनकी कविता मिठास से खाली नहीं है। कहीं-कहीं इस रंग मे उन्होंने चमत्कार कर दिखाया है।

पद्य-बद्ध आख्यायिकायें लगभग सभी भाषाओं में एक ही छंद मे लिखी जाती है। तुलसीकृत रामायण, सिकन्दरनामा, शाहनामा, मौलाना रूम की मसनवी, पैराडाइज़ लास्ट, इलियड आदि प्रसिद्ध आख्यायिकायें इसी ढंग की हैं। लेकिन केशवदास ने रामचन्द्रिका में सैकड़ों छंदों का प्रयोग किया है और कहीं-कहीं इस

तेजी से कि आख्यायिका के प्रवाह में फ़र्क नहीं आता। कुछ आलोचकों का विचार है कि यह विभिन्नता पुनरावृत्ति की निषेधक होने के कारण बहुत सुन्दर हो गयी है। लेकिन यह कुछ ज्यादती है। दुनिया की बड़ी-बड़ी मसनवियाँ एक ही छंद मे लिखी गई हैं। हाँ, कहीं-कहीं कवियों ने मज़ा बदलने के लिए भिन्न-भिन्न छंदो का प्रयोग किया है। तुलसीदास की रामायण इसकी अनूठी मिसाल है। शायद केशव ने एक ही छंद की मसनवी या पद्य-बद्ध आख्यायिका लिखकर इस रंग मे तुलसी से टक्कर लेना अपने लिए अहितकर समझा। इससे विभिन्नता का आनंद नहीं आता, कथा के प्रवाह में अलबत्ता रुकावट होती है।

हमने विभीषण की गद्दारी का जिक्र ऊपर किया है। इसके मुकाबले में केशव ने अंगद की वफ़ादारी और सदाचारिता को खूब दिखाया है। अंगद बालि का बेटा था। बालि का रामचंद्र ने वध किया था और उसका राज-पाट बालि के भाई सुग्रीव को दिया था। इसलिए अंगद का अपने बाप के हत्यारे से द्वेष रखना एक स्वाभाविक बात थी। लेकिन जब वह रावण के दरबार में गया है और उसने राम के इस कृत्य का संकेत देकर अंगद को फोड़ना चाहा है तो अंगद ने रावण को खूब करारे जवाब दिये हैं। कवि ने उसकी सदाचारिता दिखलाने के उत्साह मे पद के सम्मान की रक्षा का भी ध्यान नहीं रखा। अंगद के हृदय मे द्वेष था और जरूर था। आखिर में उसने उसको व्यक्त भी किया है लेकिन जिससे एक बार एकता का संबंध स्थापित कर लिया उससे दुश्मन के भड़कावे में आकर विमुख हो जाना मर्दानगी के खिलाफ था।

अब हम पाठकों के मनोरंजन के लिए केशवदास की कविता के नमूने पेश करते हैं—

सब जाति फटी दुख की दुपटी कपटी न रहै जहँ एक घटी
निघटी रुचि मीचु घटीहु घटी जग जीव जतीन को छूटि तटी

कवि ने पंचवटी का परिचय दिया है। कहता है यहाँ दुख और कष्ट की चादर तार-तार हो जाती है और दिल दग़ा व फ़रेब से मुक्त हो जाता है। उसके मोहक आकर्षणों से यतियों का ध्यान भी भंग हो जाता है।

कहि केशव याचक के अरि चंपक शोक अशोक किये हरि कै।
लखि केतक केतकि जाति गुलाव ते तीछण जानि तजें डरि कै॥
सुनि साधु तुम्हें हम बूझन आये रहे मन मौन कहा धरि कै।
सिय को कछु सोध कहौ करुणामय हे करुणा करुणा करि कै॥

रावण सीता को हर ले गया है और राम वियोग के उद्वेग में जंगल के पेड़ो से सीता का पता पूछते फिरते हैं। वह करुणा के वृक्ष को संबोधित करके कहते

है—चंपा भौरे को अपने पास नही आने देती इसलिए उसमें दर्द नही है। अशोक ने शोक को भुला दिया है इसलिये उसमे भी दर्द नही। केवड़ा, केतकी और गुलाब कंटीले है और दिल के दर्द का हाल नहीं जानते इसलिए मैं तुम्हारे पास आया हूँ, कुछ सीता की खबर बताओ, खामोश क्यों खड़े हो।

दीरघ दर्द न बसै केसोदास केसरी ज्यो,
केसरी को देखि,बन-करी ज्यों कँपत है।
बासर की संपति उलूक ज्यों न चितवत,
चकवा ज्यों चंद चितै चौगुनो चँपत है।
केका सुनि व्याल ज्यों बिलात जात घनश्याम,
घनन की घोरनि जवासो ज्यों तपत है।
भौंर ज्यों भँवत वन, जोगी ज्यों जपत रैनि,
साकत ज्यों राम नाम तेरोई जपत है।

हनुमान लंका मे सीता जी को देखने गये है और उन्हें अशोकवाटिका में देखकर उनसे रामचंद्र के वियोग की पीड़ा का यो वर्णन करते है—जैसे घने जंगल मे शेर रहता है उसी तरह रामचंद्र रहते है यानी जमीन पर सोते-बैठते हैं। आराम की जरा भी इच्छा नही। जैसे उल्लू दिन की रोशनी के नेमतों को और आँख उठाकर नही देखता उसी तरह रामचंद्र किसी चीज की तरफ नही देखते। जैसे चकोर चांद को देखकर अधीर हो जाता है उसी तरह चांद को देखकर रामचंद्र के दिल की बेचैनी भी बढ़ जाती है। मोर की आवाज सुनकर जैसे सांप छिप जाता है उसी तरह रामचंद्र छिप जाते है। वर्षा से जैसे मदार का पेड़ जल जाता है उसी तरह रामचंद्र घुलते है। भौंरे की तरह इधर-उधर घूमा करते हैं, जोगी को तरह रात को जागते है और तेरे ही नाम की रट लगाते हैं।

दन्तावलि कुन्द समान गनो।
चंद्रानन कुन्तल चौंर घनो॥
भौहैं धनु खंजन नैन मनो।
राजीवनि ज्यों पद पानि भनो॥
हारावलि नीरज हिय-पट मे।
है लीन पयोधर अम्बर में॥
पाटीर जोन्हाइहि अंग धरे।
हंसी गति केशव चित्त हरे॥

कवि ने शरद ऋतु को एक कल्पना की है। इस ऋतु में कुन्द खिलता है। ये गोया उस सुन्दरी के दांत है। चांद उसका कांतिमान मुखड़ा है। इस ऋतु में

चाँद वहुत प्रकाशवाला होता है। राजा लोग इन्हीं दिनों पूजा करके दरबार को सजाते हैं। दरवार के चँवर इस सुन्दरी के बाल हैं। उनके कमान उसकी भौहें हैं। खंजन पक्षी इसी ऋतु में आता है। वह इस सुन्दरी की आँख है। (कवियों ने आँख की उपमा खंजन से दी है।) इस मौसम में कमल खिलते हैं। वह इस सुन्दरी के पाँव हैं। स्वाति की बूँद से मोती बन जाता है, ऐसी कवि प्रसिद्धि है। यह गोया इस सुन्दरी के हार है। इस मौसम मे बादल आसमान में मिल जाता है कि जैसे सुन्दरी ने अपना दमकता हुआ वक्ष कपड़े में छिपा लिया है। इन दिनों चाँदनी खूब निखरती है। यह गोया इस सुन्दरी के लिए चंदन का लेप है। इस ऋतु में हंस आते हैं। ये गोया इस सुन्दरी की मस्ताना चाल है। इन गुणों वाली सुन्दरी अर्थात् शरद ऋतु दिलों को बस में कर लेती है।

—जमाना, जुलाई १९१७

पुराना ज़माना : नया ज़माना

पुराने ज़माने में सभ्यता का अर्थ आत्मा की सभ्यता और आचार की सभ्यता होता था। वर्तमान युग मे सभ्यता का अर्थ है स्वार्थ और आडंबर। उसका नैतिक पक्ष छूट गया। उसकी सूरत बदल कर अब वह हो गई है जिसे हमारे पुराने लोग असभ्यता कहते। शारीरिक बनाव-सँवार और टीमटाम पुराने तर्ज की निगाहों मे कभी अच्छी न समझी जाती थी। भोग-विलास के सामान इकट्ठा करना कभी पुरानी सभ्यता का लक्ष्य नही रहा। पुराने लोग सजावट और बनावट को घृणा की दृष्टि से देखते थे। उस समय सभ्य कहलाने के लिए यह जरूरी नहीं था कि आपका बैंक में इतना हिस्सा हो, आपके बाल एलबर्ट फ़ैशन के कटे हुए हों, आपकी दाढी इटालियन या फ्रेन्च हो, आपका कोट शिकारी हो या टेनिस हो या कैम्ब्रिज हो या चीनी या जापानी हो, आपके जूते डर्बी या पम्प हो। आपकी शेरवानी या सलीमशाही जूते पर उनकी निगाह न जाती थी। वे उसे शान कहें, प्रदर्शन कहें, शेखी कहें लेकिन सभ्यता हर्गिज न कहते, सभ्यता के नाम को बट्टा न लगाते। सभ्यता से उनका अभिप्राय नैतिक, आध्यात्मिक, हार्दिक था। उस समय वह व्यक्ति सभ्य था जिसका आचार पवित्र हो, जो धैर्यवान हो, गंभीर हो, हँसमुख हो, विनयशील हो। बड़े-बड़े राजा-महाराजा संन्यासियों को देखकर आदरपूर्वक खड़े हो जाते थे। उनका सम्मान करते थे और केवल औपचारिक या प्रदर्शनपूर्ण सम्मान नही, हृदय से उनकी चारित्रिक शुद्धता और आध्यात्मिकता को सिर झुकाते थे, उनसे अपनी भेंट होने को जीवन का एक बड़ा प्रसाद समझते थे। इसका असर उनके मन पर होना जरूरी था। सिद्धार्थ, अशोक, शिलादित्य, जनक की उपासना, वैराग्य, तपस्या इन्ही सत्संगो का परिणाम थी। उन लोगों की आजादी को देखिये कि वे अपने सिद्धान्तो के सामने सिंहासन और मुकुट की परवाह न करते थे। और एक यह स्वार्थपरता का युग है कि राजा-महाराजा पाँवो में जंजीर होते हुए भी बादशाही के नाम पर मरते है। मिस्र, ईरान और यूरोप के पुराने इतिहासों में जनक और अशोक के उदाहरण मिलते है लेकिन आज अगर कोई अपना राज्य छोडकर एकांतवास करने लगे तो लोग यह समझेंगे कि उसका दिमाग खराब हो गया है।

पुरानी सभ्यता सर्वजन-सुलभ, प्रजातान्त्रिक थी। उसकी जो कसौटी धन

और ऐश्वर्य की आँखों में थी वही कसौटी साधारण और नीच लोगों की आँखों में भी थी। ग़रीबी और अमीरी के बीच उस समय कोई दीवार न थी। वह सभ्यता गरीबों को अपमानित न करती थी, उसको मुँह न चिढ़ाती थी, उसका मज़ाक न उड़ाती थी। ज्ञान और उपासना का, गंभीरता और सहिष्णुता का सम्मान राजा भी करता था और किसान भी करता था। उनके दार्शनिक विचार अलग-अलग हों लेकिन सभ्यता की कसौटी एक थी। पर आधुनिक सभ्यता ने विशेष और साधारण में, छोटे और बड़े में, धनवान और निर्धन में एक दीवार खड़ी कर दी है। किसी बिसाती की दूकान पर जाइये, किसी दवाफ़रोश या सौदागर की दूकान को देखिए और आपको मालूम हो जायेगा कि वर्तमान सभ्यता कितनी सीमित और सविशेष है। आपके साबुन, बिस्कुट, लवेन्डर की शीशियाँ, कुन्तल कौमुदी, दस्ताने, कमरबंद, टाई, कालर, बैग, ट्रंक और भगवान जाने विलास की और कौन कौन-सी सामग्रियाँ दूकानों में सजी नज़र आयेंगी, पेटेन्ट दवायें चुनी हुई हैं, लेकिन आपके कितने देशवासी उनसे लाभान्वित होते हैं?-आपका आधुनिक शिक्षा से वंचित भाई आपको इस ठाट में देखता है और यह समझता है कि यह आदमी हममें से नहीं है, हम उनके नहीं हैं। फिर आप चाहे कितनी बुलंद आवाज़ से राष्ट्रीयता की हाँक लगायें वह आपकी ओर ध्यान नहीं देता। वह आपको पराया समझ लेता है। आपके सर्कस और थियेटर में वह सहज सौन्दर्य कहाँ है जो पुराने ज़माने के मेलों और तमाशों में होता था? आपके काव्य में वह आकर्षण कहाँ है जो पुराने ज़माने के भजनों में होता था जिन्हें सुनकर अमीर और ग़रीब, राजा और रंक सब के सब सिर धुनने लगते थे? आधुनिक प्रणाली ने जनसाधारण को अपनी परिधि से बाहर कर दिया है। उसने अपनी दीवार आडंबर पर खड़ी की है। भौतिकता और स्वार्थपरता उसकी आत्मा है। इसके बावजूद जनतान्त्रिकता ही आधुनिक सभ्यता का सबसे प्रधान गुण कही जाती है।

वर्तमान सभ्यता का सबसे अच्छा पहलू राष्ट्रीयता की भावना का जन्म लेना है। उसे इस पर गर्व है और उचित गर्व है। लेकिन पुराने ज़माने में भी राष्ट्रीयता की भावना बिलकुल लुप्त न थी। यूनान और ईरान की लड़ाइयाँ, स्पेन और अरब की लड़ाइयाँ, हिन्द और अफ़ग़ानिस्तान के झगड़े किसी न किसी हद तक राष्ट्रीयता के उदय और राष्ट्र-गौरव पर आधारित थे लेकिन आधुनिक सभ्यता ने इस भावना को एक संगठित, अनुशासित, एकताबद्ध और व्यवस्थित रूप दे दिया है। पुराने ज़माने में इसका बोध विशेष अवसरों पर होता था। किसी अपमान का बदला, किसी ताने की चुभन या केवल वीरता का प्रदर्शन और

विजयी बनने का उत्साह कुछ व्यक्तियों को एकता की डोर मे बाँध देता था। एक उबाल था जो थोड़ी देरलि के ए दिल को हिला देता था, एक तूफ़ान था कि जो कुछ देर तक पानी की ठहरी हुई सतह में हलचल डाल देता था लेकिन उबाल के उतरते ही, तूफान का ज़ोर खत्म होते ही अलग-अलग तत्व अपनी-अपनी स्वाभाविक स्थिति पर आ जाते थे और कुछ दिनों के बाद इन लड़ाइयों की याद भी खत्म हो जाती थी या ज़िन्दा रहती थी तो कवीश्वरों के कवित्तों में। बहुत बार धर्म के प्रचार के लिए जबान से खंजर की मदद ली जाती थी। पुरानी रवायतें आज तक नारए तकबीर व नक़्फ़ीर से गूँज रही हैं मगर वे अस्थायी, क्षणिक उद्‌गार होते थे। उन्होंने सल्तनतें तबाह कर दीं, राष्ट्रों को गारत कर दिया, प्रलय के दृश्य खड़े कर दिये, संस्कृति के चिन्ह मिटा दिये मगर इससे इन्कार नहीं किया जा सकता कि वे वैयक्तिक और अस्थायी चीजें थीं। इसके विपरीत आधुनिक राष्ट्र एक स्थायी, टिकाऊ, सामूहिक और अनिवार्य भावना है। उसकी बुनियाद न व्यक्तिगत सत्ता पर है न धार्मिक प्रचार पर बल्कि निश्चित समुदायों की भलाई और सेवा, शांति और दृढ़ता पर। वह पारिवारिक, सांस्कृतिक या धार्मिक संबंधों से पृथक् है। वह बाह्यतः भौगोलिक सीमा पर आधारित है और आन्तरिक रूप से उद्देश्यों की एकता पर। वह शहद और दूध की नदी अपने क़ब्जे मे रखना चाहती है और किसी दूसरे को उसका एक घूंट भी देना नही चाहती। वह खुद आराम से अपना पेट भरेगी चाहे दुनिया भूखा मरे, खुद हँसेगी चाहे दुनिया खून के आँसू रोये। अगर उसे लाल कपड़े पहनने की धुन हो जाये और लाल रंग खून से निकलता हो तो उसे दूसरों का खून करने मे भी झिझक न होगी। अगर इंसान के दिल का टुकड़ा उसके शरीर को ताक़त पहुँचानेवाला हो तो निश्चय ही हजारों आदमी उसके खंजर के नीचे तड़पते नज़र आयेंगे। उसे अपना अस्तित्व संसार में आवश्यक मालूम होता है। बाकी दुनिया मिट जाये, उसे इसकी परवाह नही। स्वार्थपरता उसका धर्म, उसकी पुस्तक, उसका रास्ता सब कुछ है। सारी मानवीय भावनायें, सारे नैतिक प्रश्न इस हवस के पुतले के आगे सिर झुका देते हैं। यह कल और मशीन का युग है और राष्ट्र इस युग को सबसे स्पष्ट अभिव्यक्ति है। यह देव-जैसी मशीन दिन रात पागलों जैसी तेज़ी मगर सिपाहियों जैसी पाबन्दी के साथ चलती रहती है। कोई इसके घेरे में आ जाय यह उसे देखते-देखते निगल जायेगी, उसे पीस डालेगी। वह किसी पर दया नही करती, किसी के साथ रिआयत नहीं करती। वह एक भीमकाय रोलर है जिसमें व्यापार और प्रभुत्व की दो लाल-लाल आँखें घूर-घूरकर बेख़बर लोगों को चेतावनी देती है कि खबरदार सामने न आना वर्ना

पलक झपकते भर में मारे जाओगे। इस आधुनिक राष्ट्र ने संसार में एक रक्तावत जीवन-संघर्ष छेड़ दिया है। जिन मानव समुदायों ने अभी तक राष्ट्र का रूप नहीं ग्रहण किया वे उसके अत्याचारों का क्षेत्र है। वह अफ्रीका मे जाती है और वहाँ के जंगलों और घाटियो को काले रंग के काफ़िरों से पाक कर देती है। वह एशिया में आती है और सभ्यता व शिक्षा का नारा बुलंद करती है। उसके नेक इरादो में शक नही। वह किमी को गुलामी का तौक़ नहीं पहनाती, मर्दों और औरतों को गुलाम नही बनाती, शहरों को जलाकर खाक नही करती मगर एक विचित्र-सा संयोग है कि जो "अ-राष्ट्र" प्रदेश इस राष्ट्र के हाथो बंदी हुआ, उसका जीवन निराशा और अपमान की भेंट चढ़ जाता है।

प्राचीन युग को अंधकार युग कहा जाता है मगर उस अंधकार युग में सैनिक सेवा हर एक व्यक्ति की स्वेच्छा पर निर्भर थी। बादशाह किसी को जबर्दस्ती लड़ने पर मजबूर न कर सकता था। बहादुरी के मतवाले कर्तव्य या मित्रता या विशुद्ध लालच की पुकार सुनकर खड्ग-हस्त हो जाते थे लेकिन इस प्रकाशवान युग ने हर व्यक्ति को हत्या के लिए तत्पर बना दिया है। नारा व्यक्ति-स्वाधीनता का बुलंद किया जाता है लेकिन सच तो यह है कि राष्ट्र ने व्यक्ति को मिटा दिया, व्यक्ति का अस्तित्व राष्ट्र या स्टेट मे समाहित हो गया है। हम अब रियासत के गुलाम हैं। उसको अधिकार है चाहे हमको कत्ल व खून पर मजबूर करे चाहे झगड़े-फ़साद पर। लंका में विभीषण ने अपने भाई रावण के खिलाफ़ रामचन्द्र की मदद की थी मगर विभीषण पूरी आजादी के साथ लंका में रहता था। रावण को कभी इतना साहस न हुआ कि वह विभीषण का एक बाल भी बाँका कर सके। आज लड़ाई के ज़माने में इस तरह का राजद्रोह कोर्टमार्शल का कारण बन जाता। विदुर कौरवों से वज़ीफा पाता था लेकिन एलानिया पाडवों का साथ देता था। तो भी कौरवो ने, यद्यपि वे कर्तव्य भावना से रहित कहे जाते हैं, इस निर्भीक स्पष्टता के लिए विदुर को मार डालने के योग्य नही समझा। मगर आप कुछ भी कहें वह अँधेरा युग था, गुलामी और बदहाली से घायल और दुखी। और यह ज़माना जब दुश्मन की खूबियों को स्वीकार करना भी कुफ़्र है, जब राष्ट्रीय धर्म से जो भर भी इधर-उधर होना अक्षम्य पाप है, प्रकाशवान, रौशन! अगर रोशनी का मतलब बिजली या गैस की रोशनी है। लेकिन अगर रोशनी का मतलब आत्मिक स्वतंत्रता, बौद्धिक और सामाजिक शांति है तो वह अँधेरा युग इस रौशन जमाने से कही अधिक प्रकाशवान था। "राष्ट्र" की शक्ति और प्रभुत्व पर ये सब पतिंगे न्योछावर हैं! और क्या यह व्यापार और कल-कारखानों की उन्नति, तरह-तरह के यन्त्रों का आविष्कार, जिस पर नये युग को इतना गर्व है, विशुद्ध

सौभाग्य है जब कि सिगरेट कौडियो के मोल बिकता है, वटन और टीन के खिलौने मारे-मारे फिरते हैं मगर दूध और घी, मकई और ज्वार का स्थायी अकाल पड़ा हुआ है, जबकि देहात उजड़ते जाते हैं और शहरों की आबादियाँ बढ़ती जाती है, जबकि प्रकृति की दी हुई सम्पदा को लात मार कर लोग बनावटी नुमायशी ढकोसलों पर जान दे रहे है, जब कि आदम के बेशुमार बेटे बदबूदार और अँधेरी कोठरियो में जिन्दगी बसर करने के लिए मजबूर है, जबकि लोग अपनी बिरादरी और पडोसियो की सीख न मानकर वासना के शिकार होते जाते हैं, जब कि बड़े-बड़े व्यावसायिक नगरों में सतीत्व आवारा और परीशान रोता फिरता है (लंदन में चालीस हज़ार से ज्यादा वेश्याएँ हैं और कलकत्ते में सोलह हज़ार से ज्यादा) जब कि आज़ाद मेहनत की रोटी खानेवाले इन्सान पूँजीपतियों के गुलाम होते जाते है, जब कि महज़ पैसेवाले व्यापारियो के नफ़े के लिए खूनी लड़ाइयों में कूदने से भी लोग बाज नहीं आते, जब कि विद्या और कला और आध्यात्मिकता भी नफे-नुकसान के भँवर में फँसी हुई है, जब कि कुशल राजनीतिज्ञों का पाखंड और छल-कपट हंगामा बर्पा किये हुए हैं और न्याय और सच्चाई का शोर सिर्फ़ जुल्म के मारे हुओं की कमज़ोर पुकार को दबाने के लिए मचाया जाता है, नयी सभ्यता का कोई दीवाना भी इन मुसीबतों और गुलामी के दौर को खालिस बरकत कहने की हिम्मत नही कर सकता। इसमें शक नही कि देश के नेता इसके दोषों से परिचित हो गये है और इसके सुधार की कोशिशें की जा रही है लेकिन उस जहर को जो समाज-व्यवस्था मे घुल गया है, निकालने की कोशिश नहीं की जाती, सिर्फ उसके ऊपरी प्रभावों, ऊपरी विकृतियों को छिपाने और मिटाने में लोग लगे हुए हैं। कोढ़ी जिस्म को रंगीन कपड़ों से ढँका जा रहा है।

नये जमाने ने मानवीय सद्गुणो का भी मनमाना विभाजन कर दिया है। पुराने जमाने में भी श्रेणियों और हैसियतो का विभाजन था मगर नैतिक सिद्धान्तो में विशेष और साधारण, विजेता और विजित का कोई भेद न था। नम्रता और सहिष्णुता, शर्म और हया, सदाचार और मुरव्वत—इन गुणों का सब आदर करते थे चाहे वह मुग़ल हों या तुर्क, ब्राह्मण हों या शूद्र। लेकिन आज हालत कुछ और है। ये निर्बलों के गुण है। नम्रता को आज निर्बलता की स्वीकृति समझा जाता है। लाज-शर्म नामर्दों के गुण है। मीठा बोलना, सुन्दर आचरण और आँख का लिहाज इस नई टकसाल के फेंके हुए सिक्के हैं। दया और प्रार्थना, संयम और नर्मी को कायरता और पस्तहिम्मती समझा जाता है। अब डींग मारने और शेखी बघारने का जमाना है। गुस्सा, नफरत, घमंड, जबान

का कड़ुआपन—ये मर्दाना खूबियाँ हैं। अगर किसी से इन्कार करना है तो मुलायमियत से कहने की जरूरत नहीं, साफ और बेलाग कहिए। इसमें अक्खड़पन जितना ही ज्यादा हो उतना ही अच्छा। नाक पर मक्खी न बैठने पाये, तलवार हमेशा म्यान के बाहर रहे, जरा कोई बात तबीयत के खिलाफ़ हो, बस, जामे से बाहर हो जाइये। गुस्सा एक मर्दाना जौहर है। उसे रोकना बुज़दिली की दलील है। आप को चाहे किसी खास बात मे जरा भी दखल न हो मगर ज़बान से कहिए कि मैं इस फ़न का अरस्तू हूँ। मुरव्वत और इंसानियत और लिहाज़ को पास न फटकने दीजिए। ये ग़रीब और मजबूर लोगो के गुण हैं। आप अपने वर्ताव में दिलेराना साफ़गोई से काम लीजिए। आपको किसी की भावनाओ से कोई प्रयोजन नहीं, और शर्म का तो नाम लेना भी गुनाह है। यह है इस नये ज़माने की खूबियाँ।

हम यह नही कहते कि वह पुरानी बातें सब की सब तारीफ़ करने के क़ाबिल हैं मगर वह कितना ही बुरा क्यो न हो और कितने ही ताने उसे क्यों न दिये जायें, वह इस नई स्वार्थपरता, घमंड और आडंबर से कई गुना अच्छा है। मजा यह है कि बचपन ही से इन नैसर्गिक गुणो को मिटाने की कोशिश की जाती है। यह मर्दाना गुण लड़कों को उनके दूध के साथ पिलाये जाते हैं। नये ज़माने का राग अलापने वाला कहेगा यह इकतरफ़ा तस्वीर है। देखिए आज राष्ट्रीय मेल-जोल ने मानव संबंधो को कितना दृढ बना दिया है। एक अंग्रेज़ व्यापारी के साथ चीन में कोई बेइन्साफ़ी होती है और सारे इंगलिस्तान में शोर मच जाता है। खून की कीमत और क़ानूनी जंग की दुहाई मचने लगती है। एक फ्रांसीसी अखबार का प्रवेश किसी राज्य में बंद कर दिया जाता है और फ्रासीसी दुनिया में उथल-पुथल मच जाती है। यह हमदर्दी, यह एकता कभी पहले भी थी? राजपूत मुसलमानों की मातहती में राजपूतों का खून करते थे, मुसलमान सिक्खों के कन्धे से कन्धा मिलाकर मुसलमानो का क़त्ल करते थे। निस्संदेह यह नये युग का एक अच्छा पहलू है। इसके ज़ोर पर हम दुनिया के हर कोने मे चैन से रह सकते हैं, हर प्रदेश में व्यापार कर सकते हैं। मगर सच्चाई यह है कि यह एकता और सहमति इंसानियत की बनिस्बत राष्ट्रीय प्रभुत्व पर अधिक निर्भर है वर्ना क्या वजह है कि किसी दूर-दराज़ मुल्क में एक आदमी की तकलीफ़ या बेइज्ज़ती कौम के दिल को हिला देती है मगर अपने ही पडोसी और अपने दोस्तों की भूख और गरीबी पर ज़रा भी दिल नहीं पसीजता? क्या वजह है कि यूरोपियन पूँजीपति धन और ऐश्वर्य की शानदार नैया पर बैठा हुआ उन अनाथों की परवाह नही करता जो गरीबी और बदहाली के भँवर मे पडे हुए हैं? यही कि स्वार्थपरता,

इंद्रिय-परायणता राष्ट्र की आत्मा है।

वह विशुद्ध सांसारिकता है, सुन्दर भावनाओं से रहित, जिसने दिलों को कठोर और संकीर्ण और भावना-शून्य बना दिया है। वह पैसेवालों का एक जत्था है जो नैतिक, भावनात्मक, आत्मिक वस्तुओं को व्यावसायिक लाभ और हानि की दृष्टि से देखता है, जिसके निकट वही नेकी आचरण करने योग्य है जो दौलत के ढेर में कुछ वृद्धि करे, वही भाव अच्छे हैं जो अपना प्रभुत्व बढ़ायें। वह आत्मा को भी तराजू के पलड़ों पर तौलता है। उसे जनतंत्र कहना ग़लती है। बराबरी और भाईचारे को उसने पैरों तले इस तरह रौंदा है कि अब उसकी शक्ल भी पहचानी नही जाती। इंसान की क़ीमत उसके नज़दीक इतनी ही है कि वह एक रुपया कमाने का साधन है। वह कसाई की तरह इंसान के गोश्त और खाल का अंदाजा करके उसकी क़ीमत लगाता है। कहने का मतलब यह है कि पुराना ज़माना अमीरों और सुल्तानो का ज़माना था और नया जमाना बनियों और व्यापारियो का ज़माना है। इसने दौलत के पहाड़ खड़े कर दिये, दौलत की तलाश में जल-थल को छानता हुआ आसमानों के छोर तक जा पहुँचा और अब सारी दुनिया उसका कार्यक्षेत्र है।

इस नये ज़माने मे एक ऐसा रौशन पहलू भी है जो उन काले दागों को किसी हद तक ढँक देता है और वह है 'बेज़बानों की ताकत का ज़ाहिर होना।' हाल के योरोपीय महायुद्ध ने इस पहलू को और भी उजागर कर दिया है। स्वार्थपरता के तूफ़ान ने बड़े-बड़े गराण्डील पेड़ों को ही नही सोये हुए और लुटे हुए हरे भरे मैदानों को भी जगा दिया है। अब एक फ़ाक़ाकश मजदूर भी अपनी अहमियत समझने लगा है और धन-दौलत की ड्योढ़ी पर सिर झुकाना पसन्द नही करता। उसे अपने कर्तव्य चाहे न मालूम हों लेकिन अपने अधिकारों का पूरा ज्ञान है। वह जानता है कि इस सारे राष्ट्रीय वैभव और प्रभुत्व का कारण मैं हूँ। यह सारा राष्ट्रीय विकास और उन्नति मेरे ही हाथों का करिश्मा है। अब वह मूक संतोष और सिर झुकाकर सब कुछ स्वीकार कर लेने में विश्वास नही रखता।

यह उन चीज़ों की मंदी का युग है और वह भी उन्हें हाथ नहीं लगाता। वह भी आराम, निश्चिन्तता और खुशहाली की माँग करता है। वह भी अच्छे मकानो में रहना चाहता है, अच्छे खाने खाना चाहता है और मनोरंजन के लिए अवकाश की माँग करता है। और वह अपने दावों को ऐसे प्रभावशाली ढंग से प्रकट करने लगा है कि अधिकारी वर्ग उससे नज़र नहीं कर सकता। वह पूँजी का दुश्मन है, व्यक्तिगत सम्पत्ति की जड़ खोदने वाला और व्यापारियों की जत्थेबन्दी

का हत्यारा। यह सच है कि वह भी अपने प्रभाव का क्षेत्र भौगोलिक सीमाओं के अन्दर रखना चाहता है मगर अपनी अमलदारी में बराबरी और सच्चाई का समर्थक है। वह अपने राष्ट्र को एक अकेली सत्ता बनाना चाहता है। हर व्यक्ति के लिए एक जैसा अवसर, एक जैसी सुविधाओं, एक जैसे उन्नति के साधनों की माँग करता है। सब की एकता उसका जेहाद का नारा है। वह ऊँच-नीच को मिटाकर सारी ज़मीन को समतल बनाने की कोशिश करता है। वह ऐसी राज्य-व्यवस्था स्थापित करना चाहता है जो धनोपार्जन के समस्त साधन अपने हाथ में रखे और हर व्यक्ति को उसकी मेहनत और योग्यता के अनुसार बराबर बाँटे। वह ज़मीन्दारों को एक गंदी और बेकार चीज़ समझता है और उनकी सम्पत्ति को उनके कब्जे से निकाल कर जनता के क़ब्ज़े मे रखना चाहता है। संक्षेप मे, वह सारी सम्पत्तियों, कारखानों, रेलों, जहाजों पर एक विशेष व्यवस्था के द्वारा जनता के अधिकार की माँग करता है और कौन कह सकता है कि यह काम बेहद मुश्किल नही है। व्यक्तिगत अधिकार का विचार मनुष्य के स्वभाव का अंग हो गया है। यह उसकी सबसे सशक्त प्रेरक शक्ति है। इसी पर उसके ज़िन्दगी के सारे मनसूबे, सारे इरादे, सारी इच्छायें क़ायम है। "व्यक्ति" की सत्ता मिटाना दुष्कर है। पूँजी और सम्पत्ति से खूनी लड़ाइयाँ लडनी पड़ेंगी (कुछ देशों मे जारी है) और यद्यपि रंग-ढंग से मालूम होता है कि उसकी इस लड़ाई में हार हो गई लेकिन उसका असर जिन्दा है और बढ़ता जायेगा। पूँजी उसे अपने क़ाबू मे रखने के लिए कुछ और रिआयतें करेगी, कुछ बल खायेगी, कुछ नाज़ उठायेगी, उससे लड़ाई करके अपनी हस्ती खतरे में न डालेगी।

जनता की यह हलचल और माँगें चाहे नाजुक कानों को कितनी ही नागवार मालूम हों लेकिन वह उस निस्तब्ध मौन की तुलना मे कहीं अधिक जीवनदायक है जो पुराने युग की अपनी विशेषता थी और जो अभी तक कुछ एशियाई देशों में चल रही है, जो आग मे जल कर, तलवार की चोट खा कर भी उफ नहीं करती, सहना और तड़पना जिसकी विशेषता है। नये ज़माने के इस सबसे ताज़ा पहलू ने यूरोप और अमेरिका वगैरह देशो में शूद्रों का खात्मा कर दिया है। अब वहाँ कोई ऐसा नही जिसके छूने से ब्राह्मणों का पवित्र अस्तित्व कलंकित हो जाये, कोई ऐसा नहीं जो क्षत्रियों के अत्याचार की फरियाद करे, जो वैश्यों के स्वर्ण-सिंहासन को ढोनेवाला बने।

मगर यह ख़याल करना कि जनतंत्र का यह नया पहलू अपनी भौगोलिक परिधि से बाहर निकल कर निर्बलो और अनाथो की हिमायत करेगा या पूँजीपति 'राष्ट्र' की बनिस्बत 'अ-राष्ट्रो' के साथ ज्यादा इंसानियत और हमदर्दी का वर्ताव

करेगा, शायद गलत साबित हो। उसे राज-सिंहासन और स्वर्ण मुकुट से प्रेम नहीं लेकिन राजकीय अधिकार-भावना और राज्य-संचालन की वासना से वह भी मुक्त नही। बहुत संभव है कि 'अ-राष्ट्रों' पर इस जनतंत्र का अत्याचार पूँजीपतियो से कहो अधिक घातक सिद्ध हो। जब कुछ थोड़े से पूँजीपतियों की स्वार्थ-परता दुनिया को उलट-पलट कर रख दे सकती है तो एक पूरे राष्ट्र की सम्मिलित स्वार्थपरता क्या कुछ न कर दिखायेगी। वह भी जत्थेबंदी की एक सूरत है, ज्यादा ठोस। वह अपने देश के व्यक्तिगत प्रभुत्व को मिटाकर उसके बदले जनता के प्रभुत्व का झंडा लहरायेगी मगर यह स्पष्ट है कि उसका आधार भी स्वार्थपरता है और जब तक उसके पैरो से यह ज़ंजीर दूर न होगी वह इस इंसानी भाईचारे की मंजिल से एक जौ भी और क़रीब न होगी, जो संस्कृति का लक्ष्य है।

लेकिन नये जमाने की इस खींचतान और आपसी होड़, अहंकार और भौतिकता के संसारव्यापी अंधकार मे आशा की एक किरण दिखाई दे रही है। वह प्रेसीडेंट विल्सन की प्रस्तावित लीग आफ नेशन्स या राष्ट्र संघ है। हम अपनी अनाथ और बेबस आँखों से उस किरण की ओर खड़े ताक रहे हैं। हमारे पैरों की कमजोरी हमें उस तरफ़ बढ़ने नही देती। हमारा दिल उम्मीद से भरा हुआ है। यह किरण हमारी कठिन मंज़िल के किसी आश्रयस्थल का पता दे रही है या केवल मरीचिका है, आनेवाली घड़ियाँ जल्दी ही इसका फ़ैसला कर देंगी। लेकिन अगर वह मरीचिका ही हो तो क्या हमें शिकायत का कोई मौक़ा है? यह उन राष्ट्रों का संघ होगा जिन्होंने जनतंत्र का स्थान प्राप्त किया है, जहाँ बहुत से लोग मुट्ठी भर लोगो के हाथों लुटते नही, जहाँ ब्राह्मण और शूद्र का विचार या भेद नही है। हम अभी राष्ट्रीयता के लक्ष्य तक भी नही पहुँचे, जनतंत्र की तो बात ही करना व्यर्थ है। ऐसी हालत में अगर हम इस संघ में दाखिल किये जाने के काबिल न समझे जाँय तो हमें ताज्जुब या शिकायत न करनी चाहिए। जब इंगलिस्तान को इस संघ में आने के लिए अपना घेरा बहुत फैलाना पड़ा यहाँ तक कि अब उसकी स्त्री जाति को भी राजनीतिक अधिकार मिल गये, जब आस्ट्रिया और जर्मनी जैसे देश जिनकी राजनीतिक स्थिति हमसे कहीं अच्छी है इस संघ मे केवल इसलिए प्रवेश पाने के योग्य नहीं समझे जाते कि वहाँ अभी तक व्यक्तिगत प्रभाव सिद्धान्तों पर भारी पड़ता है और विशाल जनता थोड़े से लोगों के अधीन है तो हिन्दुस्तान किस मुँह से इस संघ में शरीक होने की माँग कर सकता है जहाँ जनता एक बेजान और बेहिस ढेर से ज्यादा कुछ नहीं। इस बर्बादी का इल्ज़ाम हम गवर्नमेन्ट के सिर नही रख सकते। गवर्नमेन्ट की कार्य-प्रणाली अब तक हमेशा ज़बर्दस्तों की हिमायत करती आयी है। जनता को इस जड़ता की

स्थिति में रखने का सारा दोष शिक्षित और सम्पन्न लोगों पर है। हमारे स्वराज्य के नेताओं में वकील और ज़मीन्दार ही सबसे ज़्यादा हैं। हमारी कौंसिलों मे भी यही दो समुदाय आगे-आगे दिखाई पड़ते है। मगर कितने शर्म और अफ़सोस की बात है कि उन दोनों में से एक भी जनता का हमदर्द नहीं। वे अपने ही स्वार्थ और प्रभुत्व की धुन में मस्त हैं। वह अधिकार और शासन की मांग करते हैं और धन और वैभव के इच्छुक हैं, जनता की भलाई के नही। कितने बड़े-बडे ताल्लुक़ेदार, बड़े-बडे ज़मीन्दार, पैसेवाले रईस लोग उन बेज़बान करोड़ों काश्तकारों के साथ हमदर्दी, इंसानियत और देशभाईपने का बर्ताव करते है जिन्हें संयोग या गवर्नमेन्ट की गलती या खुद जनता की बेज़बानी ने उनकी तकदीर का मालिक बना दिया है। आप स्वराज्य की हाँक लगाइये, सेल्फ़ गवर्नमेण्ट की मांग कीजिए, कौंसिलों को विस्तार देने की मांग कीजिए, उपाधियों के लिए हाथ फैलाइये, जनता को इन चीज़ों से कोई मतलब नही है। वह आपकी मांगों मे शरीक नही है बल्कि अगर कोई अलौकिक शक्ति उसे मुखर बना सके तो वह आज ज़ोरदार आवाज़ मे, शंख बजाकर आपकी इन मांगो का विरोध करेगी। कोई कारण नही है कि वह दूसरे देश के हाकिमों के मुकाबले मे आपकी हुकूमत को ज्यादा पसन्द करे। जो रैयत अपने अत्याचारी और लालची ज़मीन्दार के मुँह में दबी हुई है, जिन अधिकार-सम्पन्न लोगो के अत्याचार और बेगार से उसका हृदय छलनी हो रहा है उनको हाकिम के रूप मे देखने की कोई इच्छा उसे नही हो सकती।

इसकी क्या ज़मानत है कि आपके पंजे में आकर उनकी हालत और भी बुरी न हो जायेगी? आपने अब तक इसका कोई सबूत नही दिया कि आप उनकी भलाई चाहनेवाले है। अगर कोई सबूत दिया है तो उनकी बुराई चाहने का, स्वार्थ का, लोभ का, कमीनेपन का। आप स्वराज्य की कल्पना का मज़ा ले ले कर खूब फूलें और बग़लें बजायें मगर अधिकारों के साथ-साथ कर्तव्यों का ध्यान रखना भी ज़रूरी है। जाहिल रईसों या ज़मीन्दारों से हमें शिकायत नही। उनकी आँखें उस वक्त खुलेंगी जब उनकी गर्दनें जनता के हाथों में होंगी और वह बेबस निगाहो से इधर-उधर ताक रहे होंगे। शिकायत हमें उन लोगों से है जो पढ़े-लिखे हैं और ज़मीन्दार हैं, वकील है और ज़मीन्दार हैं। वह अपने दिल से पूछें कि वह प्रजा के साथ अपना कर्तव्य पूरा कर रहे हैं? कभी-कभी अपने कृत्यों और कमियों के बारे में अपने दिल से पूछना जरूरी होता है। उनका दिल साफ़ कहेगा कि तुम इस तराज़ू पर तौले गये और ओछे निकले। ज़रा शहर के शान्तिपूर्ण कोने से निकलकर वहाँ जाइये जहाँ जनता की आबादी है,

जहाँ आपके नव्वे फी सदी देशवासी बसते हैं। उस तड़प का आपके दिल पर एक निहायत रौशन असर पड़ेगा। आपकी आँखें खुल जायेंगी। अन्याय और अत्याचार के दृश्य आपका दिल हिला देंगे।

क्या यह शर्म की बात नहीं कि जिस देश में नव्वे फ़ी सदी आबादी किसानों की हो उस देश मे कोई किसान सभा, कोई किसानों की भलाई का आंदोलन, कोई खेती का विद्यालय, किसानों की भलाई का कोई व्यवस्थित प्रयत्न न हो। आपने सैकड़ों मदरसे और कालेज बनवाये, यूनिवर्सिटियाँ खोलीं और अनेक आन्दोलन चलाये मगर किसके लिए? सिर्फ अपने लिए, सिर्फ अपना प्रभुत्व बढाने के लिए। और शायद अपने राष्ट्र की जो कसौटी आपके दिमाग़ में थी उसको देखते हुए आपका आचरण ज़रा भी आपत्तिजनक न था। मगर नये ज़माने ने एक नया पन्ना पलटा है। आनेवाला ज़माना अब किसानों और मज़दूरों का है। दुनिया की रफ्तार इसका साफ़ सबूत दे रही है। हिन्दुस्तान इस हवा से बेअसर नहीं रह सकता। हिमालय की चोटियाँ उसे इस हमले से नहीं बचा सकतीं। जल्द या देर से, शायद जल्द ही, हम जनता को केवल मुखर ही नहीं अपने अधिकारों की माँग करनेवाले के रूप में देखेंगे और तब वह आपकी क़िस्मतों की मालिक होगी। तब आपको अपनी बेइंसाफियाँ याद आयेंगी और आप हाथ मल कर रह जायेंगे। जनता की इस ठहरी हुई हालत से धोखे में न आइये। इनकलाब के पहले कौन जानता था कि रूस की पीड़ित जनता में इतनी ताकत छिपी हुई है? हार के पहले कौन जानता था कि जर्मनी का एकछत्र स्वेराचारी शासन जनता के ज्वालामुखी पर बैठा हुआ है। निकट भविष्य में हिन्दुस्तान के लाखों मज़दूर और कारीगर फ्रांस से वापस आयेंगे, लाखों सिपाही लड़ाई के बाद अपने-अपने घर लौटेंगे। क्या आप समझते हैं कि उन पर उन आज़ाद देशों की आबोहवा का कुछ भी असर न होगा? अगर क़ौम में इन्सानियत और लाज-शरम नहीं है तो खुद अपनी भलाई का तक़ाज़ा है कि हम अभी से जनता के दिल को अपने बस में करने की कोशिश करें। इस बात में हमारे ताल्लुकेदार और ज़मीन्दार, चाहे वे अँधेरे अवध के हों या उजाले बंगाल के, सबसे ज़्यादा दोषी हैं। उचित है कि वे तात्कालिक हानि की चिन्ता न करके किसानों की भलाई और सुधार की कोशिश करें, स्वेच्छा से उन अधिकारों से हाथ खींच लें जो उन्हें किसानों पर प्राप्त हैं। उनसे बेगार लेना छोड़ दें, उनके साथ आदमियत का बर्ताव करें, इज़ाफ़ा और बेदख़ली से परहेज़ करें, ताकि जनता के दिलों में उनकी इज़्ज़त और उनके प्रति श्रद्धा हो। हमारे कौंसिलरों और राजनीतिक नेताओं का कर्तव्य है कि वे अपने प्रस्तावों की परिधि को फैलायें और

जनता (यानी काश्तकारों) की हिमायत का एक प्रोग्राम तैयार करें और उसे अपनी कार्य-प्रणाली बना लें। स्वराज्य की बेकार और बेमतलब सदाओं पर तकिया करके बैठने का वक़्त अब नहीं क्योंकि आनेवाला जमाना अब जनता का है और वह लोग पछतायेंगे जो ज़माने के क़दम से क़दम मिलाकर न चलेंगे।

—ज़माना, फ़रवरी १६१६